समकालीन कहानी का विकास : स्त्री-पुरूष सम्बन्ध

(हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय की पीएच.डी उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध)

891.433109
SHA/Sam

* * *

(अक्टूबर 2010)

* * *

शोध कर्त्री
स्नेह भदौरिया
एम.ए एल.टी
शोध छात्रा

* * *

शोध निर्देशक
प्रो. बी. के. शर्मा 'रोहिताश्व'
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

* * *

गोवा विश्वविद्यालय, तालेगाँव, गोवा - 403206

Certified copy
All corrections suggested by referee's have been incorporated in them.
Forwarded
27/10/10

27.10.2010
(Shri V. N. Rai)
External Examiner

T-469

DECLARATION

I, the undersigned herself declare that this thesis entitled –'Samkaleen Kahani Ka Vikas : Stree-Purush Sambandh' "समकालीन कहानी का विकास : स्त्री-पुरूष संबंध" has been written exclusively by me and that no part of this thesis has been submitted earlier for the award of this University or any other University

Date : 27 OCTOBER 2010
Taleigao
Goa 403206

Sneh Bhadauria
Research Student

CERTIFICATE

As per the Goa University Ordinance I certify that this Thesis entitled "Samkaleen Hindi Kahani Ka Vikas : Stree-Purush Sambandh" "समकालीन कहानी का विकास : स्त्री-पुरूष संबंध" is record of research work done by the candidate herself during the period of study under my guidance and that it has not previously formed the basis for the award of any degree or diploma in the Goa University or elsewhere

Research Guide

Prof.B.K.Sharma 'Rohitashva'

Department of Hindi

Goa University

GOA-403206

Talegao plateau

Goa 403206

प्राक्कथन

समकालीन कहानी के पूर्व पक्ष नयी कहानी आन्दोलन के रचनाकार ही विगत चालीस पचास वर्षों से रचना कार्य में सक्रिय रहे हैं। प्रायः हर नयी कहानी आन्दोलन अकहानी हो या समांतर कहानी आन्दोलन वामपंथी कहानी आन्दोलन हो या जनवादी आन्दोलन; वह अपनी पूर्व परम्परा की कहानी से पार्थक्य जतलाने के लिए संवेदना, अनुभूति, यथार्थगत विसंगति के विचार क्षण कौंध की अभिव्यक्ति हेतु नये बिम्ब व प्रतीक भी सहेजता रहा है।

देश-काल, युग-सापेक्ष सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक बदलाव भी कहानी के स्वरूप और अभिव्यक्ति पक्ष को कम प्रभावित नहीं करते हैं। वर्तमान दौर के स्त्री-विमर्श हो या दलित विमर्श,आम आदमी की बहस हो या जनवादी परिदृश्य स्त्री मुक्ति के सवाल हो या स्त्री-पुरूष परिवर्तित सम्बन्ध, इन सभी के सन्दर्भ समकालीन कहानी के विकास से जुड़े हैं। नयी कहानी, समांतर कहानी और जनवादी कहानी पर आलोचनात्मक पुस्तकें उपलब्ध हैं पर 'समकालीन कहानी के विकास और स्त्री-पुरूष संबंध पर प्रामाणिक और गंभीर पुस्तक का अभाव महसूस होता है। अतः विवेच्य कार्य इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

आज के बदलते सामाजिक सन्दर्भो में नारी के पराश्रित होने की भूमिका,शोषण, असमानता से मुक्ति के प्रयत्न एवं दोहरे मानदण्डों के बीच अपनी बदलती सामाजिक भूमिका के बावजूद स्त्री संघर्ष के प्रश्न वहीं खड़े

हैं । स्त्री-पुरूष के निजी एवं आंतरिक सम्बन्ध एवं व्यवस्था से जुड़े सवाल जटिलतर होते गये है। नारी की लड़ाई पुरूष से नहीं अपितु पितृसतात्मक व्यवस्था से है जो जन्म से मृत्यु तक स्त्री को पुरूष से हीन बताती है। स्त्री उनके भोग का साधन मात्र है।

वास्तव में समकालीन और समकालीनता से तत्पर्य अपने युग बोध, ऐतिहासिक बोध, तात्कालीन जीवन बोध और समसामयिक राजनैतिक-सांस्कृतिक बोथ से सम्पृक्त होना हैं। यह सच है कि एक ही काल खण्ड , समय और युगबोध में विभिन्न प्रवृत्तियों,विचारों और दार्शनिक भावबोध के रचनाकार सक्रिय रहते हैं। जो विभिन्न विधाओं में लिखते हैं। कोई रचनाकार आन्तरिक मनोवृत्तियों का सजग चितेरा होता हैं तो कोई कथाकार बाह्य परिवेश और युगबोध विशेष को महत्व देता हैं। निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, फणीश्वनाथ रेणु, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, जहाँ आन्तरिक अनुभूतियों के रचनाकार हैं तो उसी दौर के नये कहानीकारों में भीष्म साहनी, मोहन राकेश, मार्कण्डेय, और कमलेश्वर मध्यवर्गीय संवेदनाओं को प्रतिवद्ध भाव से रूपायित करते हैं।

समकालीन कहानी के विकास में विभिन्न कहानी आन्दोलनों , प्रवृत्तियों और रूझानों की चर्चा आवश्यक है। कारण विगत पचास वर्षो में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में लोमहर्षक और युगान्तरकारी परिवर्तन आये हैं। अतः विभिन्न कहानी आन्दोलनों के अन्तर्गत उनकी चर्चा और विश्लेषण सम्वन्धी कार्य एक दुःसाहस भरा कार्य माना जायेगा।

वास्तव में समकालीनता केवल समसामयिक बोध से सम्पृक्त होना ही नहीं हैं बल्कि समकालीनता एक मूल्य दृष्टि है, विचार दृष्टि है, जिसमें या तो अपने देश-काल, इतिहास बोध से तटस्थता अपनाकर प्रेम अध्यात्म, प्रकृति सम्बन्धी सुंदरता के शाश्वत बोध की कल्पना की जाए। जो वस्तुतः समकालीनता के यथार्थ बोध एवं अन्तर्विरोधों से अलग होकर अज्ञेय, निर्मल वर्मा, धर्मवीर भारती व अन्य कलावादी चिंतकों का भाव वादी - अध्यात्मवादी भाव है। वास्तव में समकालीनता का सही तात्पर्य अपने समसामयिक इतिहास बोध , वैश्विक विजन और राजनैतिक संक्रमण में सामाजिक पारिवारिक मूल्यों से जुड़ाव और जन संघर्षो चेतना के प्रति प्रतिबद्धता का है। जिसका प्रतिबिम्ब हम मोहन राकेश (मलबे का मालिक), भीष्म साहनी (चिफ की दावत), राजेन्द्र यादव (छोटे-छोटे ताज महल), मन्नू भण्डारी (यही सच हैं) आदि रचनाकारों के पास साक्ष्य रूप में पाते हैं। कमलेश्वर, रेणु, और शानी ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में ग्रामीण संवेदनाओं और रागात्मक बोध को अपनी रचनाओं में प्राथमिकता दी है।

यशपाल, नागार्जुन, मार्कण्डेय, और फणीश्वरनाथ रेणु, आदि ने नयी कहानी के प्रारम्भिक दौर में युगीन संदर्भो और वैचारिक परिवर्तन को महत्व दिया है यह उनकी अपनी राजनैतिक और सांस्कृतिक अवधारणाओं को महत्व दिया जाना है। कहा जा सकता है कि कहानी न केवल वैचारिक फ्लैश होती है , न केवल आत्मगत भाव की अभिव्यक्ति है और न केवल

किसी तटस्थ गवाह का हलफनामा है। क्योंकि 'कहानी अब किसी घटना का वर्णन मात्र नहीं हैं, उसकी संरचना की आन्तरिक प्रकृति केवल 'मनोरंजन' और ' कौतूहल' या 'तुष्टि' वादी प्रवृत्ति की ही नहीं है, और न 'जीवन की यथार्थताओं का संघर्ष' या 'जीवन के स्वाभाविक चित्रण' तक ही वह सीमित है। वह चित्रण ही नहीं करती है बल्कि एक नये कलासंसार की सर्जना भी करती है क्योंकि अन्य कलारूपों की तरह ही वह मनुष्य की जीवनसीसृक्षा का ही एक प्रकार है। (धननंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचना शास्त्र, पृ.85)

विवेच्य शोध प्रबंध में समकालीन कहानी के विभिन्न आन्दोलनों, प्रवृत्तियों प्रमुख रचनाकारों और रचनाओं की चर्चा की गयी है। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बीच अभूतपूर्व बदलाव विगत पाँच दशकों में आये है उन्हे संयुक्त परिवार एकल परिवार तथा नारी जीवन की अस्मिता स्वतंत्रता में देखने का प्रयास किया गया है। वर्तमान दौर में औद्योगिक विकास तथा परिवर्तित जीवन शैली में अलगाव, ऊब, तनाव एवं परिवेश विडम्बनाएँ भी प्रमुख समस्याएँ बनकर उभरी हैं।'

प्रस्तुत शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय ' समकालीन कहानी : स्वरूप, क्षेत्र एवं युगीन संदर्भ' का विवेचन किया गया हैं। साथ ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों-आंचलिक, ग्रामीण पहाड़ी एवं महानगरीय जीवन संघर्ष के रेखांकन में उनकी विशिष्टता दर्शायी गयी है। विभिन्न बदलते हुए सन्दर्भो में युगीन दबावों और सन्दर्भो को भी रेखांकित किया गया है।

'समकालीन कहानी का विकास : विभिन्न आन्दोलन एवं प्रवृत्तियाँ' नामक द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत नयी कहानी, आंचलिक कहानी और प्रगतिशील कहानी की चर्चा की गयी हैं। साथ ही विभिन्न कहानी आन्दोलन-अकहानी, समांतर कहानी, सहज कहानी, वामपंथी और जनवादी कहानी आन्दोलन और उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना की गयी है। अक्सर हिन्दी कहानियों की आलोचना में ग्रामीण आंचलिक कहानियों और महानगरीय बोध की चर्चा की जाती है, जो विभिन्न कहानी आन्दोलन की सीमा में विश्लेषित नहीं होती है। संकेत यहाँ रेणु, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर ,शिवमूर्ति और मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों के बरक्स मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद्य, मन्नू भण्डारी और उषा प्रियंवदा आदि की रचनाओं के संदर्भो में हैं। बेशक ग्रामीण जीवन के रेखांकन हेतु मार्कण्डेय की ग्राम्य जीवन की कहानियाँ और कमलेश्वर की 'अपनी बस्ती' की कहानियाँ उनके उदाहरण में रखी जा सकती हैं। यहाँ लेखक की अपार संवेदनशीलता तथा बदलते हुए जीवन के भीतर असत पक्षों तथा ह्रासोन्मुख अंधशक्तियों के प्रति उनका कटु व्यंग्य तथा विद्रोह, इस प्रसंग के बड़े महत्वपूर्ण तत्व हैं।

मार्कण्डेय का 'भू-दान', 'दाना भूसा', 'आदर्श कुक्कुट गृह',- कमलेश्वर की 'नीली झील', 'बदनाम बस्ती', 'सलमा', 'राजा निरबंसिया',। फणीश्वनाथ रेणु की 'अच्छे आदमी' और 'तीसरी कसम', इस नये क्षेत्र की

उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। यहाँ एक और महत्वपूर्ण तत्व है इन कहानियों में परम वैविद्य। कहीं भी, किसी भी स्तर से एकरसता और दुर्बोधता का नामोनिशान नहीं। ऋजु कौशल और सहजता ही इनकी शक्ति है तथा एक निश्चित अभिप्राय है संघर्षशील, बदलते हुए जीवन युद्धरत शक्तियों से डटकर जूझने और सीधे चुनौती देने का उद्देश्य ।

'समकालीन कहानी : प्रमुख रचनाकार एवं रचनाएँ' नामक तृतीय अध्याय के अंतर्गत नयी कहानी बनाम समकालीन कहानी की चर्चा की गयी है। सुधी विद्वान जानते हैं कि समकालीन कहानी आन्दोलन के रचनाकार ही कालान्तर में समकालीन कहानी के पुरस्कर्ता माने गये हैं। हालाँकि दावा राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, शानी और मन्नू भण्डारी आदि को अधिक दिया गया है।' हमारा विचार है कि नई कहानियों के श्रेष्ठ उदाहरण में आने वाली ये कहानियाँ - कृष्णा सोबती की 'बादलों के घेरे', रांगेय राघव की 'गदल', अमरकांत की 'दोपहर का भोजन', मोहन राकेश की 'मिसपाल', 'आर्द्रा', मार्कण्डेय की 'उत्तराधिकारी', राजेन्द्र यादव की ' जहाँ लक्ष्मी कैद है', निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' , कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', धर्मवीर भारती की ' गुल की बन्नो' , मन्नू भण्डारी की ' यही सच है', फणीश्वनाथ रेणु की 'मारे गये गुलफाम', उषा प्रियंवदा की 'जिन्दगी और गुलाब', और 'वापसी',शेखर जोशी की ' कोसी का घटवार' आदि जहाँ एक ओर वैचारिक स्तर पर नई हैं, वहाँ दूसरी ओर शिल्प के स्तर पर भी नयी परम्परा के रेखांकन में सक्षम हैं। अतः नयी कहानी और आंचलिक कहानी आन्दोलन की सम्यक चर्चा विभिन्न रचनाओं के संदर्भ में की गयी है।

'अकहानी आन्दोलन' व्यवस्था के प्रति विक्षोभ ,गुस्सा और प्रतिकार व्यक्त करता है। कहानी आन्दोलन में स्त्री-पुरूष प्रसंगो का बैलोस चित्रण किया गया है। महेन्द्र भल्ला, रमेश बक्षी, इब्राहिम शरीफ, गंगाप्रसाद विमल, निरूपमा सेवती आदि ने दिल्ली बम्बई और कलकत्ता के संघर्षपूर्ण जीवन में नारी की स्थिति को विभिन्न कथा-प्रसंगों से दर्शाया है। सुधा अरोड़ा, गंगाप्रसाद विमल, दूधनाथ सिंह, निरूपमा सेवती ,दीप्ति खण्डेलवाल और रवीन्द्र कालिया आदि ने समांतर कहानी आन्दोलन में अपनी सृजनात्मक भूमिका निभायी है। जिसमें 'एक औरत की कथा', 'हव्वा', 'सागर के तट पर', और 'काला रजिस्टर' कहानियों का एक विशेष महत्व है।

समकालीन कहानियों के क्षेत्र में वामपंथी चेतना के सतीश जमाली, वेणुगोपाल, सृंजय, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह आदि अपना हस्तक्षेप जारी रखते हैं तो जनवादी कहानी आन्दोलन में शिवमूर्ति, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, रमेश उपाध्याय, नासिरा शर्मा, और नमिता सिंह की कहानियों का अपना विशिष्ट महत्व है।

'स्त्री-पुरूष सम्बन्ध : परिवर्तित समाज और विश्लेषण' नामक चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत संयुक्त परिवार बनाम एकल परिवार : शहरी और ग्रामीण जीवन को विश्लेषण सम्बन्धी आधार बनाया गया है। उषा प्रियंवदा

की 'वापसी' कहानी संयुक्त परिवार की गाथा है तो मोहन राकेश की 'सुहागिनें' कहानी पति-पत्नी सम्बन्धों में आयी रिक्तता और व्यर्थताबोध को दर्शाती है। प्रसंगवश कृष्णा अग्निहोत्री की 'आक्टोपस' कहानी नारी जीवन के संघर्ष की व्यथा कथा है। विवाहपूर्व और विवाहेत्तर सम्बन्धों के रेखांकन में राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, से लेकर मैत्रेयी पुष्पा ,नासिरा शर्मा, मृदुला गर्ग, ने कई अभिनव प्रसंग रचे हैं।

राजेन्द्र यादव की कहानियों में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों वाली कहानियों की संख्या काफी बड़ी है। इनमें प्रेम की अशरीरी धारणा के तीखे प्रतिसाद से लेकर संबंधों के टूटने की पीड़ा तक की कहानियाँ शामिल हैं। तन और मन के दो अलग खानों में ,जैनेन्द्र की नायिकाओं की तरह बाँटकर स्त्री को देखने का 'नयी कहानी आन्दोलन' ने विरोध किया है। राजेन्द्र यादव भी इस छद्म को स्वीकार नहीं करते। 'मेरा तन तुम्हारा है', 'एक कमजोर लड़की की कहानी', की नायिकाओं के मुकाबले 'नीरंजना' की नीरंजना अपनी अर्जित आत्मसजगता के कारण ही अपने प्रेमी के प्रति अधिक ईमानदार है। 'पुराने नाले पर नया फ्लैट' में यह नाला दीरू के पति के पूर्व प्रेम का है और नया फ्लैट उनके दाम्पत्य सम्बन्धों को दर्शाता है जो कालोनी में नये मकान की तरह ही हवा के हर झोंके के साथ बदबू का भभका भी साथ लिये है।

नारी जीवन की अस्मिता और स्वतंत्रता संदर्भ में मोहन राकेश की कुछ अन्य कहानियाँ 'आखिरी सामान', 'मिसपाल', 'भूखे' और 'सुहागिनें' आदि स्त्री को पूरे सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत करती हैं। 'आखिरी सामान', की बेला भण्डारी मूल्यविहीन, भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था में उसके मुख प्रतिशोध का प्रतीक बन जाती है। मूल्यों के इस व्यापक ह्रास की स्थिति में 'मिसपाल' की तिक्तता और हताशा उसके लिए अनिवार्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य तैयार करती है। उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि दफ्तर के इस गलीज माहौल से निकलकर ,किसी साफ-सुथरे निर्जन स्थान पर बैठकर, अपने मन के दो चार चित्र बना सके । इस माहौल की सारी कटुता को पी और पचाकर भी उसकी आधारभूत सौंदर्य वृत्ति कुंठित होने से बची रह सकी हैं। इस तरह 'भूखे' में वास्तविक भूखे एवलीन और उसका बच्चा नहीं है। अपने भारतीय पति की असामयिक मृत्यु के बाद एवलीन अपनी और अपने बच्चे की जरूरते क्रमशः कम करती जाती है। कलाकार पति की तस्वीरे बिक जाने की आशा में वह स्वयं अपने को और बच्चे को बहलाती रहती हैं। इसके चारों ओर जो लोग हैं - सड़क पर, होटलों में और सब कही - वे ही दरअसल भूखे लोग हैं जो उसकी मजबूरी की बिना पर उसे ही अपनी खुराक बना लेना चाहते हैं, और वह भरसक गरिमामय ढंग से इस सबका प्रतिरोध करती है।

'अलगाव, तनाव और विडम्बना सम्बन्धी विमर्श' नामक पंचम अध्याय में समसामयिक जीवन की त्रासदी को रेखांकित किया गया है। निःसंदेह अज्ञेय की 'रोज' कहानी राजेन्द्र यादव 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' और शिवमूर्ति की

'कसाईबाड़ा', सुधा अरोडा की 'महानगर की मैथिली', नासिरा शर्मा की 'संगसार' आदि कहानियाँ हमारे आसपास के अलगाव, तनाव और विडम्बना वाले संसार का ही प्रतिबिम्बित ताना-बाना हैं।

विसंगति बोध और नारी जीवन की त्रासद स्थिति को जहाँ कमलेश्वर 'माँस का दरिया' और राजा निरबंसिया' में उकेरते हैं वहीं दीप्ति खण्डेलवाल 'हव्वा' कहानी में स्त्री-पुरूष के बीच आये रिक्तता बोध व्यावसायिक दृष्टिकोण तथा यौन मुक्ति को दर्शाती है। कहा जा सकता है कि राजा निरबंसिया का उल्लेख उसके प्रकाशन से लेकर आज तक उसके दोहरे कथा-शिल्प के कारण होता रहा है। लेकिन फिर भी कहानी में लोक-कथात्मक शैली का समानान्तर उपयोग दो भिन्न युगों की संवेदना को , उसमें घटित परिवर्तन को ,पर्याप्त सर्जनात्मक ढंग से उभारता है। बीमारी से उपजी जगपती की आर्थिक मजबूरियाँ उसे धीरे-धीरे उसकी पत्नी चंदा से दूर करती जाती हैं। वस्तुतः यह तथ्य ही कहानी में परिवर्तन, संवेदना और मूल्य-बोध का वाहक बन जाता हैं। लेकिन आत्महत्या से पूर्व चंदा और कानून के नाम छोड़ा गया उसका संदेश अपनी रोमानी प्रकृति के कारण कहानी में निहित क्षीण से विचार को भी आहत करता है।

नई कहानी में आधुनिक नारी की उपस्थिति के संदर्भ में कमलेश्वर की टिप्पणी है -आधुनिक नारी अब अपनी पूरी गरिमा, देह-संपदा और वास्तविक सम्मान के साथ आई है इसी संदर्भ में थोड़ा आगे चलकर लिखते हैं - औरतें अब औरतें हैं ,वे झूठी सती या वेश्याएँ नहीं हैं, इसलिए नई कहानी खलनायिकाओं से शून्य है.....संशयग्रस्त सम्बन्धों के बिजबिजाते दलदल अब नहीं हैं। नारी की देह अब उसके अपने निर्णय की वस्तु है कमलेश्वर द्वारा रचित कहानियाँ 'एक अश्लील कहानी', 'एक थी विमला', प्रेमिका', 'रातें', 'माँस का दरिया' आदि कहानियों में स्त्री या तो सामाजिक विसंगतियों की शिकार है या फिर एक संत्रास भरा जीवन जीने को विवश है।

समकालीन कहानी का विकास : अद्यतन संदर्भ' नामक षष्ठ अध्याय के अंतर्गत परम्परा और आधुनिकता बोध की चर्चा की गयी है। जिसके परिप्रेक्ष्य में राजेन्द्र यादव की कहानी 'अभिमन्यु की हत्या', धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो' से लेकर मैत्रेयी पुष्पा की 'ललमनियाँ' भी शामिल है। स्त्री-पुरूष के बदलते आयाम में निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', मोहन राकेश की 'सुहागिनें', से लेकर निरूपमा सेवती की 'दहकन से परे' कहानी तक की चर्चा अवश्यम्भावी है। हाल ही कमलकुमार और चित्रा मुदगल ने देह मुक्ति और नयी नैतिकता के संदर्भ में यौन विमुक्ति और भारतीय परिवेशएवं परम्परा पर आधारित विलक्षण कहानियाँ लिखी हैं।

'भाषा-शैली एवं शिल्प विधान' नामक सप्तम अध्याय में पचास वर्षो के विभिन्न कहानी आन्दोलनों और प्रवृत्तियों की विशिष्ट रचनाओं तथा रचनाकारों की शैली सम्बन्धी विशिष्टता पर भी सांकेतिक चित्रण रचा गया है।

पूर्ववर्ती कहानियों की सांकेतिकता से नई कहानी की सांकेतिकता को अलग करते हुए मोहन राकेश लिखते है - 'बात वही होती है और जीवन के उसी कैनवास से उठाई जाती है। मगर उसके सम्बन्ध में लेखक के अनुभव की निजता, जीवन के यथार्थ की व्यापक पकड़ और भाषा तथा शिल्प के क्षेत्र में उसकी अपनी प्रयोगात्मकता उसकी रचना को भिन्नता और एक और ही सार्थकता प्रदान कर देती है।' (नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति पृ.92) इस सांकेतिकता के लिए मोहन राकेश ने ही नई कहानी से 'चिफ की दावत' और 'दोपहर का भोजन' का उल्लेख किया और टिप्पणी की है , 'चिफ की दावत' का संकेत माँ के चरित्र के माध्यम से उभरता है और 'दोपहर का भोजन' में अभावग्रस्त घर की एक साधारण सी दोपहर के वर्णन मात्र से। कहना न होगा कि रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपनी विशिष्ट शैली के साँचे निर्मित कर लेता है। धनंजय वर्मा ने भी हिन्दी कहानी के रचना शास्त्र संदर्भ में कहा है कि - 'कहानी विधा के रूपात्मक साँचे निर्मित हुए और एक लम्बे अरसे तक कहानी की पहचान और परख इन्ही साँचो से होती रही। 'कहानी की आलोचना और मूल्यांकन में इन्हे एक रीति और कालान्तर में रूढ़ी का स्वरूप मिल गया । कथानक, चरित्र-चित्रण, देश-काल- वातावरण, शैली और उद्देश्य के पाँच तत्वों पर कहानियों की परख जारी रही। कथानक और चरित्र(पात्र) के अतिरिक्त संकलन त्रय (स्थान, कार्य और समय की एकता) की अवधारणाएँ भी नाट्य विवेचन से ज्यों-की-त्यों उठा ली गयी और संवाद को भी कहानी के तत्व के रूप में मान्यता मिली। इस सबका परिणाम यह हुआ कि कहानी की आलोचना और मूल्यांकन के अपने स्वतंत्र प्रतिमान विकसित नहीं हो पाए हैं।

राजेन्द्र यादव जहाँ मध्यवर्ग की भाषा शैली को बर्हिमुखी पात्रों के रूप में चित्रित करते हैं वहाँ मोहन राकेश मन के संवेदनशील पक्षों को निम्नमध्य वर्गीय पात्रों के परिवेश में। कमलेश्वर की बहुमुखी प्रतिभा कस्बे-ग्राम ,महानगर और आन्तरिक भावों के पात्रों को संपन्न करती हैं। सच है कि शहरी जीवन की अपेक्षा ग्रामीण अंचल और कसबाई जीवन शैली का चित्रण रचनाकार और पाठक आलोचक के लिए एक चुनौती हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश ,राजस्थान, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र और आन्ध्र में प्रचलित लोक शैलियों की छाप भी अनेकानेक रचनाओं में उपलब्ध हैं। जिसके लिए एक पृथक शोध प्रबंध की आवश्यकता होगी। प्रसंगवश कहना होगा कि फणीश्वनाथ रेणु के 'ठुमरी' कहानी संग्रह में संकलित अनेक कहानियों में कला और कलाकार की गिरावट के प्रति जो पीड़ा अभिव्यक्त हुई हैं। वह इस संकलन की एक कहानी 'भित्तिचित्र की मयूरी' में उभरती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। इसी प्रकार 'आदिम रात्रि की महक' में संकलित अनेक कहानियों में सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन के अन्तर्वर्ती रसगंधों का जो मुग्ध चित्रण हुआ है तथा जिनमें लोक जीवन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और लोका चेतना का फैलाव दृष्टिगोचर होता है।

महानगरीय जीवन और पहाड़ी-परिवेश को चित्रित करती हुई निर्मल वर्मा की गद्य भाषा काव्याभिव्यक्ति के नये साँचे निर्मित करती हैं तो मैत्रेयी पुष्पा के पास बुन्देलखण्ड़ की भाषा शैली हैं। सारांशतः नयी कहानी के शिल्प सौंदर्य में उसके कथ्य के अनुरूप जैसे कहानी का सारा शिल्प ही उदार से उदारतम हो गया। उसका बँधा-बँधाया शास्त्रीय रूप अपने आप ही उदार और महिम हो गया। कथा, लोकतत्व, संस्मरण, यात्रा-वर्णन की शैली, डायरी की कला, फ्लैशबैक पद्धति ये सबके सब तत्व मिल-जुलकर एक ही कहानी में उजागर महाज हो गया। यह सर्वथा एक नया शिल्प ही बन गया। वर्तमान दौर तक जैसे भारत का समग्र जीवन ही कहानी शिल्प में कहानी की अन्तरात्मा में जैसे रूपायित हो गया हैं। शिल्प उसकी आत्मा में डुबकर एक हो गया और इस तरह कहानी कला बड़ी नाजुक और मर्मस्पर्शिनी बन गयी हैं। दूसरी ओर वह कहानी की ऊर्जा शक्ति का वाहन हो उठी हैं। इस सहज प्रक्रिया में शिल्प की अपनी बारीकी- कहानी के स्वभाव और शक्ति के साथ एकाकार होकर अपने सही रूप में संवेदित हो उठी। इसके लिए उसे भाग्यवश पाठकों का प्रबुद्ध वर्ग विरासत रूप में ही मिला जो कहानी की प्रकाशित संवेदना तथा बारीकियों की व्याख्या और सराहना कर सके। विवेच्य शोध प्रबंध अपनी सीमाओं के समकालीन कहानी के विभिन्न आन्दोलनों प्रवृत्तियों और विशिष्ट मनोवृतियों की रचनाओं का विश्लेषण भर है। विषय की व्यापकता, गंभीरता और गहनता सुधी विद्वानों के सामने स्पष्ट हैं।

शोध प्रबंध में विवेचन की अपनी सीमा है और समकालीन कहानी के वर्तमान परिदृश्य में ग्राम जीवन, कस्बाई जीवन, विदेशी परिवेश तथा महानगरीय जीवन के जीवन के कई नये पुराने स्त्री-पुरूष रचनाकार सक्रिय है। अतः गत्यात्मक दौर में कथ्य,विषय वस्तु, भाषा-शैली और शिल्प के नये क्षितिज और सिमान्त भी कालान्तर में मुखर हो सकते हैं।

शोधकार्य की पूर्व इच्छा को प्रेरणा गुरूवर प्रो.बी.के.शर्मा 'रोहिताश्व' से प्राप्त हुयी है। वैसे विभिन्न कहानी आन्दोलन पर पुस्तकें अलग-अलग आलोचकों व रचनाकारों की उपलब्ध रही है। पर विगत पचास वर्षो में 'समकालीन कहानी का विकास : स्त्री-पुरूष संबंध का गम्भीर गवेषणात्मक और आलोचनात्मक कार्य अनुपलब्ध रहा है। विवेच्य कार्य में राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, सुरेन्द्र चौधरी धनंजय वर्मा, रमेश उपाध्याय, मैत्रेयी पुष्पा और सुधा अरोडा आदि के विचार ग्रंथों से सहायता ली गयी है साथ ही विजयमोहन सिंह, नामवर सिंह आदि की पुस्तकों से भाषा-शैली और शिल्प सन्दर्भ के आधार तथ्य ग्रहण किये गये हैं।

विभिन्न रचनाकारों और आलोचकों के लेखन का आभार मानते हुए शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति के समय अपने जीवनदाता पिता श्री इन्द्रपाल सिंह भदौरिया, माता श्रीमती शैल कुमारी और अग्रजा आनन्द के प्रेरक शब्दों को याद कर रही हूँ। अनुज रणजीत सिंह और अनुजा निधि,शालिनी तथा ऋचा बार-बार इस गुरूत्तर कार्य को पूर्ण करने की चेतावनी देती रही है।

परम पूज्यनीय पितातुल्य ससुर श्री सत्येन्द्र सिंह गौर के संरक्षण तथा मेरे अतीत और भविष्य के सेतु प्रिय देवेश सिंह ने अनथक भाव से इस शोधकार्य में संदर्शक और सहयोगी की भूमिका निभायी है। उनके प्रति मौन मुखर आभार कार्य स्थल केन्द्रीय विद्यालय -1 के प्राचार्य वेलयुधन के.पी और केन्द्रीय विद्यालय- 2 वास्को के प्राचार्य डा.विजयप्रकाश मिश्र ने सतत साहस प्रदान किया है। इस समय हमारे पारिवारिक मित्र कविवर लाखन सिंह भदौरिया 'सौमित्र' के प्रेरणास्पद शब्दों को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

हिन्दी विभाग के वरिष्ठ सदस्यों प्रो. रवीन्द्रनाथ मिश्र, डा.इशरत खान, डा.वृशाली मान्द्रेकर और स्नेहमयी डा.चन्द्रलेखा डिसूजा ने समय-समय पर मेरी हिम्मत अफजाई की है। कार्यकर्ता यशवंत नाईक, संजना और दिलीप आगापुरकर ने प्रशासनिक कार्य में भरसक मदद की है। जाने-अनजाने में कतिपय नाम और प्रेरणास्पद व्यक्ति छूट सकते हैं। पर उन अनाम साथियों का आभार आवश्यक है जो विद्या के संस्थान गोमंतक, राष्ट्रभाषा मडगाँव, एम.पी.टी. सडा, आचार्य नरेन्द्रदेव पुस्तकालय-लखनऊ, अमीरूद्दौला पुस्तकालय केसरबाग- लखनऊ, स्टेट सेण्ट्रल लायब्रेरी - हैदराबाद, लखनऊ विश्वविद्यालय -लखनऊ तथा गोवा विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों से आवश्यकतानुसार शोध-संदर्भ और रचना-साक्ष्य उपलब्ध कराते रहे हैं। टंकन कार्य के द्वारा श्री अजय जोशी के अतिशय सहयोग के लिए मैं सदैव आभारी रहूँगी। जिन्होने इस कार्य को पूर्ण रूप प्रदान करने में सहयोग दिया।

समय इतिहास और परिवर्तन के साक्षी रचनाकारों और स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के परिवर्तित सम्बन्धों के अनुसन्धाताओं व आलोचकों के सामने मेरा यह शोध कार्य, लेखन, शोध और समीक्षा की दुनिया में एक विनम्र प्रयास है।

निवेदिका

स्नेह

दिनांक : 27 नवम्बर 2010
स्थान : तालेगाँव-गोवा विश्वविद्यालय

स्नेह भदौरिया
(पीएच. डी. शोध छात्रा)

अनुक्रम

समकालीन कहानी का विकास : स्त्री-पुरूष सम्बन्ध

1. समकालीन कहानी : स्वरूप,क्षेत्र एवं युगीन सन्दर्भ 2

1.1 समकालीन कहानी : परिभाषा एवं स्वरूप 2
1.2 समकालीन कहानी का क्षेत्र 4
1.3 समकालीन कहानी : युगीन सन्दर्भ 7
संदर्भ ग्रंथ सूची 12

2. समकालीन कहानी का विकास : विभिन्न आन्दोलन एवं प्रवृत्तियाँ

2.1 समकालीन कहानी की पृष्ठभूमि 14
2.2 समकालीन कहानी के विभिन्न आन्दोलन 19
2.3 समकालीन कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ 23
संदर्भ ग्रंथ सूची 29

3. समकालीन कहानी : प्रमुख रचनाकार एवं रचनाएँ 31

3.1 नयी कहानी बनाम आंचलिक कहानी आन्दोलन 33

3.11 राजेन्द्र यादव 34
3.12 मोहन राकेश 37
3.13 कमलेश्वर 39
3.14 निर्मल वर्मा 44
3.15 मन्नू भण्डारी 47
3.16 कृष्णा सोबती 51
3.17 उषा प्रियंवदा 54
3.18 फणीश्वरनाथ रेणु 56
3.19 मार्कण्डेय 60

3.2 अकहानी आन्दोलन और समान्तर कहानी आन्दोलन 63

3.21 जगदीश चतुर्वेदी 66
3.22 दूधनाथ सिंह 68
3.23 गंगा प्रसाद विमल 70
3.24 महेन्द्र भल्ला 72
3.25 रमेश बक्षी 73
3.26 सुधा अरोडा 75
3.27 नीरूपमा सेवती 78

3.28 दीप्ति खण्डेलवाल 80
3.29 रवीन्द्र कालियाँ 82

3.3 समकालीन कहानी और जनवादी रूझान 83

3.31 मृदुला गर्ग 85
3.32 कृष्ण बलदेव वैद्य 89
3.33 कृष्णा अग्निहोत्री 90
3.34 मैत्रेयी पुष्पा 91
3.35 शिवमूर्ति 95
3.36 नमिता सिंह 97
3.37 नसिरा शर्मा 99
3.38 ज्ञानरंजन 101
3.39 काशीनाथ सिंह 103
संदर्भ ग्रंथ सूची 106

4. स्त्री-पुरूष सम्बन्ध : परिवर्तित समाज और विश्लेषण 114

4.1 संयुक्त परिवार बनाम एकल परिवार : शहरी और ग्रामीण जीवन 116
4.2 विवाह पूर्व और विवाहेत्तर सन्बन्ध 121
4.3 नारी जीवन की अस्मिता और स्वतंत्रता 131
संदर्भ ग्रंथ सूची 139

5. अलगाव, तनाव ,और विडम्बना सम्बन्धी विमर्श 143

5.1 समकालीन कहानी और अलगाव बोध 144
5.2 तनाव, ऊब और परिवेशगत विडम्बना 151
5.3 विसंगति बोध और नारी जीवन 157
संदर्भ ग्रंथ सूची 167

6. समकालीन कहानी का विकास : अद्यतन सन्दर्भ 170

6.1 परम्परा और आधुनिकता बोध 171
6.2 स्त्री पुरूष सम्बन्ध : बदलते आयाम 180
6.3 देह मुक्ति और नयी नैतिकता 189
संदर्भ ग्रंथ सूची 201

7. भाषा-शैली एवं शिल्प विधान 205

7.1 भाषा-शैली सम्बन्धी विवेचन 210
7.2 बिम्ब और प्रतीक सम्बन्धी विश्लेषण 219
7.3 शिल्प की नवीनता और सीमान्त 225
संदर्भ ग्रंथ सूची 233

उपसंहार
समकालीन हिन्दी कहानी : परिवर्तित स्त्री-पुरूष संबंध 237
संदर्भ ग्रंथ सूची 247

संदर्भ ग्रंथ सूची 248

समकालीन कहानी का विकास : स्त्री-पुरूष सम्बन्ध

समकालीन कहानी विगत पाँच दशकों से चर्चा के केन्द्र में है। जिसका प्रारम्भ स्वातंत्र्योत्तर दौर में उपजे मोहभंग, अनास्था, संघर्ष और बेरोजगारी के परिवेश से माना जाता है। समकालीन और समकालीनता से तात्पर्य अपने युगीन परिवेश से जुड़ाव और युगबोध से सम्पृक्त होना है।

समकालीन कहानी के पूर्व दौर नयी कहानी में भी ऐतिहासिक बोध तात्कालिक बोध और समसामयिक राजनैतिक, सांस्कृतिक बोध सक्रिय रहे हैं। जिनका घनीभूत विकास सातवें दशक के घटनाक्रम से सम्भव हो पाया है। संयुक्त परिवार के बजाय एकल परिवारों के निर्माण महानगरीय जीवन की आपाधापी, शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में परिवर्तन तथा औद्योगिक विकास की प्रवृत्ति ने स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में अभूतपूर्व परिवर्तन रचा है।

स्त्री घर-गृहस्थी की वैभवपूर्ण उपादान ही नहीं है और न ही केवल उपभोक्ता समाज की पण्यवस्तु। वह भी सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक और संरचना में विश्व के अर्ध्दभाग का प्रतिनिधित्व रचती है । भारत वर्ष के पुरूष प्रधान समाज में स्त्री की अस्मिता, वरेण्यता और श्रेष्ठता सहभाग को पुरूषप्रधान समाज की दृष्टि से समुचित रूप में स्वीकारा नही गया है। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के पक्ष और विपक्ष में काफी कुछ लिखा गया है। जिसका लेखा-जोखा करना वह भी कहानी संरचना के अन्तर्गत हमारे शोधकार्य का ध्येय है।

यह सच है कि एक ही कालखण्ड, समय और युगबोध में विभिन्न प्रवृत्तियों,विचारों और दार्शनिक भावबोध के रचनाकार सक्रिय रहते हैं । कोई रचनाकार आंतरिक मनोवृत्तियों का सजग चितेरा होता है तो कोई कथाकार बाह्य परिवेश और युगबोध को विशेष महत्व देता है। निर्मल वर्मा ,राजेन्द्र यादव, मैत्रेयी पुष्पा और नासिरा शर्मा जहाँ आन्तरिक अनुभूतियों के रचनाकार है तो उसी दौर के नयी और समकालीन कहानी के भीष्म साहनी, मोहन राकेश, कमलेश्वर, चित्रा मुद्गल और दीप्ति खण्डेलवाल आदि रचनाकार मध्यवर्गीय स्त्री-पुरूष सम्बन्धो के बाह्य अनुभूतियों एवं रूपों को रेखांकित करते है।

1. समकालीन कहानी : स्वरूप क्षेत्र एवं युगीन संदर्भ

समकालीन कहानी के विकास में विभिन्न कहानी आन्दोलनों, प्रवृत्तियों, विचारधाराओं और रूझानों की चर्चा आवश्यक है। कारण युगीन परिवेश और सामाजिक, राजनीतिक घटनाक्रम में परिवर्तन के अनुरूप स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में लोमहर्षक और युगान्तरकारी परिवर्तन आये है। [1] अतः विभिन्न कहानी आन्दोलनों के अन्तर्गत उनकी चर्चा और विश्लेषण एक दुःसाहस भरा कार्य माना जायेगा।

समकालीन कहानी के व्यापक क्षेत्र में नयी कहानी आन्दोलन के अधिकांश रचनाकार सक्रिय रहे है। अतः समकालीन कहानी के स्वरूप और क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्व पीठिका के रूप में नयी कहानी आन्दोलन और योगदान की चर्चा अवश्यम्भावी है। समकालीन कहानी की परिभाषा में एक और कहानी संरचना और शिल्प विधान का जुड़ाव समसामयिकता तात्कालिकता और युगबोध से रहता है, तो दूसरी ओर ग्रामीण बोध, आंचलिक बोध, के समानान्तर महानगरीय जन जीवन की विषमता और त्रासदी से भी दो चार होना है। कस्बाई मानसिकता से उभरकर वैश्विक माहौल में अपनी अस्मिता पहचानना भी है।

1.1 समकालीन कहानी : परिभाषा एवं स्वरूप

समकालीन शब्द एक कालवाचक संज्ञा है , प्रत्यय है। विश्वम्भर नाथ उपाध्यय के विचारानुसार -" 'समकालीन' शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खंड़ या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है, इसे उलटकर कहें तो कह सकते हैं कि मनुष्य की वास्तविक स्थिति को देखकर उसे अंकित या चित्रित करके ही हम समकालीनता की अवधारणा को समझ सकते हैं।"[2] लेकिन हमारे आधुनिक भारतीय साहित्य में 'समकालीनता' पद का प्रचलन नयी कविता और नयी कहानी के बाद के रचना सन्दर्भो को लेकर हुआ है। अतः नरेन्द्र मोहन ने कहा भी है कि-'समकालीन' का अर्थ किसी कालखण्ड़ या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण भर नही है बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना उनके मूल स्त्रोत तक

पहुँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है। समकालीनता तात्कालिकता नहीं है।" (3)

गंगा प्रसाद विमल 'समकालीनता' को एक काल प्रत्यय मानते हुए भी रचनाकारों की समानधर्मिता को वैचारिक स्तर पर महत्व देते हुए कहते हैं कि "समकालीनता का अर्थ यह नही है कि दो व्यक्ति एक विशेष काल खंड में जी रहे हो और संयोग से वे रचनाशील भी है। जिस समकालीनता की बात की जा रही है उसका शब्दार्थ की धारणा से सम्बन्ध नहीं है, अपितु वह जीवन बोध के आधार पर समानधर्मी रचनाकारों के बोध की समानधर्मिता है।"(4) बकौल वेद प्रकाश अमिताभ के " समकालीनता शब्द वस्तुतः आधुनिकता का लघु रूप है तथा एक विशिष्ट समय से सम्बन्ध है, लेकिन समकालीन कहानी में समय और उम्र का इतना महत्व नही है, जितना समान दृष्टि का हैं । अतः इस की समान जीवन-दृष्टि वाले व्यक्ति है। समकालीन कहानीकार कहे जा सकते हैं जो समान स्तर पर आज के जीवन की विसंगतियों, विकृतियों और संत्रास को झेल रहे हैं ।"(5)

सुरेन्द्र चौधरी के विचारानुसार- "समकालीनता देशकाल से संबध्द है यानी ऐतिहासिक है यानी काल-विशिष्ट है, सामयिक संदर्भ, मानवीय प्रसंग है, राजनीति को भावबोध द्वारा कहानी में रूपांतरित किया जाता है। ऐतिहासिक दबाव भी है, विरोधी पक्ष को देखा समझा है, इसके बिना समकालीनता नहीं हो सकती है। समकालीन साहित्य को हमने अपनी आखों से बनते देखा है, एक बडी परम्परा को देखा है, और उभरती नयी पीढी को जो सृजन और संवेदना का नया उत्साह लेकर आई।"(6)

"समकालीन भावबोध में परिस्थितियों को देखने का एक विशेष कोण होता है, इस संबंध में दूधनाथ सिंह का कथन है -"समकालीनता का अर्थ है परिवर्तनों और परिस्थितियों के सही कोण से देखने का आग्रह।"(7) लेकिन दूधनाथ सिंह के उपर्युक्त विवेचन के बरक्स विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का अभिमत समकालीनता की परिभाषा के ज्यादा मान्य होगा कि "समकालीनता एक काल में साथ-साथ जीना नहीं है। समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना है । समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है।"(8) समकालीनता राज्य सत्ता के विरोध में है, क्योंकि राज्य ही आम आदमी के हितों के विरूध्द खासुलखास के स्वार्थो की पूर्ति में लगा हुआ है और इस प्रक्रिया का संगठित विरोध होने पर राज्य अपनी 'साम्रज्यवादी' परम्परा का उत्तराधिकारी होने के नाते, नृशंस दमन और जनोत्पीड़न का मार्ग अपना रहा है।"(9)

समकालीनता को आधुनिकता का पर्याय माना जा सकता है, बशर्ते आधुनिकता संकीर्ण और कुत्सित भाव को अपने दामन से अलग कर बेदाग

हो जाये। अतः कहा जा सकता है कि आधुनिकता में कुत्सितता या संकीर्णता का कोई भी स्थान नहीं है, क्योंकि ये अवांछनीय है, अमानवीय है। आधुनिकता अपने समय के स्वरूप की पकड़ और पहचान है। आधुनिकता के लिए मात्र विकल्प चुन लेना या निर्णय ही काफी नहीं अपितु उसे हकीकत में बदलने के लिए संघर्ष करना भी आधुनिकता और समकालीनता का ही कार्य होता है।

"साहित्यकार को अपने युगीन परिवेश और स्वरूप से गहरा तादात्मय बोध व संबंध रहता है। परिवेश साहित्य में चित्रित होता है। एवं साहित्य परिवेश में अनेक परिवर्तनों का कारण बनता है।"(10) कहानी का स्वरूप भी परिवर्तित परिवेश का यथार्थपरक अंकन रहता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी कहा है कि "उपन्यास और कहानी के लिए (समसामयिक) यथार्थ प्राण है। उसके न रहने से उपन्यास व कहानी प्राणहीन वस्तु बन जाती है।"(11) परिवेश और युगीन स्वरूप से कटकर कोई भी साहित्यकार सच्चे व समर्थ साहित्य की रचना नहीं कर सकता। किसी भी युग के साहित्य को समझने के लिए उन्हे तत्कालीन परिवेश के सन्दर्भ में रखकर देखना ही उचित है। "साहित्य की किसी विधा के विकास को लेखकों और रचनाओं के नामों से समझा जा सकता है, प्रवृत्तियों से जाना जा सकता है, लेकिन सबसे सही तरीका उस परिवेश और पृष्ठभूमि को पहले समझ लेना है, जो लेखक के मानस-विश्व और लेखन की प्रवृत्तियों को निर्धारित करते है।"(12) कहानी के परिवेश पृष्ठभूमि और क्षेत्र में तात्विक सम्बन्ध रहता है और अंतर भी। प्रसंगवश समकालीन कहानी के क्षेत्र पर भी चर्चा आवश्यक होगी।

1.2 समकालीन कहानी का क्षेत्र

साहित्य जगत के इतिहास को देखें तो कहानी को सामाजिकता से जोड़ने का प्रयास प्रेमचन्द ने किया। घीसू माधव जैसे पात्रों का सृजन कर जीवन की वास्तविकताओं का साक्षात्कार प्रेमचद ने कराया और कहानियों में अभिजात्य वर्ग के बजाय निम्न वर्ग को प्रतिष्ठित किया। कहानी को सामाजिकता से जोड़ कर जो भूमिका तैयार की उसमें सभी कथाकारो ने अपना-अपना योगदान दिया।

आजादी के बाद मात्र सत्ता का हस्तांतरन हुआ। सत्ता विदेशी शोषकों के हाथ से निकल कर देशी पूंजीपतियों पद लोलुप नेताओं के हाथों में आ गई और अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिए आजादी के समय किये गये त्यागों को याद दिलाया और जनता को मूर्ख बनाया। ऐसी स्थिति में अवसरवादियों ने पर्याप्त लाभ उठाया और जनता का हक जनता को दिलाने के लिए हर अथक प्रयास किया। प्रेमचन्द ने जिस व्यापक सहानुभूति के साथ गाँवों से लेकर शहारों तक फैली दीन-हीन जनता के जीवन की विसंगतियों और संघर्षों का चित्रण किया, नये कहानीकार इससे विमुख

होकर भ्रष्टाचार में आकंठ निमग्न, महत्वाकांक्षी अवसरवादी एवं सुविधाभोगी मध्यमवर्ग को कहानी का केन्द्र बनाया।

पूर्ववर्ती कथाकारों में जैनेन्द्र और अज्ञेय, अश्क आदि की मनोवैज्ञानिक दार्शनिकता का पुरजोर विरोध करने वाले नई क्रान्तिकारिता का उद्घोष करने वाले नये कहानीकारों ने पाश्चात्य परिवेश और पीड़ा को पात्रों के माध्यम से मुखरित करना आरंभ किया। इनकी कहानियों में भाषायी शब्द जाल,सामाजिकता के स्थान पर आत्मनिबध्द वैयक्तिकता और समवेत राष्ट्रीय दिशा के स्थान पर भयानक निरूद्देश्यता की अभिव्यक्ति हो रही थी। कहानी को गाँव और 'शहर' की सीमाओ में बाँट कर उसकी व्यापक सामाजिकता को तोड़ने का प्रयास किया गया। कला कला के लिए साहित्य को विचारधारा से रहित करने के आग्रह ने सलिलता और सौष्ठव से भाषा को नया संस्कार दिया लेकिन वैचारिक स्तर पर उसे दिवालिया बना दिया।"[13]

पहले अकहानी आयी फिर समकालीन कहानी ,समकालीन कहानी और समसामायिक कहानी में भी फर्क है। समकालीन कहानी का तात्पर्य उस कथा आन्दोलन से है जिसे कथा आन्दोलन के रूप में डॉ.गंगा प्रसाद विमल ने खड़ा किया और एक नया तर्कजाल बुनकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाने की कोशिश की। विमल जी के ही शब्दों में -"समकालीन कहानी रचना की कोई नयी विधा नहीं है, न ही नये लोगों का कोई रचनात्मक आन्दोलन इसे कहा जाना चाहिए, अपितु वे सब रचनाकार जो कम से कम रोमांटिक भाव बोध तथा परम्परागत स्थिति से अलग है और कथा रचना में अपने समग्र नयेपन का आग्रह रखते है-समकालीन रचना के रचनाकार है।"[14]

सुधीजन जानते है कि भारतीय जन जीवन में स्वतंत्रता के पश्चात एक नए अनिश्चित और व्यापक उव्देलनमय समाज का जन्म हुआ है,जो हर दिन अपना रूप स्वरूप बदल रहा है,प्राचीन और बूढी निष्क्रिय सांस्कृतिक परम्पराओं के लिए शिथिल और प्रवंचनामय संस्कार और परिवर्तित मूल्य का युग एक ऐसी पृष्ठभूमि है जिसमें व्यक्तिमन एक विघटन ,विश्रृंखलता और टूटन महसूस करता है। हर सम्बन्ध टूटता-सा, संकटग्रस्त है या वह नए परिवेश के अनुकूल नवीनीकरण की प्रक्रिया-पीडा झेल रहा है। व्यक्ति के अस्तित्व-बोध को स्वरूप और उसकी संवेदना की प्रकृति भी बदल गई है। शायद अन्तर्विरोध और जटिलता ही आज के युग की वास्तविकताएँ है। युग-जीवन की इसी जटिलता और अन्तर्विरोधसे व्यक्तिमन की जटिलता और अन्तर्विरोध उपजे हैं और हमारे वैयक्तिक और सामाजिक सम्बन्धो में एक अन्तर्विरोधी, गुत्थिमय अन्तर्व्दव्द समा गया है।"[15] जिसकी अभिव्यक्ति विभिन्न कहानियों में पाते है।

समकालीन कहानी जहाँ मानवीय जीवन की आपाधापी संघर्ष चेतना और परिवर्तित मूल्यबोध एवं स्त्री-पुरूष के नये मानमूल्यों से जुडी है वह निसन्देह पुरानी कहानियों से अलग है। वैसे भी आधुनिक कहानी पुरानी

कहानी की तुलना में छोटी और संक्षिप्त होती है। पुरानी कहानी में अलौकिक और अति प्राकृत तत्वों की प्रधानता होती थी,आधुनिक कहानी लौकिक और जीवन के यथार्थ को महत्व देती है। पुरानी कहानी चमत्कार और अविश्वसनीयता पर भरोसा करती थी, आधुनिक कहानी ने स्वाभाविकता और विश्वसनीयता का मार्ग अपनाया। पुरानी कहानी में कौतूहल,जिज्ञासा और उत्सुकता बनाए रखने के लिए अप्रासंगिक करतब भी हुआ करते थे; आधुनिक कहानी ने सहजता, प्रामाणिकता और जीवन्तता को महत्व दिया। पुरानी कहानी अक्सर ही तर्किकता के बन्धन से मुक्त होती थी; आधुनिक कहानी का न केवल अपना एक रचनात्मक तर्क होता है बल्कि वह बौध्दिक तार्किकता को भी सन्तुष्ट करती है। [16] पुरानी कहानी में संयोग और आकिस्मकताओं की प्रधानता होती थी; आधुनिक कहानी जीवन के कार्यकारण' नियम को सन्तुष्ट करती है। पुरानी कहानी किसी पुराण , धर्म ग्रन्थ, प्रबन्धकाव्य आदि के आनुषंग रूप में नीति और बोध का माध्यम होती थी या फिर किस्सागोई और गप्प की तरह शुध्द मनोरंजन का साधन होती थी; आधुनिक कहानी की पहचान उसकी स्वतंत्र कलात्मकता है और आज वह साहित्य की एक गंभीर विधा के रूप में प्रतिष्ठित है।

"समकालीन कहानी जीवन की कौंध है, प्रतीति है एक विचार बोध है, परिवर्तित जीवन की साक्षी है,मानवीय सम्बन्धों में आये हुए बदलाव की सूचक है, पुरूष के मुकाबले में स्त्री जीवन की अस्मिता है।"[17] वैसे भी समकालीन कहानी में प्रत्येक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना,हलचल और क्रिया कलाप का अवश्यं भावी प्रभाव पडा है। कहानीकार जिस जीवन -परिवेश में रहता है, वह प्रत्येक दृष्टि से राजनीति से प्रभावित है। आधुनिक कहानी की मूलभूत विशेषता है यथार्थ के प्रति प्रतिश्रुति या प्रतिबध्दता।"[18]

समकालीन कहानी के क्षेत्र में कोई भी मानवीय अनुभूति अवांछित नहीं है। यह सडक, चौराहे, पब, रेस्टोरेन्ट, रेलवे स्टेशन, बस स्टैण्ड, स्कूल, कॉलेज, कार्यालय से लेकर बेडरूम की रतिक्रियाओं और विवशताबोध, हताशा, निराशा और संघर्ष भाव से भी अनुस्यूत है। कोई भी भाव प्रतीति बोध इससे अछूता नहीं है। यह शिल्प के स्तर भी नयी भाव भंगिमाओं और तलख अभिव्यक्ति की कायल है।

मोहन राकेश के शब्दों में "आज कुछ लोग नई कहानी या समकालीन कहानी का सम्बन्ध एक विशेष तरह के शिल्प या वस्तु के साथ जोडकर उसका मूल्यांकन करना चाहते है... हमारी रचना का क्षेत्र निःसीम है और रचना की वास्तविक सिध्दि उसके प्रभाव की व्यापकता में है। इसके लिए इतना ही आवश्यक है कि लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट हो और उसकी रचना उसके और पाठक के बीच एक घनिष्ठता की स्थापना कर सके। इसके लिए अभिव्यक्ति में जिस स्वाभाविकता की आवश्यकता है,वह जीवन की सहज अनुभूतियों से जन्म लेती है और वह स्वतः ही रचना को सहज संवेध बना देती है। ये अनुभूतियाँ हमें जीवन के हर पक्ष और हर पहलू से प्राप्त ही सकती है।" [19]

1.3 समकालीन कहानी : युगीन संदर्भ

समकालीन कहानी के विस्तृत परिप्रेक्ष में युगीन संदर्भ अपने विभिन्न कोणो ,रूपो कों और अभिप्रायों में झिलमिलाते हैं। मानवीय जीवन में व्याप्त विषमताओं और विसंगतियों के प्रति पीडा और आक्रोश का भाव परिलक्षित होता है।

समाज में व्यक्ति जन्म लेता है और वह खान-पान तथा निवास करता है। इसी प्रकार साहित्यकार भी समाज का एक सचेतन प्राणी समाज के अन्य व्यक्तियों के समान ही होता है। परिवेश और साहित्य रचना के संबंध-सूत्रों में कई जोड और मोड़ आना स्वाभाविक रहता है। मार्क्स ने इस संबंध में अपना मत प्रतिपादित करते हुए कहा है कि कला अथवा साहित्य मानव महत्ता की प्रतिष्ठा मौलिक उपकरणों द्वारा ही कर सकते है। मानवत्व मात्र चेतना नहीं, जीवंत मानव का समानार्थक है। रचनाकार अपने सामाजिक परिवेश से अत्यंत सचेतन रूप से संपृक्त रहकर पूरी सच्चाई के साथ अपने रचनात्मक दायित्व को निभाता रहता है। डॉ.नगेन्द्र के शब्दों में " समाज साहित्यकार का सामाजिक व्यक्तित्व-सर्जक, व्यक्तित्व-अभिव्यक्ति, प्रक्रिया-साहित्य। युगीन परिवेश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सर्जक चेतना को तो प्रभावित करता ही है,साथ ही पाठक को भी प्रभावित करता है।[20] परिवेश के प्रति जागरूकता ने व्यक्ति को समाज से बडी गहराई से संपृक्त किया है। इसी कारण से सामाजिक चेतना मुखरित हुई है। चूँकि व्यक्ति जानता है कि समाज के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं है। रचनाकार समाज के प्रति प्रतिबध्दित होता है। साहित्यिक आन्दोलनों का लक्ष्य भी सामाजिक सरोकार ही है। सामाजिक समस्याओं से जूझने में व्यस्त है। "आज का भयावह यथार्थ मानस को मथता है जिसके कारण जीवन विषम से विषमतर होता जा रहा है।"[21]

आज हमारे समाज में विषमताएँ और विसंगतियाँ हैं। सड़ी गली और रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था को हटाने के प्रति एक गहरा आक्रोश है। समाज ये जो रूढ़ियाँ थी उसे बदलने के लिए समकालीन रचनाकारों ने अथक प्रयास किया है। मार्क्स ने अपने विचार व्यक्त किया "भौतिक जीवन की उत्पादन-विधि, राजनीतिक एवं बौध्दिक तथा सामाजिक जीवन की प्रक्रिया को साधारण तथा निश्चित कर देती है। मनुष्य-चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती है, अपितु सामाजिक व्यवस्था मानव-चेतना को संचालित करती है। अपने विकास की विशिष्ट प्रक्रिया में समाज की उत्पादन-शक्तियों का टकराव उत्पादन के साधनों से होता है। तभी सामाजिक क्रांति का श्रीगणेश हो जाता है। आर्थिक संरचना में परिवर्तन के साथ समाज की समस्त आधारभूत संरचना में परिवर्तन हो जाता है।" [22] समाज में यातना आज भी है, उसका स्वरूप बदला है। "अब किसी होरी - धनिया को साहूकारी सामंतवाद का शिकार नहीं होना पड़ता, अब तो अपने

हाथों से निर्वाचित सरकार का तंत्र उसे पीस-पीसकर अधमरा कर देता है। स्वाधीन भारत का आदमी अपनी ही भाई-बिरादरी से डरा,सहमा रहने लगा।"(23)

आज समाज में पारिवारिक विघटन होते जा रहे हैं। शोषण से निम्न ,मध्यवर्ग दुखी है, सुनने वालों के कान शायद नहीं है। समकालीन कहानी में इनका चित्रण हुआ है । पं.विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की 'सफर' पारिवारिक संबंधो के बदलाव को समर्पित करती है। आजकल की शिक्षित पुत्रवधुएँ वृध्द सास-ससुर का अनवश्यक भार उठाने की जहमत नही लेना चाहती अपना स्वतंत्र उन्मुक्त और इच्छित जीवन जीना चाहती है यदि पति नेही मानता और अपने माता-पिता को कुछ समय के लिए भी साथ रखना चाहता है , तो पत्नी बच्चों को लेकर मायके जाने की धमकी देती है, और पुत्र चुप हो जाता है, वह अपनी गृहस्थी की सुख-शांति समाप्त नहीं करना चाहता। स्त्री पुरूष या पति-पत्नी संबंधो का पारम्परिक रूप 'एक छत के नीचे' आज विपरीत है। सी.भास्कर राव ने ऐसे दम्पति की कथा रोचक ढंग से कही है, जो एक छत के नीचे रहते हैं, परन्तु उनमे पति-पत्नी जैसा लगाव न होकर अलगाव है। वे छत के नीचे केवल रहते है परन्तु अपने विगत में खोये रहते हैं, जबकि पत्नी एक नारी रूप में किसी पुरूष से प्रेम करती थी, और उससे विवाह न हो सका। उसी प्रकार पति पुरूष रूप में एक स्त्री से प्रेम करता था और विवाह उससे नहीं हो सका। समाज व्यवस्था के अनुसार पति-पत्नी के रूप में उन्हें एक छत मिली है, जिसके नीचे उन्हें रहना पडता है: " रेल की दो पटरियों की तरह वर्षो से वे अपने-अपने सुख-दुख को लेकर समान्तर साथ-साथ जीते रहे। फिर भी एक दूसरे से अनजुड़े, असंबध्द,साथ होते हुए भी अलग ।"(हंस 1979)

पति-पत्नी के संबंध दिखावे के भी हो सकते है। एक छत के नीचे रहते हुए भी उनके मन विगत के संबंधों से जुड़े रहते हैं, उनके लिए विवाह और प्रेम में एक गहरा अंतर है। स्त्री-पुरूष सोचने लगे है कि प्रेम और वासना में कोई अंतर कैसे हो सकता है ? दोनों एक दूसरे के सहारे ही चल सकते हैं । प्रेम करने में स्वतंत्रता है। एक के बाद दूसरा प्रेम क्यों नही किया जा सकता है ? प्रेम कोई पाप नही है। समकालीन कहानी में इस तरह के भाव पूर्ण रूप से व्याप्त हैं।

अर्नेस्ट फिशर के शब्दों में : "राजनीति नैतिकता का ही व्यापक रूप है।" लेकिन समकालीन सन्दर्भ में नैतिकता का कोई विशेष योगदान या महत्व राजनीति में लक्षित नहीं होता है, 'राजनीति' को परिभाषित करते हुए ईस्टन का मत है : " वे समस्त प्रकार की गतिविधियाँ राजनीति कही जा सकती है, जो सामाजिक नीति के निर्माण और क्रियान्वयन से जुड़ी होती है।"(24)

समकालीन परिवेश में राजनीतिक गतिविधियों का जोर-शोर अधिक है। राजनीतिक परिवेश की ये कहानियाँ ही कालान्तर में इतिहास बोध जगाती है। बिना इतिहास को समझे अपने युग को समझा नही जा सकता

है। समकालीन राजनीति को समझने के लिए 60 से पूर्व की राजनीतिक परिस्थितियों को जानना और समझना आवश्यक होगा।

राजनैतिक चिंतन का भी परिवेश पर प्रभाव पड़ता है। जो राजनीति विचारधारा जनहित के उद्देश्य को लेकर चलती है, वह अपना प्रभाव हर एक पर डालती जाती है यदि चिन्तन के साथ उसकी कथनी व करनी होती है तो आम जनता में उनकी साख बनी रहती है। वे सम्मान के पात्र बनते है । देश प्रगति के पथ पर बढ़ता है। आम जन में भी इससे आत्मविश्वास और सजगता उत्पन्न होती है। उसे देश के प्रति अपनी पूरी भागीदारी समझनी चाहिए । अगर इसके विपरित होती है। तो 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत चरितार्थ हो जाती हैं और राष्ट्रीय चरित्र में गिरावट आ जाती है। ऐसी स्थिति में देश का अहित ही संभव होता हैं । समकालीन कविता के कवियों ने भ्रष्ट शासन के खिलाफ विद्रोह का स्वर बुलन्द किया हैं । समकालीन कवियों ने राजनीतिक विसंगतियों का ऐसा व्यंग्यपरक खाका खींचा होता है ये कवि आक्रोश और तनाव के कवि है।

समकालीन रचना दृष्टि, समता, स्वतंत्रता और मानव गरिमा को लेकर चली हैं। वह शोषण का विरोध करती है। शोषित व्यक्ति के संघर्ष का चित्र प्रस्तुत कर रही है । समकालीन साहित्य एक अराजकता का अनुभव कर रहा है। जिसमे उसे नई संस्कृति-दृष्टि विकसित करनी पड़ी है। जो प्राचीन संस्कृति से भिन्न है। परन्तु अपनी संस्कृति और अस्तित्व को सुरक्षा देना साहित्य का प्रथम दायित्व है। समकालीन कहानी की मूल्य-स्थापना की अपनी दृष्टि है और रचना धर्मिता में सामाजिक प्रतिबध्दता के दायित्व का निर्वाह सफल रूप मे करने से समर्थ है। यथार्थ के विद्रूप को दिखाने का अर्थ सांस्कृतिक विघटन नही होता है।

समकालीन कहानी में स्त्री और पुरूष के संबंध में आधुनिक संस्कृति की छाप दिखाई देती है। समकालीन नारी एक के बाद दूसरे प्रेम को बुरा नही समझती है। दोनों को दो अलग समय में पूरी शिद्दत के साथ जीती है, प्रेम करती है। यह सांस्कृतिक बदलाव है। नई पीढी रूढ संस्कारों से मुक्त रही है। संस्कृति का वही रूप उसे स्वीकार है जो आज उपयुक्त है। आँख मूंद कर संस्कृति के नाम पर वह कुछ भी मानने को तत्पर नहीं है। इसका कारण उसका स्वतंत्र चिंतन है वह अपना जीवन अपने ढंग से जीना चाहता है। अतः संस्कृति को समयानुरूप बदलना कुछ अनुचित नहीं है।

समकालीन दौर में मानव एक ओर आधुनिक सुख-सुविधाओं के बीच जी रहा है और दूसरी उपभोक्ता समाज के बीच पण्य वस्तु की तरह बिक रहा है। स्त्री-पुरूष के जीवन में अब विवाह पूर्ण और विवाहोत्तर यौन संबंधों में अभूतपूर्व बदलाव आ चुका है। विवाहित स्त्री-पुरूष की अपनी ऊब ,तनाव और विवशता को करने के लिए अन्यथा यौन संबंध विकसित कर देते है। जिसका विस्तृत विवेचन इसी शोध कार्य के चतुर्थ अध्याय 'स्त्री-पुरूष संबंध : परिवर्तित समाज और विश्लेषण में किया जायेगा।

सुधीजन जानते है कि वर्तमान दौर के उपभोक्ता व वैज्ञानिक युग में मनुष्य व्यस्तताओं से घिरा रहता है। सुख सुविधाओं के बीच भी वह अकेला है। रूटीन जीवन से ऊबकर कुछ मन बहलाव करना मानव स्वभाव है। घर पर ही टी.वी, रेडिओ, वीडियो के बावजूद वह बाहर भागता है क्योंकि ये सभी मनोरंजन के साधन 'घर' में है तब फिर घर के बाहर शेष रहता है,होटल या क्लब क्लब संस्कृति भी अंग्रेजों की देन है। आज क्लबों के सदस्य बनना सभ्य सुसंस्कृत समाज में रहने के लिए जरूरी है। क्लब में डांस, गाना तथा शराब कबाब के दौर चलते हैं। साथ ही साथी का अभाव भी नही खलता। नये साथी आसानी से मिल जाते है। काम सम्बन्धों में नवीनता की चाहत से पुरूष क्लबों की ओर भागता है। कुंठित व्यक्ति भी यहाँ आकर राहत पाता है। मानसिक चिंता से भी मुक्ति पाता है। शोर ,शराब, नृत्य, डिस्को में गम भूल जाता है। स्त्रियाँ भी क्लबों में आकर आधुनिका कहलवाना पसन्द करतीं हैं। नये-नये पुरूष मित्र उन्हें वहीं मिल जाते हैं। उच्च मध्यवर्ग पैसे बचाने के लिए घर पर ही क्लब की तरह किटी पार्टियों का आयोजन कर लेते हैं तथा वहाँ कैबरे डांस छोड़कर सभी तरह की क्लब वाली सुविधाएँ उपलब्ध होती है। (25)

°कहना न होगा कि समकालीन कहानी अपने विस्तृत परिप्रेक्ष्य में पूरी जीवंतता से अपने परिवेश से जुड़ी हुई है। परिवेश के प्रति अतिशय संवेदनशीलता ने कहानीकार में विशेष आत्मसजगता ला दी है। जिससे इनकी कहानियाँ अपने समय की सच्चाइयों के दस्तावेज के रूप में देखी जा सकती है।

"जीवन स्थितियों के तीव्र बदलाव के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों में परिवर्तन आया है। मूल्यों के प्रति बदली हुई दृष्टि पूरी तरह समकालीन कहानी में चित्रित हुई है।"(26) समकालीन कहानी में भी जीवन में पीढ़ियों के अन्तर बात को स्वर मिलता हैं । हमारी सोच और चिन्तन-प्रक्रिया में जीवन में प्रेम विवाह, विवाह, परिवार में माँ-बाप, भाई-बहन, पिता-पुत्री आदि सुदृढ़ सम्बन्धों के प्रति बहुत अंतर आया है।

समकालीन कहानी में मूल्यों के प्रति परिवर्तित दृष्टि का बहुत विस्तार और सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है। स्वतन्त्रता के कारण व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हुआ जिस कारण संयुक्त परिवार जो पूर्व से चले आ रहे थे। बिखर गये और एकल परिवार ने अपना अस्तित्व बना लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि आत्मीयता का स्थान अर्थ ने ले लिया। आत्मीय रिश्ते अब अर्थाश्रित हो गये ।

समकालीन कहानी के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में स्त्री-पुरूष संबंध इतने विविध आयामों में चित्रित हुए है कि आश्चर्य होता है समकालीन कहानी कही अवचेतन का प्रतिबिम्ब बनकर आती है और अपनी अधूरी अतृप्त इच्छाओं का रूपक । धर्मयुग में निर्मल वर्मा ने लिखा था कि " कहानी अंधेरे में एक चीख है।" और कहानीकार एक डिटेक्टिव की तरह है जो अंधेरे की 'झाड़ी' में छिपे 'संदिग्ध' 'यथार्थ' का लगातार पीछा करता रहता

है –केवल पीछा करता है, पाता नहीं" क्योंकि अन्ततोगत्वा कहानी सिर्फ एक कोशिश है...जो महज एक मरीचिका हो सकती है।" लेकिन फिर भी लेखक के लिए लिखना एक 'अभिशाप है, लिख पाना एक अनिवार्य नियति है,जिससे भागा नही जा सकता। इसके साथ ही यह भी जानना आवश्यक है कि निर्मल के लिए अंधेरे का यह 'टोटल-टेरर'भी "सिर्फ संदर्भ है- कहानी का विषय नही", "विषय कुछ भी हो सकता है- ड्राइंग रूम के प्रेम से लेकर अपनी चहारदीवारी में फर्श पर रेंगती हुई धूप को देखने तक।"

सार संक्षेप में कहा जायेगा कि समकालीन कहानी एक किशोर भावुकता की नजरों से स्त्री-पुरूष सम्बन्धों का रंगारंग चलचित्र भी है तो कही भय, आतंक, विवशता, बुभुक्षा में जीते हुए स्त्री-पुरूष सम्बन्धों का वांछित फैण्टेसी लोक भी है। जिसे हम विविध रचनाकारों की कलम से मूर्तिमान होते हुए देख सकते हैं। चाहे वे निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर हो या मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा और चित्रा मुदगल दावे आन्तरिक मनोभावों के सटीक चित्रण के है।

प्रथम अध्याय : सन्दर्भ सूची

लेखक	पुस्तक	
1. रोहिताश्व	: शोधकर्त्री की निजी वार्ता, गोवा विश्वविद्यालय दिनांक 21/07/07	
2. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	: समकालीन कहानी की भूमिका	पृ.2
3. नरेन्द्र मोहन	: समकालीन कहानी की पहचान	पृ.7
4. गंगा प्रसाद विमल	: समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि	पृ.166
5. वेद प्रकाश अमिताभ	: हिन्दी कहानी के सौ वर्ष	पृ.50
6. सुरेन्द्र चौधरी	: हिन्दी कहानी : प्रक्रिया और पाठ	पृ.180
7. दूधनाथ सिंह	: समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि	पृ.7
8. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	: समकालीन सिध्दांत और साहित्य	पृ.16
9. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	: समकालीन सिध्दांत और साहित्य	पृ.61
10. डॅनियल बैल सोसायटी	: द कमिंग ऑफ पोस्ट इण्डस्ट्रीयल	पृ.52
11. हजारीप्रसाद व्दिवेदी	: विचार और वितर्क	पृ.95
12. राजेन्द्र यादव	: कहानी : स्वरूप और संवेदना	पृ.52
13. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	: समकालीन सिध्दांत और साहित्य	पृ.77
14. गंगा प्रसाद विमल	: समकालीन कहानी का रचना विधान	पृ.19
15. धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का सफरनामा	पृ.21
16. धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र	पृ.109
17. रोहिताश्व	: शोधकर्त्री की निजी वार्ता, गोवा विश्वविद्यालय दिनांक 21 सितम्बर2007	

18. पुष्पपाल सिंह : समकालीन कहानी : सोच और समझ पृ.68

19. मोहन राकेश : आधुनिक हिन्दी कहानी पृ.92

20. नगेन्द्र : साहित्य का समाज शास्त्र पृ.104

21. श्रीपतराय : कहानी,(नववर्षांक) जनवरी 1974 पृ.9

22. कैलाश वाजपेयी : साप्ताहिक हिन्दुस्तान 2 मई 1992 पृ.53

23. मैत्रेयी पुष्पा : साप्ताहिक हिन्दुस्तान 9 मई 1992 पृ.43

24. सुरेन्द्र अरोडा : रूढियाँ,साप्ताहिक हिन्दुस्तान 9 मई 1992 पृ.40

25. उषा कीर्ति राणावत : स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श पृ.164

26. पुष्पपाल सिंह : समकालीन कहानी : सोच और समझ पृ.12

२. समकालीन कहानी का विकास : विभिन्न आन्दोलन एवं प्रवृत्तियाँ

समकालीन कहानी के विकास का ऐतिहसिक, सांस्कृतिक परिदृश्य विगत पाँच दशकों का हैं ; जिसमें विभिन्न कहानी आन्दोलनों का विकास कमोबेश रूप से हुआ हैं। **नयी कहानी** आन्दोलन का विकास लगभग दो दशकों तक परिव्याप्त रहा है तो **अकहानी** आन्दोलन लगभग सातवें और आठवें दशक में चर्चित रहा हैं। लगभग यही स्थिति 'नई कहानियाँ' पत्रिका के पश्चात कमलेश्वर की 'सारिका' पत्रिका से जारी **'समान्तर कहानी'** आन्दोलन की रही हैं। जनवादी लेखक संघ (1982) की स्थापना से पुनः नवप्रगतिशील सोच और वामपंथी चेतना की रचनाएँ सामने आयी हैं। सुधी पाठक जानते हैं कि विगत दो दशकों से **'स्त्री विमर्श'** और **'दलित विमर्श'** ने नया रूप अपनाया हैं।

2.1 समकालीन कहानी की पृष्ठभूमि

कहानी के सम्पूर्ण बोध के लिए पारम्परिक कहानी के स्त्रोत की खोज की गई। इस प्रक्रिया में कहानी को पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक-कथा की कहानियों से जोड़ा गया और कभी ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों, उपनिषदों की रूपक कथाओं, रामायण और महाभारत के उपाख्यनों से जोड़ते हुए कहानी

विकास की समीक्षा भी की गयी। लोक कथाओ और पंचतंत्र तथा बोस्ता वर्ग की कहानियों की प्रभावशाली रचना और व्यक्तित्व को तो इस सीमा तक प्रदर्शित किया गया हैं ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो संपूर्ण विश्व के कथाबोध का जन्म इन्हीं से हुआ हो इन कथाओं में विलक्षण कल्पना, चमत्कार, जिज्ञासा, संघर्ष, जय-विजय का चित्रण,घटना-जाल,धार्मिक आस्था, मान्यताएँ, छल-कपट,तथा सामाजिक और व्यक्ति स्वातंत्रय के ऐसे सूक्ष्म बिन्दु लक्षित किये जा सकते हैं जो कहानी प्रकृति की ओर संकेत करते हैं। संभवतः इसी कारणवश कहानी का पाठक जिस कहानी से जुडा है,वह भारतीय एवं विदेशी संस्कृति का जोड हैं।[1] उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारंभ इस दृष्टि से हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक कहानीकारों ने एक ओर भारतीय कथा-परम्परा (पंचतंत्र हितोपदेश) का पारायण किया और दूसरी ओर यूरोपीयन कथाशैली का भी अध्ययन किया। प्रस्तुत संदर्भ में धनंजय वर्मा का मत रहा हैं कि बीसवीं शताब्दी की शुरूआत में पश्चिम में आधुनिक कहानी ने लगभग एक शताब्दी की यात्रा सम्पन्न कर ली थीं। उसके अनेक रूप और परिभाषाएँ बन और टूट चुकी थीं। अंग्रेज के ओ हेनरी, फ्रांस के मोपासाँ और रूस के चेखव- ये तीन कालजयी कहानीकार कहानी को आधुनिक रूप प्रदान कर चुके थे। [2]

प्रेमचंद ,जैनेन्द्र, और अज्ञेय विश्व कथा साहित्य के सजग पाठक रहे है और यही हश्र रांगेय राघव, यशपाल और निर्मल वर्मा का हैं। इसी कारण समकालीन कहानी की पृष्ठभूमि में हमें एक ओर विश्व-कथा साहित्य की श्रेष्ठ रचनाओं के परोक्ष प्रभाव के कारण यथार्थ-वादी मनोविश्लेषण वादी और अस्तित्ववादी कहानियाँ उपलब्ध होती हैं। पर अधिकांश कहानियाँ- ब्रिटिश पूँजीवाद और भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष के दौरान उपजी सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर की कहानियाँ भी हैं।

स्वातंत्र्य संघर्ष के दौरान देशभक्ति ,साहस, वीरता, शौर्य और बलिदान की कहानियाँ प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी, विश्वम्भरनाथ कौशिक, यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त के यहाँ मिलती हैं। प्रेमचंद ने साहित्य जगत में आते ही कल्पना को यथार्थवाद की ओर उन्मुख कर दिया। परिणामस्वरूप दैनिक जीवन की घटनाओं पर कहानियाँ लिखी जाने लगी। देखे-सुने पात्र आये और कहानी में लेखक का अनुभव और वातावरण अभिव्यक्ति पाने लगा। कहानियाँ व्यक्ति-विशेष से प्रभावित होकर लिखी जाने लगी। कहानियों का आधार निजी अनुभव होने लगा।[3] प्रेमचंद कलाकार की तटस्थता में विश्वास नहीं रखते थे। वे जनता के सुख-दुख में भाग लेने वाले कलाकार थे।[4] इसी कारण प्रेमचंद की कहानियाँ अपने सामाजिक परिवेश से जुड़ी हुई हैं। उनकी कहानियों के माध्यम से पाठक भारतीय जीवन के सभी पक्षों से परिचित हो जाता है। कृषकों की समस्याएँ, विधवा समस्या, जाति, धर्म, परंपराएँ, संयुक्त परिवारों में विघटन अछूतोध्दार, जातीय एकता, साम्प्रदायिकता, औद्योगीकरण, आजादी की लड़ाई आदि अनेक ऐसे विषय है

जो प्रेमचंद की कहानी के विषय बने हैं। छोटे-से छोटे सामाजिक प्रसंग उनकी निगाह से नहीं छूट पाए । बिरले ही लोग समाज की ऐसी पहचान रख पाते हैं।

भारतीय समाज का ऐसा कोई पक्ष नहीं जो प्रेमचंद की दृष्टि से परे रह गया हो। उनकी कहानियाँ लोकतांत्रिक समाज व्यवस्था के आरम्भिक संकेत देती हैं। प्रेमचंद की कहानियाँ उस व्यक्ति की ओर भी संकेत करती है जो एक खास किस्म की सामाजिकता से युक्त है और समय - समय पर अपने वर्ग का करता हैं। प्रेमचंद की पैनी दृष्टि संभवतः तम चीर कर देखने की क्षमता रखती है। समाज का कोई भी प्रसंग उनकी दृष्टि से अछूता नहीं बच पाया। जीवन के वे पक्ष जिनकी ओर बडे-बडे आधुनिक कथाकार नहीं देख पाये। प्रेमचंद की दृष्टि ने उन्हें भी बड़ी ही बारीकी से अनुभव किया एवं अपने साहित्य में स्थान दिया। लोक मानस का ऐसा कथाकार निश्चित ही युग दृष्टा हैं।

कहना न होगा कि प्रेमचंद ,विश्वम्भनाथ कौशिक(रानी सारंधा,ताई) को नारी मनोविश्लेषण का गहरा आभास रहा हैं। प्रेमचंद युग में नारी का परिवेश उसकी विविधवर्णी भूमिकाओं को लेकर आया। उनकी परवर्ती कहानियाँ अवश्य ही आदर्शो के आतंक से मुक्त नितांत मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित, मानवीय व्यवहारों से युक्त रही। प्रेमचंदोत्तर युग की कहानी यथार्थ की मनोवैज्ञानिक भूमि पर उतर कर नारी के परिवेश और उसकी निजी अनुभूति स्तर पर घटित प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करती हैं। निरन्तर घटनेवाली घटनाओं ने आज के नारी पुरूष को इतना आत्मचेता एवं आत्म सजग बना दिया कि इसकी प्रतिक्रिया अनेक दिशाओं में परिलक्षित हुई।[5]

समकालीन हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि में नई कहानी आन्दोलन के पूर्व की प्रगतिशील कहानियाँ व सामाजिक सुधार की कहानियों की भी विवादस्पद भूमिका रही हैं। वैसे प्रेमचंद के बाद जो मात्वपूर्ण कहानीकार हिन्दी जगत में अपनी नई प्रवृत्तियों के साथ प्रकाशमान हुए, यथाः जैनेद्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचंद्र जोशी और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि। ये सब के सब विदेशी कथा साहित्य,उसकी कला परंपरा से पूर्ण परिचित तथा बंगला और उर्दू की कहानी कला के शान के साथ पूर्ण सजग और गंभीरता के साथ हिन्दी कहानी क्षेत्र में अवतरित हुए थे।[6]

पारम्परिक आलोचक और अनुसंधान कर्ता नैतिकता और वैवाहिक जीवन के यौन-संबंधों को वरीयता प्रदान करते है। पर स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में विवाहपूर्व, विवाहेत्तर यौन- संबंधों के अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता है। प्रेमचंद की राह से विलगाकर जैनेन्द्र ने स्त्री-पुरूष संबंधो के अभूतपूर्व धरातल तलाश किये है तो यशपाल ने काम भावना के शमन हेतु विवाहेत्तर संबंधों को स्वीकृति दी है। अस्तित्ववादी अज्ञेय ने प्रतीकात्मक भाषा संकेतों से स्त्री-पुरूष,संबंधों की नींव रखी है।

जैनेंद्र ने जहाँ अपनी कहानियों में शरीर-आधारित प्रेम का चित्रण किया है वहीं उन्होंने सात्विक व आत्मिक प्रेम का भी चित्रण किया है। 'जान्हवी' कहानी में 'जान्हवी' किसी अज्ञात प्रियतम के प्रेम में मग्न है। वह रोज कौओं को रोटी के टुकड़े चुगाती है और गाती है..... "दो नैना मत खाईयों,मत खाईयों....पीउ मिलन की आस।" अपने प्रियतम के प्रति उसका प्रेम ऐसा दृढ़ है कि वह माता-पिता व्दारा कहीं विवाह की बात चलाए जाने पर भावी वर को पत्र द्वारा अपनी अनिच्छा जता देती हैं।

'पत्नी' कहानी में पति कालिन्दीचरण राष्ट्रसेवा में निमग्न है और उसकी पत्नी चूल्हे-चौके व घर-गृहस्थी में निमग्न रहकर पति की छोटी-से-छोटी जरूरतों का अत्यन्त सजगता-पूर्वक ध्यान रखती हैं। "राष्ट्र और समाज की सेवा का बीडा उठोए हुए भद्र,शान्त पति कालिन्दीचरण पत्नी के त्याग और मौन वेदना के बल पर अपना यश-मन्दिर खड़ा करता है और जरा-सी बात में पत्नी के ऊपर क्रोध से तिलमिला उठता हैं।"[7] इस प्रकार जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों में स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों के विविध रूपों का चित्रण किया है।

जैनेन्द्र के समान वर्मा, अज्ञेय मनोविश्लेषण और अस्तित्वबोध की विलक्षण कहानियाँ लिखते रहे हैं। चाहे वह 'रोज' कहानी या जयदोल। राम स्वरूप चतुर्वेदी की भी स्थापना है कि-" अज्ञेय व्यक्तिवादी हैं और व्यक्ति के स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास पर बल देते है। उनके मन में "व्यक्ति को नैतिक निर्णय की क्षमता से सम्पन्न करके ही अन्ततः समाज का नैतिक धरातल ऊँचा किया जा सकता है।"[8]

अज्ञेय ने स्त्री-पुरूष संबंधो का चित्रण भी व्यक्ति-बोध के आधार पर ही किया है। प्रेम को लेकर उनकी दृष्टि रोमांटिक है। 'साँप' कहानी में अज्ञेय ने सात्विक प्रेम का चित्रण किया है, वहाँ शरीर का निषेध है। नायक स्वप्न देखता है व स्वप्न को यथार्थ का रूप देने के लिए अपनी प्रेयसी को, "जंगल में, जहॉ सन्नाटा है, एकान्त है, जहाँ सब अपनी-अपनी धुन में ऐसे मस्त हैं कि मस्ती की एक नई धुन बन गई है, वहाँ,जहाँ कोई न होगा, वहाँ चलने को कहता है। प्रेयसी सहज ही उसके साथ चल पडती है। "वह वैसी ही मुग्ध,अपने में सम्पूर्ण मेरे साथ चली आ रहीं थी। मैं उसे देख लेता है , उसके साथ होने की बात सहसा मन में उभरती थी, फिर बीहड़ वन के अकेले, हरे, गीले, धुंधलपनकी, फिर मेरी आँखे उसकी आँखो की कोर से एक ढुलकी हुई लट के साथ फिसलकर उसके ओठों तक आती थी और फिर मेरा मन ठिठक जाता था। आगे वर्णन है कि प्रेयसी को लेकर उसके मन में वासना जागती है परन्तु उसकी सहजता,सरलता,निष्कपटता, व असहायता को देखकर वह स्वप्न की उलझन से मुक्त हो जाता है। स्वप्न में मैने देखा था वह और मौं... हम..लेकिन स्वप्न की उलझन जैसे सुलझ गई,मेरी दोहरी दीठ इकहरी हो गई और मैंने देखा , मैं अलग यहॉ, वह अलग वहॉ, बड़ी सुन्दर, बड़ी अच्छी मेरे साथ जंगल में अकेली, लेकिन अलग वहाँ।"[9]

अज्ञेय की एक अन्य कहानी ' वे-दूसरे' के सुधा व हेमन्त में तलाक हो चुका है व हेमन्त ने अन्तिम विदाई के लिए सुधा को सागर किनारे बुलाया है। विवाह पूर्व दोनों जानते थे कि दोनों का अन्यत्र लगाव रहा है। जो अब भी समप्त नहीं हुआ है। परन्तु फिर भी दोनों ने विवाह कर लिया था। तीन वर्ष तक तनाव पूर्ण वैवाहिक जीवन जीने के बाद उन्होंने तलाक ले लिया। हेमन्त जानता है कि अब अलग होते समय आपसी कटुता को समाप्त कर दिया जाये। कहानी के अन्त में हेमन्त सुधा को उस दूसरे के कदम मिलाकर आते, निर्लिप्त भाव से देखता है। 'अज्ञेय' ने प्रेम को 'आत्मिक भाव' के रूप में चित्रित किया है। यथा किन्तु कैसी अदभुत है यह बात कि जिसकी आत्मा हम दूसरों को सौपने को तैयार है- क्योंकि उसके ब्याह की बात स्वीकार करते है-उसी की देह को सौंपते क्यों हमे इतना क्लेश होता है? 'दूषित' या 'भ्रष्ट' क्या देह होती है,या मन-आत्मा।"[10] देह को वह आत्मा का खोल मात्र मानते है। "मैंने अपनी आत्मा तुम्हे दी-इसीलिए मेरी देह भी तुम लो- क्योंकि वह आत्मा का खोल है।

वास्तव में प्रेम को अज्ञेय वैयक्तिक प्रश्न मानते हैं और 'विवाह' को सामाजिक 'सम्बन्ध' एवं इस प्रकार दोनों मे कोई टकराव की स्थिति नहीं देखते-" सभ्य समाज में अगर ऐसी उलझनें पैदा होतीं हैं,तो सभ्य व्यक्ति उनका सामना भी सभ्य तरीकों से कर सकता है,प्यार जहाँ है, वहाँ हो और विवाह.... विवाह। विवाह तो सामाजिक सम्बन्ध है,व्यक्ति के जीवन में यह बाधक हो ही,ऐसा क्यों हैं ?"[11] कहना न होगा कि अज्ञेय ने स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की विविध स्थितियों का चित्रण मनोविज्ञान व बौध्दिकता के आधार पर किया है। परन्तु इसके बावजूद संवेदनशीलता का उसमे अभाव नहीं है।

प्रगतिशील कहानी आन्दोलन के दौरान यशपाल प्रगतिवादी विचारधारा के लेखक रहे हैं। वे कला को जीवन के लिए मानते है एवं उनका साहित्य सोद्देश्य हैं। साहित्य रचना के पीछे उनका मुख्य उद्देश्य एक शोषण-रहित समाज की रचना में योगदान देना है। प्रगतिवादी लेखक, होने के नाते उन्होंने हर प्रकार के शोषण का विरोध किया है,परन्तु " औरत के शोषण को लेकर उन्होंने शायद सबसे अधिक लिखा है । औरत के शोषण का रूप उजागर न करते हुए यशपाल ने औरत सम्बन्धी सामन्ती पूँजीवादी मानसिकता पर जबर्दस्त प्रहार किया"[12]

सुनत कौर भी यह मानती हैं कि यशपाल ने स्त्री -पुरूष सम्बन्धों के दूसरे पक्ष में उन्हें व्यापक आर्थिक व सामाजिक सन्दर्भो से जोडकर चित्रित किया है।अर्थात उन्हें मार्क्स-वादी दृष्टि से चित्रित किया है। ये कहानियाँ, " औरत के पतन का जिम्मेदार उन आर्थिक सामाजिक शक्तियों को मानती है, जिनका उन्मूलन किए बिना स्त्री और पुरूष के बीच स्वस्थ सम्बन्धों की स्थापना हो हीं नहीं सकती।"[13]प्रसंगवश 'पराया सुख' कहानी यशपाल की अत्यंत महत्वपूर्ण कहानी है। कहानी में उन्होंने चित्रित किया है कि किस प्रकार 'पैसा'सम्बन्धों के निर्धारण में अत्यंत महत्वपूर्ण

भूमिका अदा करता है। सेठी नामक पूँजीपति किस प्रकार एक निम्न-मध्यवर्गीय औरत की अस्मिता पर अपने पैसे के बल पर पूर्ण अधिकार कर लेता है। कारण "उसने सोचा, उसमें बात ही क्या है ? फिर भी वह एक दफे इंकार कर देना चाहती है। परन्तु इंकार का हक है उसे ?वह हक जो सबको होता है, उसे न था, अपनी आत्मा के ही सम्मुख न था। ... वेश्या का जीवन और क्या होता है... ।"[14] समाज के इस दारूण पक्ष को पेश करके यशपाल ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

स्त्री को पुरूष का जो अन्याय एवं अत्याचार सहना पडता है, उसके मूल में यशपाल आर्थिक शक्तियों को निहित मानते है। 'मार का मोल' कहानी में उन्होंने पति के द्वारा मार खाने वाली 'भार्या'स्त्री की तुलना में एवरग्रीन की युवती का चित्रण किया है जिसने युवक को तमाचा मारा है। जयकृष्ण,वेश्या के व्यवहार के स्पष्टीकरण में कहता है, "इस हरामजादी को कौन कोई उम्र-भर का सहारा देने वाला है, जो यह चुपके से मार खा जाए।"[15] वास्तव में पूँजीवादी व्यवस्था का , जहाँ नारी को भोग्या मात्र समझा जाता है,यशपाल ने इसका विरोध किया है, वह एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था चाहते है जहाँ नारी को पुरूष के समान अधिकार प्राप्त हों एवं वह सही मायने में स्वतंत्र हो।

वस्तुतः जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद कहानीकारों ने नारी मन के सूक्ष्म अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित किया। कहानियों के माध्यम से दैनिक चर्यासे ऊबी एकरस जिन्दगी की उदासी से पूर्ण परिवेश, कहीं छद्मवेशी क्रांतिकारिणी स्त्री , कहीं मनोवैज्ञानिक ऊहापोह से ग्रस्त कुंठाएँ पालती स्त्री का परिवेश है। परिवेश हीं नहीं ,परिवेश की 'अदृश्य भयानक छाया' है जिसे कथाकारों ने अभिव्यक्त किया है।

परिवेश के प्रति सजग दृष्टि तो नई कहानी में भी परिलक्षित होती है किन्तु दृष्टि की प्रखरता उतनी नहीं है जितनी पिछले दो दशकों की कहानी में है। रचनाकार के रूप में नारी व्यक्तित्व से अधिक गहन व संश्लिष्ट रूप से जुड़ रहना जिससे यह आभास हो सके ,आज की नारी क्या करती है, कैसे रहती है, क्या सोचती है, किस जिन्दगी को पाने के लिए क्रियाशील है, कितनी संतुष्ट है। यही अपने परिवेश से जुड़ना है।[16] स्त्री-पुरूष संबंधों में जो बदलाव विगत पचास-साठ वर्षो में आये है, उन्हीं का प्रतिफल कतिपय रचनाकारों ने अपनी कहानियों में रचा है।

2.2 समकालीन कहानी के विभिन्न आन्दोलन

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय रचनाकारों के सामने देश के नवनिर्माण नये मनुष्य की अवधारणा,विकास की नयी मंजिले, संयुक्त परिवारों में बिखराव कस्बे,गाँव, जिले से शहरों की ओर अतिक्रमण,कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ और आधुनिकताबोध के कारण नयी सोच, नयी जीवन शैली की विडम्बनाएँ मुखर थी। समय - समय आगे ऐतिहासिक संक्रमण,राजनैतिक

परिवर्तन और सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं ने कहानी की विकास प्रक्रिया को बदला। हिन्दी कहानियों में अलग-अलग आंदोलन पनपे जो कभी पिछले कहानी आंदोलन के विकास की कडी भर रहे, कभी वे समानान्तर रूप से सृजना के दावेदार बने।

समकालीन कहानी के आन्दोलनों में प्रमुख रूप से निम्न कहानी आन्दोलनों की चर्चा अवश्यम्भावी है नयी कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समान्तर कहानी, सक्रिय कहानी, जनवादी कहानी, आदि ।

नयी कहानी : नयी कहानी आन्दोलन के तीन प्रमुख रचनाकार राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, और कमलेश्वर माने जाते हैं। पर उनके साथ-साथ इस आन्दोलन में निर्मल वर्मा, मन्नू भण्डारी, शानी और उषा प्रियम्वदा का नाम भी जुड़ा हुआ हैं।

नई कहानी आन्दोलन के बारे में एक ऐतिहासिक चुटकुला प्रचलित हैं। एक• बार कमलेश्वर से पूछा गया' कि " नयी कहानी आन्दोलन के प्रमुख दावेदार कौन हैं ? कमलेश्वर ने कहा देखो बिच्छुओं की एक पाँत चली जा रही है, आप जिस बिच्छू पर उँगली रखेंगे वहीं• आपको डंक मार देगा। यही हाल नयी कहानी के विभिन्न रचनाकारों का हैं।" बात सच भी हैं- राजेन्द्र यादव ,मोहन राकेश और कमलेश्वर ने ही नयी कहानी का जेहाद खडा किया। पर कहानी के स्वयंभू आलोचक, और कहानीः 'नयी कहानी'के लेखक नामवर सिंह का कथन भी कम विवादास्पद नहीं हैं कि " 'परिंदे' सिर्फ निर्मल वर्मा की पहली कृति नहीं है बल्कि जिसे हम 'नयी कहानी' कहते हैं उसकी भी पहली कृति हैं।"(17)

कभी इलाहबाद के साहित्यिक जगत में कमलेश्वर ,मार्कण्डेय और दुष्यंत कुमार को त्रिशूल की उपाधि दी जाती थी। जिसमें मार्कण्डेय आंचलिक कहानी आन्दोलन के महत्वपूर्ण लेखक और ग्राम जीवन के सजग चितेरे माने जाते थे। मार्कण्डेय और अश्क की आपस में कम हीं बन पाती थी। जिसके प्रमुख कारण नागार्जुन के लेखन की पक्षधरता और विरोध थे। मार्कण्डेय न केवल लोक-गीतों, लोक संस्कारों के ज्ञाता रहे हैं बल्कि वे एक सुधी आलोचक भी है। मार्कण्डेय का कथन रहा है कि नई कहानी से हमारा मतलब उन कहानीकारों से है, जो सच्चे अर्थो में कलात्मक निर्माण है,जो जीवन के लिए उपयोगी और महत्वपूर्ण होने के साथ ही,उसके किसी न किसी नए पहलू पर आधारित है या जीवन के नये सत्यों को एकदम नई दृष्टि से दिखाने में समर्थ है।' नवीनता इसमें नहीं है कि उसमें किसी अछूते भूभाग के अजीब से प्राणियों का वर्णन है, बल्कि इसमें नयापन है कि साधारण मानवीय जीवन में वह कौन सा विशेष नयापन है कि जो सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है, या बिना किसी परिवर्तन के भी जीवन का कौन सा ऐसा पहलू है जो साहित्य में अब तक अछूता हैं। (19)

नया ,नयापन और नयी कहानी के नये अंदाज, नये कथ्य और नये शिल्प को लेकर एक लम्बी बहस चली हैं। जिसके कारण राजेन्द्र यादव ने भी कहा है कि नये की व्याख्या के गंभीर प्रयत्न हुए और कहा गया कि नये युग के अनुरूप संवेदना,दृष्टिकोण और भाव-बोध ही नये होते है-आयु अथवा लेखन-अवधि नहीं। नई उम्र के लेखकों में भी पुराने भाव-बोध के लेखक हो सकते हैं और पुरानों में भी नये ।(20)

लेकिन नयी कहानी आन्दोलन ने अपना सार्थकदाय जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी,यशपाल के लेखन की तुलना में अलग अभिव्यक्ति पैटर्न में रचा है। जिसकी ताईद सुरेन्द्र चौधरी और रामचंद्र तिवारी ने की हैं। कहना न होगा कि नयी कहानी की प्रतिष्ठा के साथ उसका विरोध आरम्भ हो गया था। कहने के लिए तो यह विरोध नयी कहानी की जडता को तोडने और नये जीवन संदर्भ को व्यक्त करने के लिए आरम्भ किया गया था,किन्तु वास्तविकता यह हैं कि यह विरोध अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए आरम्भ किया गया था।(21) जिसके दावेदार अपने आपको अकहानी आन्दोलन के प्रणेता मानते रहे हैं।

नयी कहानी आन्दोलन में "यथार्थ की प्रामाणिकता पर बल दिया गया। अतः कहानी संरचना के भोगे हुए यथार्थ के चित्रण को महत्वपूर्ण माना गया । पूर्व कहानी जीवन का चित्र थी, यहाँ वह जीवन का अनुभव खंड हो गयी। इसकी 'सामाजिकता भी व्यक्तिगत थी।"(22) नयी कहानी में व्यक्ति की स्थिति और मानसिकता का चित्रण ,समसामायिक संघर्षशील सामाजिक संदर्भो से जोड़कर संवेदनशीलता और प्रामाणिकता से किया गया था। 'पुष्पपाल सिंह ने नयी कहानी का संबंध 'युगबोध' से जोडते हुए कहा हैं कि " भोगे हुए या अनुभव यथार्थ की अभिव्यक्ति के किसी प्रकार के निषेध भाव(इन्हिबिशन्स) न होने के कारण यह यथार्थ बहु आयामी और अत्यंत व्यापक हैं। इसलिए इस कहानी आन्दोलन में एक प्रकार का अपूर्व वैविध्य दिखाई देता हैं।(23)

1962 के आसपास भारत चीन सीमा संघर्ष और 1964 के भारत पाक संघर्ष में देश के राजनैतिक नेतृत्व का खोखलापन उजागर और मोहभंग की स्थिति पनपी। जिसके परम्परागत मूल्यों विश्वासों, आस्थाओं को गहरी चोट पहुँची। जिसके कारण अकहानी आन्दोलन के विकास का रास्ता खुला।

समकालीन कहानी के विकास संबंधी विवेचन हेतु नई कहानी की तर्ज पर अकहानी, सचेतन कहानी और समांतर कहानी के आन्दोलन भी उल्लेखनीय है। गंगाप्रसाद विमल,राजकमल चौधरी, सुधा अरोड़ा आदि का नाम अकहानी आन्दोलन से संयुक्त किया जाता है । सचेतन कहानी से जुड़े हुए कहानीकार है- जगदीश चतुर्वेदी, मनहर चौहान, महीप सिंह और सुदर्शन चोपड़ा। बाकायदा घोषणा पत्र और प्रतिज्ञा-सूत्रों के साथ कहानी लेखन में प्रवृत्त होने की रचनात्मक असंगति के कारण ये आन्दोलन अपनी ही मौत मर गए और इनके कहानीकारों ने अपनी स्वतंत्र पहचान इन आन्दोलनों की बजाय अपनी रचनाात्मकता से निर्मित की।

इसी तरह समांतर कहानी का आन्दोलन भी आया। इसके सूत्रधार थे 'सारिका'के सम्पादक कमलेश्वर और आलोचक थे डॉ.विनय। कामता नाथ, जितेन्द्र भाटिया, इब्राहीम शरीफ दामोदर सदन ,मधुकर सिंह, सतीश जमाली, विभु कुमार, श्रवण कुमार, सुदीप, सनत कुमार से.रा.यात्री, शीला रोहेकर, निरूपमा सेवती और मृदुला गर्ग समांतर कहानी आन्दोलन में शामिल माने जाते है। कमलेश्वर के 'सारिका' से हटने के बाद नेतृत्व के संकट से यह आन्दोलन भी बिखर गया और लगभग अंतिम रूप से इस बात को रेखांकित कर गया कि समृध्द रचनात्मकता और प्रतिभावान रचनाकार किसी आन्दोलन के सहारे विकसित नहीं होते। इनमें से अनेक कहानीकारों ने अपनी स्वतंत्र पहचान निर्मित की है और आज वे इस आन्दोलन की बजाय अपनी रचनाओं से जाने-माने जाते है।(24)

अकहानी : असामान्य और अतिरंजनापूर्ण चरित्रों के इर्द-गिर्द बुनी गई। सचेतन कहानी में सभी वर्गो के पात्र चित्रित हुए, लेकिन मामूली आदमी ने सचेतन कहानीकारों को बहुत अधिक आकर्षित नहीं किया। फिर आया मामूली आदमी(आम आदमी) की हड्डियों पर अपने स्वार्थ के कबाब सेंकने वाला समान्तर कहानी आन्दोलन। इस आन्दोलन के केन्द्र में स्थित आम आदमी खोज कर निकाला हुआ और बहुत कुछ गढ़ा हुआ था। लेकिन समान्तर कहानी को यह श्रेय देना ही होगा कि पहली बार इतनी जोर शोर से कहानी को मामूली आदमी की जिन्दगी से जोड़ने का नारा दिया गया। बाद में जनवादी कहानी के तहत निम्नवर्गीय चरित्रों को उनके समूचे परिवेश के सन्दर्भ में सहानुभूति और समझदारी के साथ उकेरने की सार्थक कोशिश देखने को मिलती हैं। जनवादियों के समान्तर किसी किस्म की खेमेबाजी से प्रायः असम्पृक्त कहानीकारों को भी मामूली आदमी की नियति से साक्षात्कार करते देखा जा सकता है।(25)

समान्तर कहानी आन्दोलन और जनवादी कहानी आन्दोलन के बीच पनपे हुए सक्रिय कहानी आन्दोलन की चर्चा अवश्यम्भावी है। समांतर कहानी के अवसान के समय राकेश वत्स ने 'मंच-78' और 'मंच-79' नामक 'सक्रिय कहानी के दो विशेषांक निकाले। बाद में इन्हीं विशेषांकों की सामग्री राकेश वत्स के संपादन में सक्रिय कहानी की भूमिका के नाम से प्रकाशित हुयी।

सक्रिय कहानी आन्दोलन ने लेखक की सोच और असलियत में व्यवहार के बीच पुल बनाकर जीवन संघर्ष के कुरूक्षेत्र में पहल करने की चुनौती दी है। डॉ.शंभुनाथ के अनुसार-"रचनाकार के रूप में सक्रियता का बराबर मतलब हैं- पहले अपनी सीमाओं को समझना, छपाई-तन्त्र की सीमाओं को समझना, लोक-शाही तथा निम्न वर्ग के कृषक, मजदूर, बेकार, भूमिहीन संघर्षशील जनता के पूँजीवादी, सामन्ती और उपनिवेशवादी शत्रुओं को पहचानना,फिर रचना के साथ जन क्षेत्रों में चला जाना। (26)

डॉ.जयभगवान गोयल का मत इस संदर्भ में रहा हैं कि "निष्क्रिय पात्र भी पाठकों में अपनी सक्रियता भरकर अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकते

हैं। सक्रिय की पहचान रचना में रचना के पात्रों के स्तर पर नहीं बल्कि पाठकों की प्रतिक्रिया और संवेदना के स्तर पर की जा सकेगी। सक्रिय कहानी आन्दोलन के प्रमुख रचनाकार राकेश वत्स,सुरेन्द्र कुमार, रमेश बतरा, और विकेश निझावन स्वीकारें गये हैं। (27)

जनवादी कहानी आन्दोलन : के बारे में रामचन्द्र तिवारी का अभिमत है कि सन 1977 में 'दिल्ली विश्वविद्यालय' में जनवादी विचारमंच की स्थापना हुई। अक्टूबर सन 1978 ई. में इसी मंच के तत्वावधान में हिन्दी-लेखकों का एक शिबिर आयोजित किया गया। शिबिर में 1967 से1977 ई. तक के जनवादी साहित्य का मूल्यांकन किया गया। फरवरी 1982 में दिल्ली में जनवादी लेखक मंच का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ। इसी समय से कहानी रचना के क्षेत्र में जनवादी आन्दोलन सक्रिय और गतिशील हुआ।

जनवादी कहानी की परम्परा का आरंभ प्रेमचन्द की 'कफन' और 'पूस की रात' जैसी कहानियों से माना गया। इसका क्रमबद्ध विकास 'यशपाल' की 'परदा','रांगेय राघव की 'गदल', भैरवप्रसाद गुप्त की 'हड़ताल', मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', शेखर जोशी की 'बोझ' जैसी कहानियों में देखा गया। ज्ञानरंजन और काशीनाथ सिंह जैसे कहानीकारों ने इसे आगे बढाया। इसके बाद रमेश उपाध्याय,रमेश बतरा, हेतु भारद्वाज, नमिता सिंह, असगर वजाहत, धीरेन्द्र अस्थाना, उदय प्रकाश आदि लेखकों ने इसे समृद्ध किया। वैचारिक धरातल पर जनवादी कहानी मार्क्सवाद को आधार बनाकर चलती है। इसमें मुख्यतः किसानों ,मजदूरों, पीड़ितों दलितों और असहायों का जीवन-संघर्ष चित्रित किया जाता है। इसलिए उनकी कहानी का शिल्प कमजोर पड गया है। किन्तु जहाँ वैचारिक आग्रह से मुक्त होकर दलितों,पीडितों के जीवन संघर्ष को वाणी दी गयी है, वहाँ जनवादी कहानियाँ भी अत्यंत मार्मिक और विश्वसनीय बन गयी है।(28)

2.3 समकालीन कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

समकालीन कहानी का परिप्रेक्ष्य बहुत व्यापक हैं। नई कहानी आन्दोलन के रचनाकारों ने मनुष्य की आंतरिक अनुभूतियों और मनोविश्लेषण के आत्मपरक सूत्रों को महत्व दिया है। निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भण्डारी और उषा प्रियम्वदा की रचनाएँ हमारे कथ्य की साक्ष्य हैं । अकहानी आन्दोलन के गंगाप्रसाद विमल, रमेश बक्षी महेन्द्र भल्ला आदि रचनाकारों ने भ्रष्ट राजनीति, राष्ट्रीय नेतृत्व के खोखलेपन और मूल्य विहीनता की स्थिति को विभिन्न पात्रों के माध्यम से रेखांकित किया हैं।

समान्तर कहानी आन्दोलन में आम आदमी की परवशता, विवशता, दीनता का जिक्र है और प्रतिरोध की भावना का विकास और

सक्रिय कहानी सहज कहानी नाम और मुखौटे बदलकर विचार और कर्म की एकता, चिन्तन और दर्शन की व्यावहारिकता पर जोर देती है।

जनवादी कहानी आन्दोलन एक ओर वामपंथी आस्था से मजदूरों-किसानों की पक्षधरता अपनाने की पहल रचता है वही वह स्त्री विमर्श और दलित्ए विमर्श के सरोकारों में सार्थक हस्तक्षेप और न्यायपरक पक्षधरता अपनाने की इस्सलाह देता है। समकालीन कहानी के विकास क्षेत्र में हम प्रगतिशील आन्दोलन की सकारात्मक भूमिका को नजर अंदाज नहीं कर सकते है। प्रेमचन्द स्वयं हिन्दी और उर्दू के दोआब थे। समकालीन कहानी ने विभिन्न भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषा साहित्य से अपनी साहित्यिक उर्जा ग्रहण की है। सुधीजन जानते है कि प्रेमचन्द की मृत्यु के आस ही पास उर्दू में बेहद गर्मागर्म कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ था । संग्रह का नाम था 'अंगारे'। इस अभूतपूर्व कहानी के प्रमुख लेखक थे, सज्जाद जहीर, अहमद अली और डॉक्टर रशीद जहाँ आदि । कुल सात - आठ कहानियाँ थी इस संग्रह में। पर संग्रह की सारी कहानियाँ पूर्ण रूप से विदेशी प्रभाव से सराबोर थी। इंग्लैंड, फ्रांस, और अमेरिका में जो उन दिनों 'साइकोएनेलिसिस' मनोविश्लेषण, सेक्स, अवचेतन वर्णन, दमित कामवासना की अभिव्यक्तिपूर्ण कहानियाँ लिखी जा रहीं थी,उन्हीं के पूर्ण प्रभाव में इस संग्रह की सारी की सारी कहानियाँ लिखी गई थी। ये कहानियाँ अपनी कथ्य सामग्री में इतनी नई,आकर्षणमयी और उत्तेजक थीं कि इनका प्रभाव व्यापक रहा। इस संग्रह के सारे कहानीकार 'अंगारे ग्रुप' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके फलस्वरूप हिन्दी उर्दू दोनों में(उर्दू में बहुत अधिक) मनोविश्लेषणवादी ,सेक्स प्रधान कहानियाँ लिखी जाने लगी थी। (29)

नयी कहानी और प्रगतिशील विचाधारा के बरक्स हिन्दी में अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी आदि में सैक्स की दलित इच्छाओं कुण्ठा और अवचेतन संबंधी कहानियाँ लिखी हैं। जिसका विवेचन इसी अध्याय में "समकालीन कहानी की पृष्ठभूमि"नामक शीर्षक के अन्तर्गतउपलब्ध हैं स्वार्थपरता, मूल्यहीनता, अवसरवादिता, समकालीन कहानी में आंतरिक वृत्ति के रूप में सक्रिय हैं। महानगरों में आर्थिक दबाव ,औधोगीकरण एवं भौतिक स्पर्द्धा से उत्पन्न संवेदन-शून्यता तथा सम्बन्धों को मात्र एक सीढ़ी मानकर उस पर चढ़कर 'कहीं' पहुँचने की स्वार्थपरता प्रसंगवश प्रतिमा वर्मा की पुनरारंभ कहानी में उपलब्ध है , जहाँ सम्बन्ध और नैतिकता का प्रश्न अणिमा एवं नवीन के मध्य उभरता हैं। जिसके कमलेश्वर ने कहा हैं-" आज के बदलते आर्थिक और सामाजिक संदर्भो में बहुत-सी चीजे और मान्यतायें अपने अर्थ खो चुकी है, उन्हीं में सैक्स भी हैं। क्या आज भी सैक्स पारम्पारिक और पारिवारिक सम्बन्धों में स्थायित्व का आधार है ?" पुनरारंभ इसी प्रश्न की सीमाओं में घिरी एक सशक्त कहानी हैं।"अणिमा एवं उसकी माँ को नवीन नौकरी दिलवाने घर बुलाता है, परन्तु प्रमोशन के लिए लगातार इस्तेमाल करके कालीन पर गिराने एवं कुछ दूर जाकर ठिठक जाने वाली खाली बोतल सरीखा छोड़ देता हैं। पापबोध से मुक्ति पाने के

लिए मनोज को चालीस हजार नकद और कतिपय सुविधाएँ प्रदान करता है।[30] समकालीन कहानी के वर्तमान परिदृश्य में मूल्य विहीनता एक यथार्थपरक सच हैं।

विजय मोहन स्वयं एक कथाकार है और सुधी आलोचक भी। वे निर्मल वर्मा की कहानियों के साक्ष्य से परम्परा और आधुनिकता बोध की टकराहट को पेश करते हैं। वर्तमान दौर में आतंक, हताशा, निराशा, संघर्ष, हीन भावना यथार्थपरक दुनिया का प्रतिरूप है इसलिए निर्मल की प्रत्येक कहानी के पात्र इसी अंधेरे, आतंक तथा टेरर में रहते हैं। चाहे **'परिंदे'** की लतिका से, **'मायादर्पण'** की तरून हो, **'लन्दन की एक रात'** का नीग्रो हो, या **'सितम्बर की एक शाम'** , **'आखिरी गवाह'** , **'दो घर'** तथा **'बीच बहस में'** के पात्र ! सभी आतंकग्रस्त तथा अभिशप्त पात्र हैं। आखिर यह किस चीज का आतंक तथा अभिशाप है जो सामान्य चलते -फिरते, हँसते-बोलते, जिन्दा° इंसानों को लेखक की 'दिल की दुकान' में ले जाकर 'सुरदा', 'चीथडों' और 'हड्डियों' में बदल देता हैं। दरअसल, निर्मल की कहानियों की दुनिया में प्रवेश करना एक ऐसे तिलस्मी प्रेतलोक में प्रवेश करना हैं जहाँ खुली धूप की जगह मैली पीली चांदनी है,हरी पत्तियों की जगह सूखी पत्तियों के ढेर हैं, हँसते-मुस्कराते लोगों की जगह खामोश, बेआवाज आँसू बहाते लोग है, साधारण बातचीत की° जगह' दबी हुई फुसफुसाहटें° तथा 'डायरी के खेल' हैं।[31]

उषा प्रियम्वदा के पात्र हिन्दुस्तानी पात्रों की विपदा को वापसी में ही उजागर करते हैं बल्कि वह विदेशी प्रांतों और क्षेत्रों में हिन्दुस्तानी पात्रों की मिसफिट स्थिति को भी अक्सर रेखांकित करती हैं। और हिन्दी कहानी केवल देश की घटनाओं तक सीमित न रहकर विदेशों की असंगतियों और अमानवीयताओं पर भी अँगुली रखती हैं, इसका प्रमाण 'कार्लो हब्शी का संदूक' (रमाकान्त) और 'इंतजार' हैं, (कमलेश्वर) आदि कहानियाँ देती हैं। इस दशक में कुछ कहानियाँ ऐसी समस्याओं पर लिखी गई हैं, जो पहले कभी महत्वपूर्ण और गौरतलब नहीं लगी थीं।

दूरदर्शन के प्रचार-प्रसार ने जहाँ ज्ञान-विज्ञान को झोपड़ों और चौपालों में पहुंचाया है, वही कुछ मुश्किलें भी पैदा की हैं। 'सिर का साया' (दिनेश पालीवाल) और 'बूढी आँखों के सपने' (माधव नागदा) आदि कहानियाँ इस सन्दर्भ में पठनीय हैं । संचार माध्यमों के बहाने से दो पीढ़ियों की मानसिकता का फर्क दिखाना इन कहानियों का अभीष्ट हैं। कृत्रिम गर्भाधान से उपलब्ध मातृ-सुख(उर्मिला शिरीष की कहानी-'कोशिश') तब बहुत छोटा लगने लगता हैं जब इस तरह से प्राप्त शिशु को लेकर माता-पिता कई तरह की कुण्ठाओं और विकृतियों के शिकार हो जाते हैं। (32)

समकालीन कहानी के विस्तृत क्षेत्र में आभ्यन्तर का बाहयीकरण 'आंतरिक मनोवृति के रचनाकारों के पास उपलब्ध हैं। (निर्मल वर्मा ,मोहन राकेश, कमलेश्वर, मन्नू भण्डारी) तो बाह्य का आभ्यन्तरी करण बहिर्मुखी

रचनाकारों(शिवमूर्ति, शैवाल, रोहिताश्व, मैत्रेयी पुष्पा और चित्रा मुदगल आदि) के पास उपलब्ध हैं। मनोविश्लेषण की भाषा में जिसे इण्ट्रोवर्ट और एक्सट्रोवर्ट कहा जाएगा। धनंजय वर्मा के शब्दों में "मुक्तिबोध के 'बाह्य का आभ्यन्तीकरण' का मानो अग्रबोध ही पेश कर दिया हैं : "बाह्य जगत में लेखक जो कुछ देखता,सुनता और अनुभव करता हैं, उसको वह ज्यों-का-त्यों अपने अन्तर्जगत में नहीं अपना लेता। मनुष्य की जैसी रूचि होती हैं, जैसी धारणा होती हैं, जैसी बुद्धि होती हैं और जैसी विशेष परिस्थिति होती हैं, उन्हीं के अनुकूल वह बाह्य जगत को निर्मित कर ग्रहण करता हैं।"(33)

प्रतिबद्ध रचनाकार चाहे कहानीकार हो अथवा कवि-उपन्यासकार। वह अपने ऐतिहासिक संक्रमण,युगबोध, देशकाल के युगीन संघर्ष से असम्पृक्त नहीं रह पाता हैं। सातवे दशक के नक्सलवादी उभार पर जहॉ कतिपय रचनाएँ काशीनाथ सिंह, सतीश जमाली,शैवाल आदि ने लिखी हैं। वहीं आपात काल की स्थिति में प्रतीकात्मक ढंग की रचनाएँ लिखी गयी हैं। राजनीतिक घटनाक्रम और' समकालीन कहानी के परिदृश्य पर वेद प्रकाश अमिताभ ने रेखांकित किया हैं कि इंदिरा गंधी की मृत्यु के बाद दिल्ली में हुए दंगों को **'एक रात का मेहमान'** (नीलकान्त), **'पनाह'** (सत्येन कुमार), **'अंधेरे मे किरण'** (माधव नागदा), **'झुटपुटा'**(भीष्म साहनी), आदि कहानियों में आधार बनाया गया हैं। कहानिकारों का केन्द्रीय विचार यह हैं कि ये दंगे एक तरह की साजिश हैं और इस अमानवीय साजिश के बावजूद मानवीय मूल्य अभी समाप्त नहीं हुए हैं। इस धारणा को व्यक्त करने के लिए कहानीकारों ने अलग-अलग पद्धतियाँ अपनाई हैं।

भीष्म साहनी ने 'झुटपुट' में कई परस्पर विरोधी मनोवृत्तियों को व्यक्त करने वाले चरित्रों और प्रसंगों को संश्लिष्ट करके अपनी बात कही हैं। दूध की लारी लेकर आने वाला सरदार ड्राइवर, सरदार अंकल की डोलची लिए लाइन में खडी सक्सेना की बच्ची,परिचित सरदार जी का हालचाल जानने को उत्सुक बलराम को भीष्म साहनी ने कहानी में इस तरह व्यवस्थित किया हैं,जैसे 'आँखों देखा हाल' सुन रहे हो। इसके विपरीत 'एक रात का मेहमान' में दंगा-फसाद के दौरान अनुभव होने वाले आतंक समूची भयावहता के साथ मूर्त किया गया हैं। यह कहानी सडक के हादसे पर नहीं, कमरें के भीतर के भय पर केन्द्रित हैं।(34) अतः इसकी भाषा और कथन शैली में 'झटपुटा' से भिन्नता स्वाभाविक हैं। "कमरा भीतर से बोल्ट था, फिर भी एक उत्तेजित भनभनाहट बुलन्द होती जा रही थीं। और विभिन्न दिशाओं में चक्कर काटती हुई प्रतीत होती थीं।" (35)

समकालीन कहानी के वर्तमान दौर में जिन दो समान्तर प्रवृत्तियों को रेखांकित किया जाना चाहिए वे हैं- दलित विमर्श और स्त्री-विमर्श। हिन्दी में दलित-विमर्श की पृष्ठभूमि तैयार करने में 'सारिका' के कमलेश्वर द्वारा सम्पादित दो विशेषांको (1975) और संचेतना के मराठी दलित साहित्य विशेषांक (1981) का बहुत योगदान हैं । **'दलित कहानियाँ'** (सूर्यनारायण रणसुभे) भी इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास हैं। हिन्दी कहानी में दलित-

विमर्श की चर्चा दो सम्पादित कहानी संग्रहों से विशेष मुखर हुई हैं। **'दूसरी दुनिया का यथार्थ'** (सं.रमणिका गुप्ता) और **'यातना की परछाइयाँ'**(स.डॉ.एन.सिंह) में संकलित कहानियों से यह प्रमाण मिलता है कि दलित कहानीकारों की अच्छी खासी संख्या रचनात्मक दृष्टि से सक्रिय हो चुकी थीं । इन कहानीकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी अलग पहचान बनाई। बाद में उनके दो संग्रह प्रकाश में आए-**'सलाम'**और **'घुसपैठिए'** अन्य कहानीकारों में दयानन्द बटोही, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान,बी.एल.नय्यर, रत्नकुमार सांभरिया,कुसुम मेधवाल, कुसुम वियोगी आदि उल्लेखनीय है । (36) वर्तमान दौर में जयप्रकाश कर्दम, 'दलित साहित्य' पत्रिका में वार्षिक विशेषांक भी प्रकाशित रहा है। पर यह भी वस्तुपरक सत्य है कि 'हंस' पत्रिका के माध्यम से राजेन्द्र यादव ने दलित साहित्य विमर्श और स्त्री-विमर्श को परवान दिए है।

स्त्री-विमर्श पहले भी हुआ है, पर पुरूष रचनाकारों की दृष्टि-विशेष से सुधी जन जानते ही हैं कि नारी-विमर्श जहाँ वूमन डिस्कोर्स का पर्याय है वहाँ 'नारीवाद' फेमिनिस्ट एप्रोच का। वर्तमान दौर की महिला लेखिकाएँ नारी विमर्श से ज्यादा 'नारीवाद' की ओर प्रवृत है। यों तो प्रेमचन्द युग में भी उषादेवी मित्रा ,कमला चौधरी, सत्यवती मलिक, सुभद्रा कुमारी चौहान, चन्द्रकिरण सौनरिसा,होगवती देवी आदि कहानी लेखिकाएँ सामाजिक संदर्भो को केन्द्र में रखकर रचनाकर्म में प्रवृत थी और उनके बाद रजनी पन्निकर , कँचनलता सब्बदवाल, शान्ति मेहरोत्रा, सोमावीरा, राजेश्वरी देवी चकोरी और स्वर्ण लता देवी आदि लेखिकाओं ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया था। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तो महिला लेखिकाओं का एक वर्ग उठ खड़ा हुआ।

वर्तमान दौर में महिला कहानीकारों की दो पीढियाँ सक्रिय हैं। पहली पीढ़ी में वे लेखिकाएँ आती है जो 'नयी कहानी' के दौर के आसपास से लिखती आ रहीं हैं और दूसरी पीढ़ी में वे लेखिकाएँ आती हैं जिन्होने आठवें दशक और नवम दशक के प्रारम्भ में लिखना आरम्भ किया हैं। पहाली पीढ़ी की लेखिकाओं में शशिप्रभा शास्त्री ,शिवानी , कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्वदा, ममता कालिया आदि उल्लेखनीय हैं। दूसरी पीढ़ी में दीप्ति खण्डेलवाल, मृणाल पाण्डेय, मृदुला गर्ग, चित्रा मुदगल, राजी सेठ, मंजुल भगत, मणिका मोहिनी, प्रतिमा वर्मा, सुधा अरोड़ा, निरूपमा सेवती, सूर्यबाला, मेहरून्निस्सा परवेज, इन्दुबाला,अचला नागर ने अपनी निजी पहचान कायम कर ली हैं।

विगत दसेक वर्षो से मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुदगल, नासिरा शर्मा, और कमल कुमार ने न केवल नारी विमर्श की सार्थक रचनाएँ लिखी है बल्कि कहीं-कहीं नारीवादी विमर्श की सरहदें पार की हैं। आज की सुशिक्षित ,कामकाजी कैरियर को प्रमुखता देनेवाली नारी न केवल पुरूषों की तुलना में अधिक श्रम करती हैं बल्कि वह अपनी अस्मिता, स्वतंत्रता, निर्णय लेने की शक्ति को अपनाने लगी हैं। टेस्ट ट्यूब बेबी की वैज्ञानिक खोज ने

कोख को किराये पर देने की एक अभूतपूर्व नारीवादी प्रणाली विकसित की हैं।

संतान को जन्म देने या न देने, गर्भपात करने या न करने की स्वतंत्रता नारी की अपनी निर्णय शक्ति पर निर्भर हैं। भारत जैसे पुरूष प्रधान समाज में देह मुक्ति,यौन मुक्ति स्त्री पुरूष सम्बन्धों की नयी पहल कतिपय पारम्परिक सोच के लोगों को असहज बना देगी पर वैश्वीकरण और आर्थिक उदारता ने नारीवाद विमर्श के नये संदर्भ विकसित कर लिए हैं। जिनकी चर्चा आगामी अध्यायों में प्रसंगानुसार की जायेगी।

सन्दर्भ सूची : द्वितीय अध्याय

लेखक	पुस्तक	
1. धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का रचना शास्त्र	पृ.107
2. धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का रचना शास्त्र	पृ.108
3. संत बख्श सिंह	: नयीकहानी : कथ्य और शिल्प	पृ.190
4. रामविलासशर्मा	: प्रेमचन्द और उनका युग	पृ.158
5. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.81
6. लक्ष्मी नारायण लाल	: आधुनिक हिन्दी कहानी	पृ.18
7. रामदरश मिश्र	: हिन्दी कहानी: अंतरंग पहचान	पृ.27
8. रामस्वरूप चतुर्वेदी	: अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या	पृ.167
9. अज्ञेय	: 'सांप' कहानी द्वारा लौटती पगडण्डियाँ	पृ.389
10. अज्ञेय	: 'सांप' कहानी द्वारा लौटती पगडण्डिया	पृ300
11 अज्ञेय	: 'सांप' कहानी द्वारा लौटती पगडण्डियाँ	पृ.299
12 . पाण्डेय व शर्मा	: यशपाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	पृ.143
13. सुनंत कौर	: समकालीन हिन्दी कहानी : स्त्री पुरूष संबंध	पृ.48
14. यशपाल	: ज्ञानदान	पृ.85
15. यशपाल	: चित्र का शीर्षक	पृ.51
16. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.108
17. नामवर सिंह	: कहानी : नयी कहानी	पृ.52
18. कमलेश्वर	: जो जीवन जिया	पृ.21
19. मार्कण्डेय	: हँसा जाई अकेला भूमिका	

20. राजेन्द्र यादव : कहानीः स्वरूप और संवेदना पृ.49

21. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.304

22. लालचन्द गुप्त : हिन्दी कहानी का विकास पृ.28

23. पुष्पपाल सिंह : समकालीन कहानी : युगबोध संदर्भ पृ. 56

24. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचना शास्त्र पृ.114

25. वेद प्रकाश अमिताभ : हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य पृ. 23

26. शंभुनाथ : सक्रिय कहानी की भूमिका पृ. 54

27. जयभगवान गोयल : साहित्य चिंतन पृ.202

28. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.306

29. लक्ष्मीनारायण लाल : आधुनिक हिन्दी कहानी पृ.17

30. कमलेश्वर : 'सारिका' अक्टूबर पृ.28

31. विजयमोहनसिंह : आज की कहानी पृ.59

32. वेदप्रकाश अमिताभ : हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य पृ.33

33. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचना शास्त्र पृ.99

34. भीष्म साहनी : द्वारा हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य पृ.40

35. चंचल चौहान : 'नया पथ' दिसम्बर 1988 पृ.11

36. वेदप्रकाश अमिताभ : हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य पृ. 60

37.रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.३34

3. समकालीन कहानी आन्दोलन : प्रमुख रचनाकार एवं रचनाएँ

समकालीन कहानी के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में विविध आन्दोलनों का विकास और अवसान हुआ है। विगत पचास वर्षो में नयी कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सक्रिय कहानी, समांतर कहानी, वामपंथी कहानी, आंचलिक कहानी,और जनवादी कहानी आन्दोलन आदि की चर्चा सुधी आलोचकों और पाठकों के सामने उजागर हैं। विगत द्वितीय अध्याय में कतिपय आन्दोलनों और रचनाकारों की चर्चा हमने सीमित रूप में की हैं। पर मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक हैं कि क्या नयी कविता की तर्ज पर नयी कहानी अकविता की स्पर्धा में अकहानी आन्दोलन, वामपंथी कविता के समानांतर वामपंथी कहानी आदि की चर्चा हुयी है। कतिपय कवियों ने भी कहानी आन्दोलनों में हिस्सेदारी निभायी हैं। अज्ञेय, सर्वेश्वर, रघुवीरसहाय, धर्मवीरभारती, मणिमधुकर, दूधनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा ,मुक्तिबोध आदि से लेकर यह परम्परा राजकमल चौधरी ,गंगाप्रसाद विमल, सुधा अरोडा ओर वेणुगोपाल आदि तक जारी है।

समकालीन कहानी आन्दोलन के पूर्वपक्ष नयी कहानी आन्दोलन में भी प्रगतिशील और प्रयोगवादी धाराएँ अंतः सलिला के रूप में जारी रही है। प्रयोगवादी रचनाकारों में अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषण से प्रभावित रचनाकार भी सक्रिय रहे हैं। शहरी और आंचलिक जीवन के द्वंद्व और रूपायन की प्रतिस्पर्धा भी कम लोमहर्षक नहीं रहीं हैं। जीवन की विसंगतियों

और रागात्मक क्षणों की ललक ,स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में बदलाव और अलगाव बोध के क्षण को रेखांकित करने में नयी कहानी आन्दोलन और आंचलिक -ग्रामीण बोध के रचनाकारों में एक स्पृहणीय प्रतिस्पर्धा रही हैं।

'नयी कविता' पद का प्रयोग सर्व प्रथम दूसरा सप्तक (1951) में हुआ था। कथाकार-गजलगो दुष्यन्त कुमार का एक लेख 'कल्पना' के जनवरी 1955 के अंक में छपा था -**'नयी कहानी :परंपरा और प्रयोग'**। इसमें पहली बार 'नयी कहानी' संज्ञा का प्रयोग हुआ था। डॉ.नामवर सिंह का कहानी पर पहला लेख यद्यपि 'कहानी' के नववर्षांक 1957 में छपा था, लेकिन 'नई कहानी' का प्रयोग पहली बार उन्होंने उसी 'कहानी'पत्रिका के नववर्षांक 1958 में किया। (1)

धनंजय वर्मा ने हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र ग्रंथ में गहन अध्ययन और विमर्श के पश्चात स्थापना रखी है कि डॉ.नामवर सिंह के 1957 के लेख 'आज की हिन्दी कहानी का पहला पैराग्राफ रहा हैं -" आज कहानीपर विचार करते समय सबसे पहले मेरे मन में यह सवाल उठता है कि 'नई कविता' की तरह नई कहानी नाम की भी कोई चीज है क्या ? और हम पाते है कि 'नई कहानी' नाम से कोई आन्दोलन अभी तक नहीं चला हैं। इससे क्या समझा जाए ? यह कि कहानी में कुछ नयापन आया ही नहीं ; कि कहानी में जो नयापन आया है, वह कविता की अपेक्षा बहुत कम हैं, कि स्वयं कहानी के विकास-क्रम में यह नयापन बहुत स्पष्ट नहीं हैं , कि कविता की तरह कहानी के नयेपन को अलगाने का प्रयत्न ही नहीं हुआ, कि कहानी के क्षेत्र में पुरानी प्रवृत्तियाँ अब कहीं अवशिष्ट नहीं रहीं, जो 'नई कहानी' संज्ञा की आवश्यकता प्रतीत हो ?"(2)

नयी कहानी आन्दोलन में विभिन्न प्रवृत्तियों के रचनाकर सक्रिय रहे हैं। ग्रामीण बोध ,आंचलिक जीवन का प्रतिबिम्ब वैयक्तिक कुण्ठाओं और कस्बाई प्रवृत्तियों का रेखांकन स्त्री-पुरूष सम्बन्धों का बदलाव शरणार्थी जीवन की समस्या महानगरों का परिवर्तन जीवन ,मोहभंग, राजनीतिक-संक्रमण व परिवर्तिय बोध जिनमें मुख्य हैं।

हालाँकि देवी शंकर अवस्थी का मत रहा है कि -"स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कहानीकारों ने अपनी रचनाओं के द्वंद्व और संघर्ष का उत्कट चित्रण ठप कर दिया और वैयक्तिक ऊहापोह-भरे, राहत, थकान, लाचारी, और ऐकान्तिक सुख के चित्र ज्यादा दिये। विशेषकर ग्राम कहानियों में प्रेमचन्द युगीन चरित्रों के उद्वेग, संघर्ष और उनकी साधना की जगह गाँव के रीति-रिवाजों , तौर-तरीकों और अटपटे चरित्रों को चित्रित करने पर ज्यादा झुकाव हुआ हैं। वर्तमान हिन्दी कहानी ने अपने पूर्ववर्तियों से और सब कुछ लिया हैं, पर उनका साहस ओर उनकी कर्मठता को त्याग दिया हैं। आज की हिन्दी-कहानी में, ग्राम-कहानियों में विशेषकर,स्वान्तःसुखाय की भावना प्रबल हैं। पुनः प्रस्तुतीकरण की प्रवृत्ति ने तरूण कथाकारों को नुस्खापसन्द बनाया है और प्रायः सभी ज्यादा-से ज्यादा चौकन्ने और ध्यान आकृष्ट करने की कला को अपना ध्येय बना रहे हैं।"(3)

उपेन्द्रनाथ अश्क ने नयी कहानी आन्दोलन की विभिन्न प्रवृत्तियों, विशेषताओं और रेखांकन का प्रतिरोध रचा था कि नई कहानी के आन्दोलन के पीछे कोई सैद्धान्तिक आग्रह नहीं हैं वरन कुछ व्यक्तियों की निजी कुंठाओं और गलत महात्वकांक्षाओं का परिणाम है।"(4)

जब कि सुधी आलोचक धनंजय वर्मा का अधिपत रहा है कि नई कहानी एक आन्दोलन ही नहीं एक मूल्य-दृष्टि भी लेकर आई। उसने वस्तु-सत्य को नई दृष्टि से परखा, कहानी से मनोरंजन की अपेक्षा कुछ अधिक को माँग की गई, वस्तु और शिल्प के नये प्रयोग भी किए गए। अर्नाल्ड टॉयनबी की 'ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री' का मुहावरा लेकर कहा जाए, तो यह स्थिति अलग होना और लौटना' के समानान्तर थी। 'नई कहानी, अलग हुई जैनेन्द्र और अज्ञेय से और प्रेमचन्द की ओर । लेकिन इस वापसी में उसने प्रेमचन्द, यशपाल, रांघेय राघव, नागार्जुन, अमृतराय और खुद अश्क ने भी उस यथार्थवादी,समाजपरक और सप्रयोजन दृष्टि से अपना नाता जोड़ा। (5)

नयी कविता आन्दोलन की तरह नयी कहानी आन्दोलन में भी-कथ्य और शिल्प के स्तर पर प्रयोग किये गये। नई कहानी आन्दोलन के प्रगतिशील रचनाकारों में राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, भैरवप्रसाद गुप्त ,यशपाल आदि के नाम प्रमुख हैं। राजेन्द्र यादव ने भी कहा हैं कि व्यवस्था, वर्ग और राजनीति पर एकाधिकार करनेवाले लोगों और उनकी नैतिकता का जो विरोध करता था वह 'प्रगतिशील'था। (6)

प्रगतिशील प्रवृति के रचनाकारों के भी शहरी और ग्रामीण-आंचलिक जीवन के रूपायन को लेकर कम आपाधापी नहीं थी। नयी कहानी आन्दोलन की(राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, के साथ निर्मल वर्मा, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, और उषा प्रियम्वदा का लेखन सहवर्ती विकास के रूप में उपलब्ध रहा है तो ग्रामीण-आंचलिक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व समानांतर रूप से फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय आदि ने किया हैं। शोध प्रबंध की सीमा में हम प्रमुख रचनाकारों और उनकी रचनाओं का साक्ष्य आन्दोलन विशेष के सन्दर्भ में प्रस्तुत करना चाहेंगे।

3.1 नयी कहानी और आंचलिक कहानी आन्दोलन

नयी कहानी जीवन संघर्ष, बौद्धिकता, अलगाव बोध से सम्पृक्त थी तो आंचलिक कहानी लोक जीवन,लोकचेतना और मानवीय राग-विराग तथा लोकेषणा से जुड़ी रही है। धनण्जय वर्मा के शब्दों में-"नई कहानी एक ऐतिहासिक सन्दर्भ की उपज है वह परम्परा से नैरन्तर्य के धरातल पर संयुक्त है और परम्परा से पृथक भी हैं- एप्रोच, निर्वाह और दृष्टि के अन्तर के कारण। उसने युग के अनुभूत वास्तव के सारे अन्तर्विरोध, प्रवंचना और असंगति को भोगा और अभिव्यक्त किया है। वह एक साथ ही मूल्य-भंग और मूल्य निर्माण की कहानी है- उसकी तात्कालिक परम्परा के जिन उपलब्ध सत्यों और तथ्यों को स्वयं सिद्ध मानकर विवरण और वर्णन से

सजा दिया गया था। या जिन्हें कटे-छँटे विचार-विश्लेषण और निष्कर्षवाद का जामा पहनाया गया था उन्हें (उपलब्ध सत्यों और तथ्यों को) नई काहानी ने अधिक गहराई में जाकर, अधिक व्यापकता और विस्तार और स्वस्थ और तटस्थ दृष्टि से देखा और उनकी प्रक्रिया प्रस्तुत हैं - ताकि उस प्रक्रिया से होते हुए पाठक भी उन तक ,अनुभव और अनुभूति के धरातल पर पहुँच सके।" (7)

जीवन की विसंगतियों रागात्मक क्षणों की ललक प्रतिबद्धता और ईमानदारी के बावजूद तिरस्कार, अवसाद, अलगाव बोध के क्षण, स्त्री-पुरूष के जीवन सन्दर्भो में बदलाव को नयी कहानी और आंचलिक कहानी अपनी समग्रता में रेखांकित कर सकती हैं। जिसके हम रांघेय राघव की **'गदल'** (भावनात्मक अन्तःसंघर्ष),भीष्मसाहनी की **'चीफ की दावत'**(जीवन की विसंगतियों),फणीश्वरनाथ रेणु की **'तीसरी कसम', 'रसप्रिया'**(रागात्मक क्षणों की ललक) ,मार्कण्डेय की **'हँसा जाई अकेला'** (प्रतिबद्धता व ईमानदारी के बावजूद तिरस्कार) ,राजेन्द्र यादव की **'छोटे-छोटे ताजमहल,** निर्मल वर्मा की **'परिन्दे'**(अवसाद,अलगाव बोध),उषा प्रियंवदा की **'वापसी'**(स्त्री-पुरूष सन्दार्भो में बदलाव),मोहन राकेश की **'सुहागिने'** (नारी जीवन की विवशता) आदि रचनाओं में देख सकते हैं।" (8)

देवी शंकर अवस्थी, सुरेन्द्र चौधरी, आनंद प्रकाश, मधुरेश, नामवर सिंह, कमलेश्वर से लेकर महेश दिवाकर, रोहिताश्व, शोभा निंबालकर और रेखा पाटील तक ने विभिन्न कहानी आन्दोलनों ,रचनाकारों, प्रवृत्तियों और रचनाओं के पक्ष-विपक्ष में काफी लिखा है। नयी कहानी में अलगावबोध,रिक्तता विलक्षण क्षण बोध की कौंध, विवशता, संक्रमणशील स्थिति का रेखांकन अधिक है तो आंचलिक कहानी में नास्टेल्जिक स्थिति अतीत परम्परा के प्रति मोह,रूढ़ियों के प्रति आसक्ति, नारी-जीवन की विवशता, स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के प्रति संकीर्ण भाव रेखांकित हुआ हैं। जिसके विश्लेषण का प्रयास करने की अनुमति चाहते हैं।

3.11 राजेन्द्र यादव : नयी कहानी आन्दोलन की त्रयी में राजेन्द्र यादव को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनकी कहानियों के नौ संग्रह **'देवताओं की मूर्तियाँ'** (1952 ई), **'खेल खिलौने'**(1954 ई), **'जहाँ लक्ष्मी कैद है'**(1957 ई),**'अभिमन्यु कीआत्महत्या'** (1959 ई),**'छोटे-छोटे ताजमहल'**(1962 ई),**'किनारे से किनारे तक'**(1963), **'टूटना'**(1966), **'अपने पार'**(1968), **'ढोल और अन्य कहानियाँ'** (1972), **'हासिफ तथा अन्य कहानियाँ'**(2006) , प्रकाशित है। राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियों में मध्यवर्ग के जीवन में बनते-बिगड़ते, जुड़ते-टूटते रिश्तों और उनसे तनाव को महत्व दिया है। आपने अपनी कहानियों के विषय में लिखा हैं -"अपनी ही बात या अनुभव को अभिव्यक्ति देने के प्रभावशाली कोण की तलाश में मैंने कहानियाँ लिखी हैं। इस पूरे सिलसिले को देखे बिना बहुतों ने 'शिल्पवादी' या न जाने क्या-क्या आरोप लगाये हैं। अपने भीतर के नाटक को दर्शक की तरह देखता

उसी में हिस्सा लेता या खोता हुआ आदमी हो सकता हैं बहुत पारदर्शी न हो, लेकिन मुझे लगता है अपने लेखन के साथ मेरे सम्बन्ध बहुत सीधे और ईमानदार रहे हैं।" (9)

अपने परवर्ती कहानियों में आप मनोवैज्ञानिक सिद्धांत-सूत्रों को अधिक महत्व देते प्रतीत होते हैं। 'अपने पार',अनुपस्थित ,मेहमान आदि कहानियों में मनोवैज्ञानिक सूत्र आसानी से ढूँढे जा सकते हैं। वास्तविकता यह है कि अपनी ही बात या अनुभव कब तक ताजा और बहुआयामी रह सकता हैं। जब जिन्दगी एक ढर्रे में बँधकर स्थितिशील हो जाती है, तब लेखन में भी एक प्रकार की रूढ़ियाँ उभरने लगती हैं। बहरहाल राजेन्द्र यादव ने स्त्री-पुरूष संबंधो में पारम्परिकता की अब (जहाँ लक्ष्मी कैद है) अलगावबोध (टूटना) और सम्भ्रम (खेल-खिलौने) स्त्री-पुरूष संबंधों में बदलाव (प्रतीक्षा) को अधिकतर अपने लेखन का माध्यम बनाया हैं।

घनश्यामदास भूतड़ा ने भी अभिज्ञापित किया है कि -'जहाँलक्ष्मी कैद है' कहानी के माध्यम से यादव जी ने उस युवती की मानसिकता का चित्रण किया है , जो अशिक्षित तथा अंधश्रद्धाओं की शिकार हैं। लक्ष्मी का पिता लाला रूपाराम अपनी विवाह योग्य बेटी का विवाह इसलिए नहीं करता क्योंकि उसे डर है कि विवाह हो जाने के बाद उसके घर की लक्ष्मी(संपत्ति) चली जायेगी। इस प्रकार एक ओर पिता की अंधश्रद्धा है तो दूसरी ओर लक्ष्मी की कुंठित जैविक आकांक्षाएँ हैं। बेबस, लाचार लक्ष्मी पिता की जबरदस्ती का मुकाबला नहीं कर सकती, अतः वह 'हिस्टेरिया'(उन्माद) की अवस्था तक पहुँच जाती है और अस्वाभाविक कार्य करने लगती है।"(10)

लक्ष्मी ,पड़ोसी गोविन्द की पत्रिका पर कुछ पंक्तियाँ रेखांकित करती हैं -"मैं तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करती हूँ ..... मुझे यहाँ से भगाकर ले चलो ..... मैं फाँसी लगाकर मर जाऊँगी...।"(11) पिता लक्ष्मी की हर जिद पूरी करता है, लेकिन घर के बाहर कदम नहीं रखने देता। धीरे-धीरे लक्ष्मी को दौरे पड़ने लगते हैं और वह बिलकुल पागल जैसा व्यवहार करने लगती है। कभी नंगी होकर छाती पीटते हुए बाप से कहती हैं -" ले तूने मुझे अपने लिए रखा है.... मुझे खा.... मुझे चबा ... मुझे भोग।"लक्ष्मी की इस विकृति का जिम्मेदार मात्र उसका पिता हैं। जैविक आकांक्षाओं को लक्ष्मी कब तक रोक सकती है ? बाप की कैद से निकल भागना भी उसके लिए दुश्वार हैं। परिणामतः कुंठाओं, वर्जनाओं, अतृप्त वासनाओं आदि के कारण वह उन्माद की शिकार हो जाती हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में 'लक्ष्मी' की यही अवस्था होती है। लक्ष्मी के सामने पिता की कैद के सिवा कोई उपाय भी तो नहीं हैं।"(12)

लगता है राजेन्द्र यादव और उनके साथियों ने मानसिक वर्जनाओं, वासनापरक अतृप्तिपर ही अधिक लिखा है। स्त्री-पुरूष संबंधों में काफी वर्जनाएँ और टेबूही सक्रिय हैं। देवी शंकर अवस्थी का भी अभिमत रहा है कि "राजेन्द्र यादव के छोटे-छोटे ताज महल के विजय और मीरा हो, रामकुमार की 'यात्रा' के वह और देबा हो, मोहन राकेश की 'एक और

जिन्दगी' या कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' के नायक-नायिका हो अथवा श्रीकांत वर्मा की 'परिणय' अथवा'दूसरे के पैर' के सिमटे कुचले और नपुंसक! ज्यों-ज्यों ये एक दूसरे से परिचित होने की कोशिश करते हैं त्यों-त्यों कुछ अधिक अपरिचित होकर एक-दूसरे के समीप से गुजरते हैं।"[13]

मनोविश्लेषण के क्षेत्र में नयी कहानी आन्दोलन के ऐतिहासिक अनुषंग में अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी समानान्तर रूप से सक्रिय रहे हैं अतः उनका एक दूसरे पर प्रभाव होना अवश्यम्भावी है। इस बात को धनंजय वर्मा भी रेखांकित करते हैं कि -"यादव ने भी कमोबेश मनुष्य की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं या ग्रन्थियों को उठाया है जो जैनेन्द्र या अज्ञेय ने उठाई थी। और यशपाल की तुलना में जैसे जैनेन्द्र और अज्ञेय अधिक जटिल वस्तु और विधान लेकर आए, उसी तरह यादव की रचना संचेतना भी जटिलता, अन्तर्विरोधों, ग्रन्थियों और संघर्षो को लेकर चली। हाँ! अज्ञेय और जैनेन्द्र से एक स्पष्ट अन्तर और व्यापक विकास की स्थिति यादव में अवश्य हैं। जैनेन्द्र की 'त्रिपुटियों'का मोह यादव में प्रतिरोध (इन्हीबीशन) की हद तक हैं। 'शह और मात'। में उदय, सुजाता और अपर्णा, 'एक इंच मुस्कान' में (मन्नू भंडारी से क्षमा-याचना सहित कि इसे मैं केवल यादव के सन्दर्भ में याद कर रहा हूँ... वह भी केवल उन अंशो को, जिनके लेखक यादव हैं) अमर, अमला और रंजना। इनसे अलग हटकर जब भी यादव ने किसी एक ही पात्र या स्थिति के अन्तर्संघर्ष पर लिखा है तभी द्वन्द्वात्मक के स्थान पर एक त्रिकोणात्मक संघर्ष(ट्रायन्गुलर फाइट) पर अधिक भरोसा किया है। कहानी 'प्रतीक्षा' तिहरी प्रतीक्षा की कहानी हैं।"[14]

दरअसल राजेन्द्र यादव कृत 'प्रतीक्षा' एक विशेष मनःस्थिति की कहानी हैं। उसका हर पात्र दुहरी जिन्दगी जीता हुआ अपने-अपने अवसर पर की प्रतीक्षा में हैं, लेकिन उस सबकी यातना, आशंका, तनाव,और अकेलेपन की पीड़ा गीता ही भोग रहीं है। नन्दा के पति उसका आकर्षण, प्रेम और उसके विविध स्तर, उसके अन्तर्विरोध और अन्तर्द्वंद्व को ही बताते हैं। एक ओर उसके प्रेम में समलैंगिक प्रवृत्ति है, दूसरी ओर वह सपत्नी भाव जगाती है और तीसरी ओर तृप्ति का एक तन्मय सुख और सार्थकता की एक अनुभूति दे जाती है। एक ओर उसका अतीत उसे कुतरता हैं, दूसरी ओर वर्तमान आशंका उसे खाए जाती हैं। एक स्थायी भावबोध और एक सार्थकता की अनुभूति उसे साथ-साथ है। कभी वह नन्दा से तादात्मय स्थापित करती है और कभी उसके प्रेमी हर्ष से और कभी अपने ही अकेलेपन की पीड़ा भोगती हुई ऐंठती है।

लेकिन गीता की यह ट्रैजडी,मनोविश्लेषण के प्रयोगोंवाली 'केस-हिस्ट्री'सी कहानी से आगे बढ़कर आधुनिक व्यक्ति के 'स्प्रिचुअल' और नैतिक मूल्यों के खोज की कहानी हैं। वह केवल तिहरी प्रतीक्षा की कहानी नहीं हैं, बल्कि पुराने सारे 'मॉरल इन्हीबीशन्स'से निकलकर एक ऐसे बिन्दु पर खड़े लोगों की कहानी है जो अनजाने ही किसी नए नैतिक धरातल की खोज में आकुल हैं। कहानी के तीनों पात्रों में से किन्ही भी दो पात्रों के

संबंध 'नैतिक' नहीं हैं और उन्हें लेकर कोई 'गिल्ट' या 'सिन' की अनुभूति उनमें नहीं हैं बल्कि ऊपर से देखने पर तीनों ही निहायत व्यक्तिगत स्वार्थ-दृष्टि से अपने-अपने अवसर की प्रतीक्षा में हैं। शोध कार्य की अपनी सीमा है पर राजेन्द्र यादव में वह अप्रतिम प्रतिभा रही है कि वे विगत पचास वर्षों से स्त्री-पुरूष संबंधों के पुरातन और अभिनव संदर्भों को कहानी संरचना का माध्यम बनाते रहे हैं।

3.12 मोहन राकेश : बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार हैं नाट्य संरचना और कथा साहित्य के सक्षम हस्ताक्षर। यह माना जाता है कि मोहन राकेश 'नयी कहानी' के प्रवर्तकों में से एक हैं। आपकी कहानियों के कुछ पाँच संग्रह **'इंसान के खंडहर'** (1950), **'नये बादल'**(1957), **'जानवर और जानवर'** (1958), **'एक और जिन्दगी'**(1961), **'फौलाद का आकाश'** (1966), प्रकाशित हुए थे। इन सभी कहानियों का एक संग्रह 1972 में 'मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ'शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। सन 1984 ई. में इसी संग्रह में उनकी कुछ अप्रकाशित कहानियाँ भी सम्मिलित कर ली गयी। अपनी कहानियों के विषय में मोहन राकेश ने स्वयं कहा है -"मेरी अधिकांश कहानियाँ सम्बन्धों की यंत्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं,जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न हैं। यह अकेलापन समाज से कटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के बीच होने का अकेलापन है और उसकी परिणति भी किसी तरह की 'सिनिसिज्म' में नहीं झेलने की निष्ठा में है। सम्बन्धों की यंत्रणा मुख्यतः स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के टूटने-दरकने की ही है।" (15)

वैसे मोहन राकेश ने व्यवस्था के खोखलेपन पर प्रहार भी किया है और विभाजन की त्रासदी का चित्रण भी। महानगरीय जिन्दगी की यांत्रिकता और उसके दबाव से व्यक्ति के अकेले पड़ते जानेकी मानसिकता का चित्रण 'मोहन राकेश' ने बड़ी सूक्ष्मता से किया हैं। इसी स्तर पर आपकी कहानियाँ आधुनिकता बोध की कहानियाँ ,मानी गयी हैं। चाहे वह 'मलबे का मालिक' हो या 'मवाली'। लेकिन 'मिसपाल' और 'सुहागिनें' जैसी कहानियाँ भारतीय जनजीवन में नारियों के एक नये स्वरूप की प्रत्याशा हैं। इन कहानियों में देश की नारियों का छोटा-सा वर्ग धीरे-धीरे उभर रहा है, उनकी मानसिकता का यह चित्रण हैं। इन नारियों के अनेक मानसिक व्यापारों, अन्तर्विरोधों और मौन अतृप्ति के कारण होनेवाली छटपटाहट के जीवन्त दस्तावेज के रूप में इन कहानियों को देखा जा सकता हैं। कहना न होगा कि मोहन राकेश की रचनाओं में एक ओर तथाकथित,अस्मिता, संस्कार और परिवेश के बोझ को ढोते-ढोते सभी स्तरों पर टूटती ये कामकाजी नारियाँ हैं, तो दूसरी ओर यौन-भाव को सहज-भाव से स्वीकार कर आगे बढ़नेवाली नारियाँ भी हैं।" (16)

'मिसपाल' के माध्यम से मोहन राकेश ने एक ऐसी युवती को साकार किया है जो सभी ओर से नकारा साबित हुई है। मिसपाल अपनी

आत्मपीड़ावादी मानोवृत्तिके कारण दिल्ली की नौकरी छोडकर कुल्लू की घाटी के रायसन गाँव में अकेली ही रहती हैं। यहाँ उसका कोई नहीं है और न उसे कोई पहचानता है। पाँच सौ की नौकारी छोड़ते समय कार्यालय के सहयोगी उसके विषय मे कई प्रकार की बातें करते हैं। वह अपने घर में सितार बजाती , कभी तूलिका से चित्र बनाती, अथवा नरम गद्दे पर लेटी हुई कमरे की छत की ओर देखा करती है। रणजीत जब रायसन में उसके घर पहुँचता है तो वह अपने विषय में प्रश्न करती है। वह यह सुनना चाहती है कि लोग अब भी उसके बारे में उसी तरह की बातें करते होंगे और मजाक उड़ाते होंगे। रणजीत से नीरस उत्तर पाकर मिसपाल निराश होती हैं।

रायसन में मिसपाल अकेली रहती है और सप्ताह भर का खाना एक साथ बनाकर रख लेती है तथा निश्चिंत होकर खाती रहती हैं। चीज बनाने के लिए वह ऐसे व्यक्तियों के चेहरे चुनती है, जो किसी न किसी रूप में विकृत हो। मिसपाल की दशा यह है कि वह जीवन से ऊब गयी है और उसके लिए संसार के सुंदर उपकरणों में भी कोई सौंदर्य शेष नहीं हैं। दिल्ली में बनाए परदें भी ज्यो-के-त्यों बक्से में बंद पड़े हैं।

मिसपाल स्वयं की आलोचना करती हुई आत्मपीडित व्यक्ति की वृत्ति की ओर संकेत करती हैं -"देखो मैं कैसी भुलक्कड हो गयी हूँ। मेरा तो बस एक ही इलाज है कि कोई हाथ में छड़ी लेकर मुझे ठीक करे। यह भी कोई रहने का ढंग है, जैसे मैं रहती हूँ।" [17] यह एक प्रकार के आत्मप्रताड़ना है, नीरसता से बचने के लिए-'सेल्फ कृसिफिकेशन' हैं। अलगाव बोध और ऊब से बचने के लिए दिवास्वप्न ही एक निःशेष मार्ग हैं।

मनोविश्लेषण और अस्तित्व संघर्ष के क्षणों में आत्मपीडित-तोष-व्यक्ति दूसरे द्वारा पीटे जाने से प्रसन्नता का अनुभव करता है। मिसपाल स्वयं को ही हीन नहीं समझती हैं, अपितु चाहती है कि रणजीत भी उसी प्रकार उसे हीन और तुच्छ समझे। निरर्थक जीवन होते हुए भी उस जीवन में वह परम आनंद का अनुभव कर रही हैं। वह नहीं चाहती हैं कि कोई उसके विषय में चर्चा करे। रणजीत से विदा लेते समय वह कहती है -"वहाँ जाकर मेरे बारे में दफ्तर में किसी से बात मत करना-तुम किसी को यह भी न बता ना कि तुम मुझे यहाँ मिले थे।"[18] मिसपाल जैसे पात्र समाज में रहते हुए भी समाज के सक्रिय अंग नहीं हैं। वे अपने में ही खोये रहते हैं। वे यौन-कुंठा, निराशा,एवं मानसिक घुटन से पीड़ित हैं,परन्तु उससे छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील भी नहीं हैं। उन्हें तो उसी दुःखमय या कष्टप्रद अवस्था से उत्पन्न पीड़ा में ही वास्तविक सुख का अनुभव होता है।

कहना न होगा कि मिसपाल के जीवन के प्रति निरर्थकता के मूल में उसकी दबी हुई अतृप्त इच्छाएँ रही हैं। अगर रणजीत पहल करता वो वह विरोध नही करती। कामकाजी नारी की यौन समस्या,ठहरी हुई जिन्दगी , पहल न कर पाने की विवशता ,अवसर हाथ से निकल जाने से उत्पन्न

चिड़चिड़ापन, ऊब और उस व्यक्ति के प्रति आकर्षण इन बिन्दुओं पर मिसपाल का चरित्र विकसित हुआ है। बचपन से ही जिद्दी स्वभाव के कारण मिसपाल अपने प्रति अधिक सजग हैं। इन सारी घटनाओं से वह शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर टूटती जा रही हैं।

धनंजय वर्मा के साक्ष्य से कहा जा सकता है कि किसी पाठक ने 'मिसपाल'को पढ़कर कहा था कि लेखक उसके साथ खिलवाड़ करता हैं - उस पर हँसता हैं। उस पाठक का कहना आश्चर्य नहीं जगाता क्योंकि इसकी सांकेतिकता में उन तत्वों का समावेश है जो तत्कालीन कहानी की भूमि पर अनजाने थे(या हैं)। 'मिसपाल' का धरातल विश्लेषणात्मक नहीं हैं मनोवैज्ञानिक अन्तर्गुहाओं में भटकन भी वहाँ नही है,(यद्यपि उनकी ओर संकेत,कहानी की हर स्थिति हैं)। व्यक्ति के जीवन से चुनी हुई कुछ घटनाओं और स्थितियों तथा यथार्थ के बाह्य स्तर पर हैं 'अन्तर' के द्वंद्व और एकान्त विडम्बना को उभारने का यह प्रयत्न मानवीय करूणा और सहानुभूति का स्तर कहीं नहीं छोड़ता -बल्कि उसके प्रति करूणा ही जगाता हैं। -जाने क्यों मिसपाल अपने चित्रों के लिए सदैव ऐसे ही चेहरे चुनती थी जो किसी-न-किसी रूप में विकृत हो,मेरा तो बस एक ही इलाज है कि कोई हाथ में छडी लेकर मुझे ठीक करे- या हर लिहाज से मैं बदकिस्मत हूँ, मेरे जीवन का कोई अर्थ नही हैं।' और अन्त में खाली डिब्बे लिए बिदा देती मिसपाल -किंचित ऐसे संकेत है जो क्रमशः इस शापग्रस्ता के जीवन की एकान्त विडम्बना को बड़े सूक्ष्म ब्यौरा के साथ उभारते हैं।"[19]

इसमे एक तल्खी -भरी तटस्थता अवश्य है, लेकिन वह अनुभूति की नहीं लेखन -काल की हैं। जिसमें किसी भी दिशा के अतिरेक से बचकर चलने का प्रयत्न है -न तो अतिरिक्त सहानुभूति न अतिरिक्त असम्पृक्ति। संभवतः हमारे वर्तमान दौर की शिक्षित आत्मनिर्भर और बौद्धिक चेतना से सम्पन्न 'नारी-अस्मिता की यही 'ट्रेजेडी' हैं जिसे स्त्री-विमर्श रेखांकित नही कर पाता है।

3.13 कमलेश्वर : कमलेश्वर 'नयी कहानी' आन्दोलन के पुरोधाओं में से एक हैं। 1972 ई. में आपने समान्तर कहानी का आन्दोलन चलाकर युवा कहानीकारों को आकृष्ट किया था। आपके कई कहानी संग्रह **'राजा निरबंसिया'** (1957), **'कस्बे का आदमी'** (1958), **'खोई हुई दिशाएँ'** (1963), **'मांस का दरिया'**(1966), **'बयान'**(1973), **'आजादी मुबारक'**(2002) प्रकाशित हैं। ई.2001 में आपकी समस्त कहानियों का संग्रह 'समग्र कहानियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हो गया है। 'समान्तर कहानी' आन्दोलन के माध्यम से आपने आज भी भयावह परिस्थितियों में 'आम आदमी' के संघर्ष को वाणी देने का प्रयत्न किया था। इस आन्दोलन में आपको कहानी साहित्य के केन्द्र में बनाये रखा। 'नयी कहानी' के दौर में आपकी **'राजा निरबंसिया', 'खोई हुई दिशाएँ', मांस का दरिया', जार्ज पंचम की नाक', अपना एकान्त** जैसी कहानियाँ विशेष रूप से चर्चित हुईं थीं। 'समान्तर कहानी' के दौर में

आपकी **मानसरोवर के हंस, इतने अच्छे दिन, कितने पाकिस्तान** जैसी कहानियाँ सराही गयीं। वैसे कुछ आलोचकों की राय में 'समान्तर कहानी' का आन्दोलन कमलेश्वर द्वारा अपने को पुनः सुर्खियों में लाने के लिए योजनाबद्ध तरीके से प्रस्तावित किया गया था। कुछ भी हो, 'नयी कहानी' के प्रति लेखकों - मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर- में कमलेश्वर ही ऐसे हैं जिन्होने सामाजिक विसंगतियों ,टूटते हुए जीवन-मूल्यों ,बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और व्यक्ति के अमानवीकरण को वाणी देने का निरंतर प्रयत्न किया है।(20)

कमलेश्वर ने 'मांस का दरिया' कहानी में वेश्यावृत्ति के जीवन की ,स्त्री-पुरूष संबंधों के व्यावसायिक रिश्तों की दारूण कथा को पेश किया है। वहाँ राज निरबंसिया' पौराणिक निःसंतान (निरबंसिया) आधुनिक जीवन में अभावग्रस्त की आर्थिक विवशता में जगपति के परिवार का विखंडन है। पति के सामने पत्नी आर्थिक कारणों से परवश होई जाती है और वह उसे रोक नहीं पाता है। जगपती को पौराणिक राज निरबंसिया का समानान्तर बनाकर कमलेश्वर ने आज के अर्थतंत्र से जकड़े हुए राज निरबंसिया की कहानी जगपती के माध्यम से कही है। पर वस्तुतः यह आज के जमाने के उन सभी लोगों की कहानी बन गई है जो जगपती की तरह अपनी सारी कुलीनता और कुलीन इरादों के बावजूद अपने सामाजिक परिवेश और उसके ऊपर लिपटी अर्थव्यवस्था की निर्ममता को भोग रहे हैं।

रघुवीर सिन्हा के विचारानुसार यहाँ स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में मूल्यों से प्रयाण हुआ है। कमलेश्वर ने बहुत ही बारीकी से दो संसारों की मूल अंतर्कथा समानान्तर कही है -एक ओर अतीत का राजा निरबंसिया वाला संस्कारशील संसार है। दूसरा संसार वह है जिसमें जगपती के साथ हम आज रह रहे हैं, जिसमें आपाधापी है, वर्गसंघर्ष हैं, एक दूसरे को काटने की साजिशें हैं, विश्वासघात, रोज-रोज के षड़यंत्र ओर धोखाधडी है, कम अकल के लोगों का सारा सामाजिक-राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने जाने का चमत्कार और जिसे चाहा उसे पा लिया' वाला कौशल चातुर्य भी है। प्रबुद्ध प्रतिभाशाली लोगों का उनके अधीनस्थ बने रहकर अभिशप्त जीवन जीते रहने और इस जीवन की तमाम असंगतियों को भोगते रहने की क्रूर नियतिपरक संसार की विसंगतियों की कथा जगपती को नायक बनाकर और उसके परिवेश को संपूर्ण संचेतना में उभार कर कही गई है।(21)

'राजा निरबंसिया' कहानी जगपती चन्दा और कम्पाउण्डर के इर्द-गिर्द घूमती है। यहाँ परम्परा और आधुनिकता की टकराहट भी हैं। चन्दा अपनी सास की आखिरी इच्छा पूरी करने के लिए संतान को जन्म देना चाहती है। पारम्पारिक विश्वास यहाँ प्रेत-मुक्ति और वंश निर्वाह का भी है।

कमलेश्वर ने राज निरबंसिया कहानी में परिवेश का सजीव चित्रण किया है। जगपती की बहू मां की अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए मन-प्राण से लग जाती है यों उनकी एक और बड़ी इच्छा की पूर्ति न कर पाने की कसम उसके मन में बनी हुई है कि जगपती की संतान को चार बरस

इंतजार करने के बाद भी वे गोद में न खिला पाई। पर चन्दा को मन में सब्र करने के लिए एक दूसरी सांस्कृतिक विरासत भी तो प्राप्त है। 'कुलदेवता' का अंश तो जीवन भर पूजने को मिल गया था। घर में चारों तरफ जैसे उदारता बिखरी रहती, अपनापा बरसता रहता। उसे लगता जैसे ,घर की अंधेरी एकांत कोठरियों में वह शीतलता है जो उसे भरमा देती है। घर की सब कुंडियों की खनक उसके कानों में बस गई थी, हर दरवाजे की चरमराहट पहचान बन गई थी।"(22)

'राजा निरबंसिया' का उल्लेख हिन्दी कहानी जगत में उसके प्रकाशन से लेकर आजतक उसके दोहरे कथा-शिल्प के कारण होता हैं। लेकिन कहानी में लोक-कथात्मक शैली का समानांतर उपयोग दो भिन्न युगों की संवेदना को ,उसमें घटित परिवर्तन को, पर्याप्त सर्जनात्मक ढंग से उभारता है। बीमारी और बेरोजगारी से उपजी जगपती की आर्थिक मजबूरियाँ उसे धीरे-धीरे उसकी पत्नी चन्दा से दूर करती जाती है। वस्तुतः यह तथ्य ही कहानी में स्त्री-पुरूष की संवेदना और मूल्यबोध का वाहक बन जाता है। लेकिन आत्महत्या से पूर्व चन्दा और कानून के नाम छोड़ा गया उसका संदेश अपनी रोमानी प्रकृति के कारण कहानी में निहित क्षीण से विचार को भी आहत करता है।(23)

सारांशतः आधुनिक युग में नपुंसकता कायरता का लांछन न सहन कर पाने के कारण जगपती उसी रात सारा कारोबार ,त्याग,अफीम और तेल पीकर मर जाता है। चन्दा के पास कोई दैवी शक्ति नहीं जगपती कोई राजा नहीं था। "वह कोई राजा नहीं था, वह कर्जदार रहा है कंपाउंडर बचन सिंह का।"उधर राजा अपने राज में मन्दिर बनवाता हैं। सिक्कों पर राजकुमारों का नाम खुदवाता है, ताकि राजा के उत्तराधिकारी की पहचान बन जाए। इधर जगपती अपनी मृत्यु से पूर्व दो परचे लिखकर छोड़ता है - एक चन्दा के नाम और दूसरा कानून के नाम।

चन्दा के नाम परचे पर लिखा था-तुम बच्चे को लेकर चली आना। आदमी को पाप नहीं 'पश्चाताप' मारता हैं। कानून के नाम परचा है कि-मैंने अफीम नहीं रूपये खाये हैं। उनमें कर्ज का जहर था। मेरी लाश तब तक न जलायी जाए, जब तक चन्दा बच्चे को लेकर न आ जाये। आग बच्चे से दिलवायी जाए बस। (24)

कहानी खत्म होने पर बच्चे फूल चढ़ाते हैं, गौर देवी पर और कहानीकार की कहानी खत्म होती है पर ... ।

'कहानी का अन्त... शब्द के अन्तराल और डॉट के निशानों से परिपूर्ण होकर भी अपनी अर्थ संरचना और विजन की सोद्देश्यता में सांकेतिक है। परम्परा और आधुनिकता की टकराहट प्राचीन मानव मूल्यों ,पद, मान, गर्व पुरूषोचित अभिमान,नारी के चरित्र की अग्नि परीक्षा सतीत्व की अवधारणा पर भी है। और विसंगतिपूर्ण यथार्थ की विषमताओं से टकराहट की स्थिति से भी है।" (25)

स्त्री-पुरूष संबंधों के प्रोफेशिएनल संबंधों पर सदाअट हसन मण्टो ने जिस प्रकार लोमहर्षक ढंग से लिखा हैं। उस प्रकार की रचनाएँ हिन्दी में दुर्लभ हैं। पर कहना न होगा कि वेश्याओं के यथार्थ जीवन पर आधारित कमलेश्वर की कहानी 'मांस का दरिया' बेजोड़ है। (26) कहानी में जुगनू नामकी वेश्या को डाक्टरी जाँच के बाद कहा गया कि उसे कोई पोशीदा मर्ज नहीं हैं, अपितु तपेदिक का असर जरूर है। यह बात ग्राहकों को मालूम हो जाये तो वो सोचती है-"कैसे बितेगी यह पहाड़ सी बीमार जिन्दगी... सहारा कोई और भी तो नहीं...कोई हुनर नहीं.... इस बुरे समय में कोई नहीं देखेगा। बेहद अकेलेपन का अहसास उसे होने लगता है। अन्य ग्राहकों और मदनलाल नामके मजदूर नेता मे वह अन्तर अनुभव करती है। मदनलाल मानवता की दृष्टि से उसकी जानकारी प्राप्त करके कुछ सहायता भी करना चाहता हैं। जुगनू मदनलाल से कहती है -"हमारा भी कुछ काम कर दिया करो हम भी मजदूर हैं।" (27) इस एक वाक्य में जुगनू की सारी वेदना प्रकट होती हैं। मदनलाल का यूँ ही लौट जाना जुगनू के लिए एक नया अनुभव था। उसे हल्की-सी खुशी होती हैं। आखिरकार कोई अपना मुसीबत में कोई..... तो अपना हमदर्द भी है।

प्रसंगवश 'मांस का दरिया' कहानी के वर्णनानुसार इलाज के लिए पुराने ग्राहकों से कुछ रूपये उधार लेकर जुगनू इलाज करवाती हैं। पुलिसवालों को
हफ्ता न मिलने से वे भी उसे परेशान करते हैं। वह तो मांस की पुतली हैं और हर एक उसके मांस को नोचना चाहता है। अपने ग्राहकों को खुश करने का वह प्रयास करती है। (28)

कोई रात खाली चली जाती तो वह अपनी कोठरी में लेटे हुए बहुत घबराती है -" यह पहाड़ सी जिन्दगी....दिन-दिन टूटता हुआ शरीर।"जांघ के जोडों पर निकल आये फोड़ें से वह बहुत परेशान हैं। ऐसी स्थिति में जब कर्जा देनेवाला मनसू किरानी बहुत परेशान करता है,तो वह कहती हैं - "कुटवत हो तो वसूलकर लो। वेश्या होकर भी वह इतनी ईमानदार हैं कि किसी का कर्जा छोड़कर वह मरना नहीं चाहती। वह सोचती है -"सैकडों मर्द आये और गये ....पर कोई ऐसा नहीं.... जिसकी परछाई तले उम्र कट जाये। (29) जुगनू के लाख मना करने पर भी कवरजीत होटलवाले की ज्यादती के कारण जब फ़ोड़ा फूटने से मवाद जाँघों पर फैल जाता है। वह चीख मार कर चुपचाप शांत हो जाती है ,आखिर कर्जदार जो थी।

घनश्यामदास भूतडा के विचारानुसार जुगनू का यह चरित्र प्रतिनिधिक स्वरूप हैं। उसके बहाने कमलेश्वर ने वेश्याओं के यथार्थ, जीवंत और भयावह जीवन के चित्र हमारे सामने रखे हैं। यहाँ और कोई जीवन मूल्य नहीं हैं बल्कि मांस ही मूल्य हैं। यहाँ प्यार, ममता, स्नेह बिलकुल नहीं हैं। इस पेट की आग को बुझाने के लिए सब कुछ करना पड़ता है। व्यक्ति को व्यक्ति के मांस के स्तर पर ला छोड़ने वाला यह व्यवसाय अत्यंत भयावह जान पड़ता हैं। कैसी अतीत की मजबूरी से ही जुगनू को वेश्या बनना पड़ा

है। [30] स्त्री-पुरूष संबंधों के व्यावसायिक और मानसिक वैचारिक स्वरूपों में सन्दर्भों को अपनाकर वेश्याओं के यौन-संबंधों को चित्रण करनेवाली अनेक कहानियाँ नये कहानीकारों ने लिखी हैं। और लिखी जा रहीं है। अन्य प्रमुख कहानियाँ हैं- सबठीक हो जायेगा', (दूधनाथ सिंह), किले में औरत (रघुवीर सहाय), 'टुच्चा' (निरूपमा सेवती), 'रातें' व 'एक थी विमला' (कमलेश्वर), शवयात्रा (श्रीकान्त वर्मा) आदि।

मोहन राकेश ने 'सुहागिनें' कहानी के माध्यम से दो विभिन्न वर्गों की स्त्रियों को आमने सामने रखकर पुरूष वर्चस्व के कमीनेपन और स्वार्थ भाव को उकेरकर पाठकों की करूणा को उकसाया हैं पर कमलेश्वर स्त्री-जीवन की अधूरी आकांक्षाओं और अतृप्ति में बाधक नायिकावृत्ति और परिवेश दोनों को आत्यन्तिक क्षणों में रेखांकित करते हैं। प्रसंगवश कमलेश्वर ने जिन नारियों के चरित्रों को अपनी नुकीली कलम से निखारा है उनमें सुमी की मम्मी बेजोड़ हैं। वह एक महाविद्यालय की प्राचार्या हैं। विधवा होने पर भी उसने सौंदर्य को इस प्रकार संवारा है कि वह बीस वर्षीय अपनी पुत्री की मम्मी न लग कर बहन लगती हैं। सम्मानित पद पर रहने से समाज में लोगों की दृष्टि में उसकी बड़ी इज्जत है। उसका लाल पेन्सिल से बिन्दी लगाना, बाँह पर चूमने के दाग पर क्रीम लगाना,प्रयोगशाला के उपकरण खरीदने के बहाने शहर से दूर किसी पुरूष के साथ जाना आदि भीतर की नारी की काम भावना की पूर्ति के तरीके हैं।[31]

मम्मी के चोरी-छिपे ऐसे व्यवहार से सुमी को शरम और हँसी आती हैं। वह ममी को छुट देने के लिए ही घर छोड़कर होस्टल में रहने के लिए चली जाती हैं। भावुक माँ अंत में बुद्धिवादी तर्क-प्रिय नारी के सम्मुख पराजित होती हैं। इतने ऊँचे सम्मानित पद पर रहने के बावजूद नारी की काम भावना किसी-न-किसी रूप में प्रकट होती है। एक जवान विधवा,भले ही वह सम्मानित पद पर हो या न हो, युवावस्था के काम-ज्वर को रोकना कठिन लगता हैं। भले ही वर्तमान दौर में हमें सुमी और उसकी ममी के व्यवहार युगीन परिवेश के अनुकूल लगे और काल्पनिक कमी पर यह काल्पनिक यथार्थ औद्योगिक और महानगरीय जीवन की हकीकत बन गया है।

'नई कहानी आन्दोलन' में आधुनिक नारी की उपस्थिति के प्रसंग में कमलेश्वर की टिप्पणी रही है कि "आधुनिक नारी अब अपनी पूरी गरिमा, देह-संपदा और वास्तविक सम्मान के साथ आई हैं'(नई कहानी की भूमिका पृ.18) इसी संदर्भ में थोड़ा आगे चलकर लिखतें हैं -औरतें अब औरते हैं,वे झूठी सती या वेश्याएँ नहीं हैं, इसलिए नई कहानी खलनायिकाओं से शून्य हैं... संशयग्रस्त संबंधों के बिजबिजाते दलदल अब नहीं हैं। नारी की देह अब उसके अपने निर्णय की वस्तु है। [32]कमलेश्वर की विभिन्न कहानियाँ **'एक अश्लील कहानी', 'एक थी विमला', 'प्रेमिका', 'रातें', और 'मांस का दरिया'** आदि प्रचलित अर्थ में शायद स्त्री-पुरूष संबंधों की कहानियाँ नहीं हैं। इन कहानियों में स्त्री या तो सामाजिक विसंगतियों की

शिकार है या फिर एक ढोंग भरा जीवन जीने को विवश है। [33]पर हम एक सहृदय पाठक के रूप में "राजा निरबंसिया", 'मांस का दरिया', कहानी के युगीन सत्य से, विसंगतियों से क्या विचलित नहीं होंगे ? मानवीय जीवन की दुरभि संधियों को रेखांकित करनेवाले वे एक समर्थ रचनाकार प्रमाणित होते हैं ।

3.14 निर्मल वर्मा : हिन्दी कहानी के इतिहास में निर्मल वर्मा अकेले कहानीकार हैं, जिनके पहले कहानी संग्रह **'परिन्दे'** (1960ई) को डॉ.नामवर सिंह ने 'नयी कहानी' की पहली कृति माना है। [34] इसके बाद निर्मल वर्मा के पाँच संग्रह –**'जलती झाड़ी'** (1965ई.), **'पिछली गर्मियों में'** (1968), **'बीच बहस में'** (1973), **'कव्वे और कालापानी'** (1983), **'सूखा तथा अन्य कहानियाँ'** (1995) और प्रकाशित हुए हैं। 'परिन्दे' संग्रह की कहानियों की समीक्षा करते हुए डॉ.नामवर सिंह ने कहा था –"स्वतंत्रता या मुक्ति का प्रश्न जो समकालीन विश्वसाहित्य का मुख्य बन चला हैं, निर्मल वर्मा की कहानियों में प्रायः अलग-अलग कोण से उठाया गया हैं।[35] 'परिन्दे' कहानी संग्रह के प्रकाशन काल में० 'निर्मल' को वामपंथी रूझान वाला लेखक माना गया था, लेकिन सच्चाई यह है कि निर्मल वर्मा कला की कोई सामाजिक प्रासंगिकता नहीं मानते। 'कला का जोखिम' में वे कहते हैं-"वास्तव में कला की कोई सामाजिक प्रासंगिकता नहीं है क्योंकि इसका सच अपने आप में हैं, स्वायत्त और आत्मतुष्ट है और जिसकी अहमियत उसके निज के अस्तित्व की शर्तो पर ही आँकी जा सकती हैं। [36]ऐसी स्थिति में निर्मल की कहानियों में किसी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता या संलग्नता ढूँढना व्यर्थ है।

समकालीन कहानी के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में निर्मल वर्मा विवादास्पद रचनाकार हैं। वे अपने कथ्य और शिल्प के प्रयोगों के कारण स्पृहणीय रचनाकार भी माने गये हैं। निर्मल वर्मा की कहानियों की प्रमुख विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए वीर भारत तलवार ने कहा है –" निर्मल की कहानियों का अनूठापन मुख्यतः तीन बातों में हैं- काव्यात्मक भाषा, चमत्कारपूर्ण कल्पना और रहस्यात्मकता। यही तीन मुख्य विशेषताएँ है, जो उन्हें 'नयी कहानी' के दूसरे सभी कहानीकारों से और शायद हिन्दी की पूरी कथा-परंपरा से अलग करती हैं। कुछ दूसरी विशेषताएँ भी हैं, जैसे बारीक अनुभूतिशीलता और बिम्बों में उसकी अभिव्यक्ति, अत्यधिक स्मृतिशीलता, छोटी-छोटी तफसीलों की जीवन्तता, सूक्ष्म-निरीक्षण-वृत्ति और खास किस्म का वातावरण इत्यादि।" [37]

कभी-कभी 'निर्मल' को 'अज्ञेय' की परम्परा का लेखक कहा गया है,किन्तु दोनों में बुनियादी अन्तर है। 'अज्ञेय' ने सदैव 'संप्रेषण' की दृष्टि से 'कला' को महत्व दिया है। वे रचना का धर्म अभिव्यक्ति नहीं बल्कि संप्रेषण मानते हैं। इसके विपरीत 'निर्मल वर्मा' के लिए कला का मूल धर्म 'अभिव्यक्ति' है। सब मिलाकर निर्मल वर्मा हिन्दी-साहित्य के अनूठे

रचनाकार हैं। उन्हें किसी परंपरा से जोड़कर नहीं देखा जा सकता। वे अपनी तरह के एक विलक्षण कथाकार हैं।

सुधी पाठकों और आलोचकों को स्मरण होगा कि निर्मल वर्मा की सात कहानियों का पहला संग्रह 'परिन्दे' सन 60 में प्रकाशित हुआ। आरंभ से ही चर्चा के केन्द्र में रहने का कारण निर्मल वर्मा की कहानियों का अपना वैशिट्य तो था ही, उनका तब एक वामपंथी लेखक होना भी इसका एक कारण था।

वास्तविकता यह है कि निर्मल वर्मा की कहानियाँ कभी भी विचारधारा के उपयोग की कहानियाँ नहीं रहीं। **'परिन्दे'**(1960) से **'सूखा' और अन्य कहानियाँ** (1995) तक उनकी कहानियों में कोई आधारभूत परिवर्तन घटित नहीं होता। उनकी 'परिन्दे' का संसार स्वातंत्र्योत्तर भारत के लगभग तत्काल बाद का मध्यवर्गीय संसार है। इसमें विवाह छूटने की कचोट लिए तपेदिक की शिकार युवतियाँ हैं, अखबारों में जगह देखते बेकार-बेरोजगार युवक हैं जो प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए 'ओवर ऐज' होकर कहानी और रिव्यू लिखकर अपने भविष्य के सपने बुनते हैं। 'अंधेरे में' एक परंपरागत समाज में बँटी स्त्री हैं। कहानी प्रेम त्रिकोण होने पर भी बच्चों के माध्यम से संवेदना के क्षण कुशलता से बुने गये हैं।

घनश्याम भूतड़ा के विचारानुसार 'परिन्दे' कहानी आधुनिक यांत्रिक परिवेश में मशीन की भांति एक-रस जीवन जीनेवाले, भीड़ में रहकर भी किसी से न जुड़ने वाले मनुष्यों की गहरी त्रासदी हैं। मानवीय संबंध टूट रहे हैं और मनुष्य के भीतर की सारी कोमलता चरमरा उठी है। निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' में लतिका तथा गिरीश के प्रेम की कहानी, मानव नियति की व्यापक कहानी बन जाती है। कहानी की लतिका रेजिमेण्ट के कैप्टन गिरीश नेगी की मृत्यु के पश्चात सुचारू ढंग से जीवन नहीं बिता सकती। लतिका मिडोज के होस्टल में रहती है और कान्वेन्ट स्कूल में अध्यापन करती हैं। उस हिल स्टेशन के तीन प्रमुख पात्र लतिका ह्यूबर्ट और डी.मुखर्जी की स्थिति प्रवासी पक्षी की तरह है। अन्तर केवल इतना ही है कि पक्षी बर्फ गिरने की प्रतीक्षा में वहाँ कुछ देर विश्राम करते हैं और बर्फ गिरने पर समतल भूमि की ओर चले जाते हैं। (38)

लतिका अतीत से मुक्त नहीं हो पाती, इसलिए वर्तमान से कतराती है। डॉक्टर उसे 'बेवकूफ' और 'सेंटिमेंटल' कहता है। लतिका के मन में एक ऐसी गाँठ पड़ गई हैं कि वह अब दूसरों द्वारा किए गए प्रेम को सह नहीं पाती। ह्यूबर्ट की सद्भावनाओं को देखकर उसे लगता है कि स्वयं का जीवन एक गाँठ बनकर रह गया है, जो कभी सुलझ नहीं सकता -" उसे लगता है कि इस जाल से बाहर निकलने के लिए वह धागे के जिस सिरे को पकड़ती है, वह खुद ही एक गाँठ बनकर रह जाता है। (39) लतिका भलीभाँति जानती है कि गिरीश अब कभी लौटकर नहीं आएगा, फिर भी प्रतीक्षा किये जाती है एक अनजान प्रतीक्षा। उसे लगता है कि डॉक्टर तथा ह्यूबर्ट भी किसी-न-किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अवसाद, ऊब और

चिन्ता के साथ अलगाव बोध में जीती हुयी लतिका कहती है –" क्या वे सभी प्रतीक्षा कर रहे हैं ?... लेकिन कहाँ के लिए ....हम कहाँ जायेंगे ?[xxx] (40) जूली का प्रेम-पत्र देखकर वह उसे अनावश्यक डांटती-फटकारती हैं, परन्तु बाद में चुपके से उसे तकिये के नीचे सरका देती है। ह्यूबर्ट का प्रेम-पत्र पाकर वह मन-ही-मन हंसती है। वह जानबूझकर उसकी गलतफहमी बनाये रखती है।

वास्तव में अंधियारा गलियारा लतिका के जीवन का सूनापन है। बेडोल कटी-फटी आकृतियाँ उसके अस्त-व्यस्त और बेढंगे जीवन का प्रतीक हैं। टहलते हुए सिमिट्री तक जाना आंतरिक निराशा और सूनेपन को प्रकट करता है। वातावरण में छायी हुई मृत्यु की गंध, विराट सूनेपन से मिलकर उसे और उदास बना देती है।

लतिका अपने सम्पर्क-संबंधों से कटी हुई अकेली पड़ जाती है। अपने आप से जूझने तथा नकारते जाने में ही शायद अतृप्त प्रेमी किसी आत्मतुष्टि का अनुभव करते हों। लतिका अपनी चाही और अनचाही स्थितियों में एक ही क्रम से जीने लगती है। विगत से जुड़े रहना भारतीय नारी की भावात्मक दुर्बलता हैं। अतः 'परिन्दे' की लतिका एक ओर आधुनिक नारी लगती है। तो दूसरी ओर भावात्मक रूप से वह परम्परागत नारी से जुडी हुई लगती है। लतिका की हालत तो परिन्दों से भी गई बीती है 'परिन्दे' तो उडकर कहीं जाते हैं, वह तो कहीं नहीं जा सकती।

निर्मल वर्मा अपने विलक्षण पात्रों की मानसिकता को परिवेश के बिम्बो और प्रतीकों में भी सिरजते हैं। जिसकी ओर धनंजय वर्मा ने 'हिन्दी कहानी' का सफरनामा में संकेत किया है कि हर साल 'परिन्दे' सर्दी की छुट्टियों से पहले मैदान की ओर उड़ते हैं, कुछ दिनों के लिए बीच के इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा कर लेते हैं और प्रतीक्षा करते हैं –बर्फ के दिनों की, जब नीचे अजनबी अनजाने देशों में उड़ जाएँगे –लेकिन लतिका कहीं नहीं जाएँगी, कहीं नहीं, अपने ही एकान्त में बन्द परिन्दे की तरह छटपटाएगी। उसकी यह एक रसता,उस वातावरण और परिवेश की ही तो है। यहाँ न घटना है, न स्थिति केवल एक मुखर चिन्तन है जिसके माध्यम से अकेलेपन की पर्ते और स्तर-स्तर खुलते जाते हैं। वे स्तर जो जिन्दगी के व्यावहारिक पक्ष में नहीं खुलते, जो उससे पृथक सार्थकता असार्थकता की अनुभूति के निबिड़ क्षणों में मुखर होते हैं। (41)

वास्तव में निर्मल वर्मा की कहानियाँ समकालीन कहानी में एक विशिष्ट उपलब्धि हैं, पर केवल एक ही उपलब्धि। यथार्थ के जिस स्तर को उन्होंने पकड़ा है,जिस वातावरण की बात वे कहानियों में करते हैं उस स्तर और वातावरण में डूबकर भीगकर वे लिखते हैं और फलस्वरूप भिगोते और डुबोते हैं। लेकिन वे एक मनःस्थिति, एक मूड, एक भाव-स्थिति के ही कहानीकार हैं और एक ही मनःस्थिति, एक ही मूड और एक ही भावस्थिति के भी।

पर निर्मल वर्मा केवल मूड, मनःस्थिति रोमांटिक अलगाव बोध के रचनाकर हैं, ऐसी बात नहीं हैं उनके पास संवेदनशील और वैयक्तिक भाव बोध के पात्र हैं अपनी विवशता और संत्रास भावना में अकेले ही भोक्ता पात्र। 'जलती झाड़ी की सभी कहानियाँ इसी भूमि की हैं। ये कहानियां बड़े आत्मीय औार व्यक्तिगत क्षणों की हैं और 'पर्सनल डाक्यूमेण्ट' या डायरी की ही तरह इनके नेपथ्य में झाँकने की मनाही सी है। है भी तो ये अधिकांशतः प्रेम के आत्मीय संबंधों की कहानियाँ ('लवर्स','अन्तर' आदि)। इनके और पाठक के बीच एक मोटा परदा पडा हैं। वह कभी-कभी हिलकर सरकता है और उनक्षणों में जो भी उस 'डार्क एण्ड डीप' लोक से दिखता है, उसे पूरे जीवन और कथ्य का प्रतीक मानना चाहिए। ये आत्मीय और व्यक्तिगत क्षण लगभग सदैव ही अतीत से जुड़े होते हैं, व्यक्ति के धूमिल परदे पर दीये की लौ-सी झिलमिला जाती है। कुछ शक्ले, कुछ मनःस्थिति, कुछ प्रसंग और कुछ घटनाएँ। (42)

अतीत से जुड़ने की निर्मल वर्मा की यह वृत्ति लम्बी यात्रा के बाद ठहराव की -सी है, किसी पुरातन प्रियता से उसका संबंध नहीं, क्योंकि यह अतीत ,वर्तमान का भी स्थरीकरण करता है। और उसे भी क्रियात्मक नहीं मानसिक और संवेदनात्मक बना देता है। अक्सर ही इसीलिए यह अतीत-राग,पात्रों के लिए ही नहीं, पाठकों के लिए भी मोहक होता है - कुछ रहस्यमय,कुछ अपरिचित, अनिर्वचनीय और अदृश्य धुन्धमय-सा जैसे कि चीजों पर एक झीना परदा पड़ा हो या वे तरल हो गई। और अनायास आकर्षण भी। इस आकर्षण को प्रगाढ करती हैं-पात्रों की अपरिचित (विदेशी) भंगिमा, उनकी भावुकता और रागात्मक तल्लीनता। वे बिम्ब परक भाषा प्रयोग के विलक्षण और अनन्य रचनाकार हैं। 'सूखा' कहानी में वृद्ध पात्रा अपने समानधर्मा अतिथि से मन की अनुभूति को बाँटती हैं जिसे संवेदनशील और प्रबुद्ध पाठक ही आत्मानुभूति से जान पाता है। (43)

3.15 मन्नू भण्डारी : 1931 को 'नयी कहानी' के दौर में ही 'यही सच है' कहानी के प्रकाशन के साथ विशेष ख्याति मिली थी। आपने बदले हुए परिवेश में संस्कार और आधुनिकता के बीच उलझे हुए नारी-मन के द्वंद्व को बडी ईमानदारी से चित्रित किया है। **'मैं हार गयी'**(1957), **'यही सच है'**(1966),**'एक प्लेट सैलाब'**(1968), **'तीन निगाहों की एक तस्वीर'**(1968), **'त्रिशंकु'**(1978) आदि आपके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। इन्होने अपनी कुछ कहानियों में मजदूर वर्ग की असहाय नारियों की दरिद्रता, संघर्ष और मानसिकता का बड़ा ही मार्मिक चित्र खिचा हैं। अन्य कहानी लेखिकाओं की तुलना में आपका कथा-फलक विस्तृत है। वस्तुतः आपने भावुकता से हटकर बदले हुए जीवन-संदर्भ में खुले दिमाग से नारी-जीवन की वास्तविकता को देखा-परखा है और उसे बड़ी सादगी के साथ व्यक्त किया है।(44)

'यही सच है' कहानी पर फिल्म भी बनी है। नारी मन के अन्तर्द्वंद्व, प्यार का पहला अनुभव और अस्तित्ववादी चिंतन के अनुरूप 'क्षण का

महत्व', आत्मविश्लेषण, वासनाओं की तृप्ति के क्षण कहानी के मुख्य सूत्र हैं। मन्नू भंडारी की प्रेम कहानियों के प्रचलित स्वरूप में एक बार और ,और ऊँचाई की बनिस्पत 'यही सच है' का विशेष महत्व है। संयोग से तीनों ही कहानियों में नायिका-विशेष को अपने जीवन में दो पुरूष पात्रों के संपर्क में आने का अवसर मिलता हैं। जिसमें वे बेबाक ढंग अपनी मनोभावनाओं, अतृप्ति और आकांक्षा का वर्णन करती हैं। सती-साध्वी के रूप में अपने आप को अभिशापित कर छलती नहीं हैं। (45)

'यही सच है' कहानी का वैचारिक आधार कमजोर है। नायिका दीपा का अन्तद्वंद्व ही प्रमुख हैं। गुरूचरण सिंह ने भी अभिज्ञापित किया है कि मन्नू भंडारी की 'यही सच है' कहानी स्त्री-पुरूष संबंधों के बिलकुल भिन्न रूप को उजागर करती है। इसमें प्रेम की सनातन और निरपेक्ष सत्ता के स्थान पर परिस्थिति और परिवेश- सापेक्ष स्थिति का उद्घाटन किया गया है। परिस्थिति और परिवेश बदलते ही निशीथ के प्रति उसकी घृणा प्रेम में बदलने लगती हैं और संजय के प्रति उसका प्रेम-भाव कृतज्ञता-भाव तक सीमित होने लगता है उसके लिए निशीथ का स्पर्श भी सच है और संजय का भी। प्रेम संबंधों का यह चित्रण निरूपण इस कहानी में संवेदनात्मक स्तरों पर हुआ है। जिससे प्रेम-संबंधी परंपरागत मिथ टूटी है, प्रेम को एक शाश्वत धारणा के रूप में नहीं, परिस्थितियों की सापेक्षता में ग्रहण किया है। (46) संभवतः नायिका प्रधान कहानी की संरचना में उसके मानसिक उद्वेगों और अपेक्षित जीवन साथी के प्रारूप में देह के स्पर्श को अधिक महत्व दिया है।

पति-पत्नी के बीच दुराभाव हो, संघर्ष हो, विचारों की असहमति हो ,तो भी भारतीय जनजीवन में इसे हम अस्तित्व संघर्ष और अस्मित भाव में चीन्हना नहीं चाहते हैं। प्रसंगवश मन्नू भण्डारी की 'नशा' कहानी ही ले ,यह कहानी संबंधों के संवेदनात्मक रूप को उभारती है। यहाँ पीड़ा में सुख पानेवाली दृष्टि हैं। शंकर अपनी पत्नी के प्रति निष्ठुर व्यवहार करता हैं। लडका किसन अपनी माँ के प्रति दुर्व्यवहार को न सह पाने के कारण बचपन में घर छोड़कर भाग जाता है। बारह साल बाद वही लड़का घर आ जाता हैं। माँ उससे कहती है-"मुझे यहाँ से ले चल किसन.... यहाँ से ले चल। मैं अब एक दिन भी इस घर में रहना नहीं चाहती। मैंने बहुत सहा हैं,अब और नहीं सहा जा सकता। मुझे यहाँ से ले चल आज ही। पर वहाँ से चले जाने के बाद भी क्या आनन्दी अपने निष्ठुर पति से अलग हो सकी ? कहानी के अंत में भेद खुलता हैं कि आनन्दी सिलाई-बुनाई करके शंकर को २० रूपये भेजती हैं, और स्वयं बीमार पड़ जाती है। यहाँ संबंधों का संवेदनात्मक धरातल हैं। यहाँ लगाव अभी नहीं टूटा। इस लगाव का रूप भी यहाँ द्वंद्वपूर्ण न होकर शुद्ध परम्परागत है। यहाँ कोई स्त्री विमर्श का दाव नहीं है पर संवेदना परंपरा त्याग ,करूणा और सहिष्णुता की बानगी ज्यादा है।(47) नारी जीवन में एकाकीपन किसी अभिशाप से कम नहीं होता हैं। वर्तमान भारतीय जन-जीवन में या तो कुंठित,दिग्भ्रमित रहना पड़ता है

अथवा विद्रोही और परिवर्तन का भी चरित्र। 'अकेली' नामक कहानी में मन्नू भण्डारी ने ऐसी नारी का चित्रण किया है 'जिसे पति के रहते हुए भी असहाय और अकेलेपन की यातनाओं से गुजरना पड़ता है। सोमाबुआ का पति साल में एक बार घर आता है बाकी साल के ग्यारह महीने उन्हें अकेलेपन का संत्रास भुगतना पड़ता हैं वह एक कोठरी में अपना गुजारा कर लेती है। "पति के स्नेहहीन व्यवहार का अंकुश उनके रोजमर्रा के जीवन की अबाध गति को कुंठित कर देता।" (48)

पारम्परिक भारतीय जन-जीवन में परित्यक्ता नारी को सामाजिक उपेक्षा का सतत केन्द्र बनना पड़ता हैं। परित्यक्ता जीवन में सोमावीरा अपने पति की मर्जी वह अभी संभालती है। दूसरों के घरें में वह दम फूलने तक जी तोड़ काम करती रहती है। उन्हें और कोई सहारा न रहने से पडोस वालों के भरोसे ही जिन्दगी कट रही है। वह परित्यक्ता है और अकेली रहती है। फिर भी सबसे संबंध जोडे रखती है।

प्रसंगवश सोमा बुआ के धनी रिश्तेदारों में ब्याह है। वह कहती - "सामाजिक संबंध बनाए रखने का काम तो मरदों का हैं... मैं तो मरदवाली हो कर भी बेमरद की हूँ।"[xxx] वह बड़ी व्यवहार कुशल हैं। उपहार में कुछ देने के लिए अपनी जमा पूँजी ठिकाने लगाती है और लाल-हरी-चूड़ियाँ पहनकर निमंत्रण की प्रतीक्षा करने लगती हैं। बड़ी भोली है सोमा बुआ। पति के कटने पर कि बुलावा न आये तो मत जाना,बुआ कहती है -"मुझे क्या बावली समझ रखा है जो बिना बुलाये चली जाऊँगी... वह पड़ोस वाली नन्दा बुलावे की लिस्ट में मेरा नाम देखकर आई हैं,...शहर वालों को बुलायेंगे और समधियों को नहीं।" परन्तु प्रतीक्षा-रत सोमा बुआ को आखिर तक कोई बुलाने नहीं आता तो मन मसोसकर अपने लिए भोजन तैयार करने में जुट जाती हैं। (49)

समकालीन कहानी के विकास क्रम में मन्नू भण्डारी का महत्व इसलिए भी ज्यादा है कि उन्होने फैशन आन्दोलन और प्रसिद्धी-विशेष के लिए सैक्स-स्केण्डल की कहानियाँ नहीं लिखी हैं। पर विविध नारी चरित्रों का सशक्त रेखांकन किया है। प्रसंगवश 'नयी नौकरी' कहानी की नायिका रमा नौकरी तो करना चाहती है परन्तु नौकरी के दौरान वह न तो घर के दायित्वों को भलीभाँति निभा पाती हैं और न ही कॉलेज में दिलचस्पी से पढ़ा पाती है। एक अन्य स्थिति भी उसके सामने उभरकर आती है। उसके पति को एक विदेशी फर्म में काम मिल जाने पर उसका पद पहले से भी ऊपर उठ गया है। परिणामतः रमा को अपने पति के पद को गरिमा के अनुसार घर को नये सिरे से सजाने-सँवारने का दायित्व निभाना पड़ता है। इस दायित्व को पूर्णतः निभाने के लिए उसे अपनी नौकरी से त्याग पत्र भी देना पड़ता हैं। नौकरी छोड़ने का रमा को बहुत दुख है पर विड़म्बना तो यह हैं कि उससे उसी की भलाई की दुहाई देकर नौकरी छुड़वाई जाती है। उसका पति कहता है- "शायद तुम्हें लग रहा हैं कि मेरी वजह से .... तुम्हे अपना काम छोड़ना पड़ रहा है .... पर यह तो सोचो मुझे ही इस नौकरी

में क्या दिलचस्पी हैं ?...तुम्हारे लिए, बण्टी के लिए....।" (50) वैसे रमा के पति का पद बड़ा है, सम्मान बड़ा हैं, तो रहन-सहन का स्तर भी ऊँचा उठा हैं। रमा इस बात से प्रसन्न है, पर भीतर-ही भीतर एक विवश्यता के कारण पुराने जीवन से कट जाने का दर्द कभी-कभी उसे कचोटता हैं। पहले रमा मानसिक और पारिवारिक दृष्टि से भी सुखी थी, परन्तु आज उसे अनुभव हो रहा है कि बाहरी उन्नति, आन्तरिकता के स्तर पर अवनति बन गयी है। (५१) यह रचना स्त्री-विमर्श के फैशन के तहत न लिखी जाकर नारी के आत्मसम्मान और अस्मिता की सजग पहचान की कहानी है।

भारतीय जन समाज में मध्यवर्ग की लड़की या स्त्री अपने मनोभावों, इच्छाओं की अभिव्यक्ति आत्मबल की कमी से नहीं कर पातो हैं। मन्नू भण्डारी ने इसी तथ्य को एक कमजोर लड़की की कहानी के माध्यम से पेश किया हैं। यह कि कहा जा सकता है कि प्रेम किसी से औार विवाह किसी और से होने पर नारी की छटपटाहट को मन्नू भंण्डारी ने प्रस्तुत कहानी में रूपायित किया है। विवाह के पूर्व रूप जिद्दी स्वभाव की थी। सौतेली माँ के कठोर नियंत्रण से वह इतनी ड़र गयी है कि पिता का मन मसोस उठता। घर का सारा काम उसी को करना पड़ता है। पिता को अपनी बेटी रूप पर इस बात का गर्व था कि आज के जमाने में ऐसी लड़की भाग्य से मिलती है। xxx अपने मामा-मामी के पास रहकर रूप मैट्रिक पास करती है। मामा के पाले हुए पुत्र 'ललित' के साथ रूप का प्रेम धीर-धीरे बढ़ता है। दोनों एक दूसरे के प्यार में पूर्णतः डूब जाते हैं। ललित के अमरीका जाने के पश्चात रूप का विवाह एक संपन्न वकील से होता हैं। पति की व्यस्तता के कारण और ललित की याद से व्यथित हो कर वह अकेलापन महसूस करती है। जिसका मन ही मर गया हो, उसके लगने न लगने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

मन्नू भंण्डारी ने रूप की मनःस्थिति को स्वाभाविक ढंग से पेश किया है। यहा का नारी-वर्ग अजीब सी वर्जना और टेबू में जीता है। चाहकर भी वह अपनी इच्छा आकांक्षा और रगात्मक बोध को प्रकट नहीं कर पाता हैं। 'एक कमजोर लड़की की कहानी' में आगे वर्णन है कि अमरीका से लौट कर ललित वकील साहब के घर मेहमान बनकर रहता है। रूप का व्यवहार काफी बदल गया है। वह ललित से दूर -दूर रहती है और बहुत कम बात करती हैं। रूप के इस व्यवहार से ललित के सारे अरमानों पर पानी फिर जाता है। ललित रूप की दकियानूसी बातों का धिक्कार करते हुए उसे अपने साथ भाग चलने के लिए उकसाता है। रूप लोक-लाज से भाग नही सकती। गिड़गिड़ाते हुए वह कहती है -"नही,नहीं ललित ...इतना बडा दंड़... यह सब मुझसे नहीं होगा...।"(52) यहाँ पर भी वह कमजोर पड जाती है। पुराने संस्कारों से वह जुड़ी रहना चाहती है।

पति के घर लौटने पर ,देरी का कारण बताने के पश्चात रूप के सारे सपने बिखर जाते हैं। निर्णय-दुर्बलता के कारण यहाँ भी वह कमजोर पड़ जाती हैं। अर्थात भारतीय समाज में नारी न तो अपनी भावना ,इच्छा

और निर्णय शक्ति के अनुरूप जीवन शैली अपनाती है, वह अधिकांशतः परम्परा की सीमा में जकड़ी रहती है। अशिक्षित निम्न वर्ग की नारी तो शोषण प्रतिकार रच लेगी। पर मध्य वर्ग की नारी विवशता, तनाव और परंपराओं में जीवन निर्वाह करना चाहेगी। पर अब स्थितियाँ बदल रही हैं।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि मन्नू भंण्डारी की कहानियों से पुरानी कहानी का पाठक भी असन्तुष्ट नहीं होगा। 'रानी माँ का चबूतरा' में आपको पुरातनता के निर्मोक ओढ़े पात्र मिलेंगे, भावुकता के हल्के-गाढ़े रंग और चरितनायिका 'गुलाबी'के लिए करूणा भी और पुरानी कहानी की तरह का 'आइडियावाद' भी। 'चश्मे' में टी.बी. भी है,भावुकता भी और मन पर कालमेघ
की तरह धीरे-धीरे घिरने वाला अवसाद भी। अकेली सोमा बुआ अपनी उपेक्षा से उपजे अकेलेपन के दर्द के लिए आपसे सहानुभूति की मांग भी करती है।'मैं हार गई' की सारी योजना में एक छुपा हुआ रोमोण्टिसीज्म है और 'क्षय' की आठवीं पास लड़की की मानसिकता आरोपित लगती है और कोई आश्चर्य नहीं कि विवशताओं में कैद 'कुन्ती' के लिए आपका मन भीग जाये क्योंकि कोरों से ढलकते आँसू ,व्यथा और क्षय की गूँजती खाँसी उसके लिए काफी कारगर माहौल बनाते हैं। 'एखाने आकाश नाइ' में चूरचूर होकर बिखरे आइने की तरह का आकाश है और 'लेखा' के स्वतंत्र व्यक्तित्व पर बीत गए जमाने के सामाजिक संस्कार और सम्मिलित परिवार की मानसिकता के शिकंजो का एहसास भी।

दो प्रेमी और एक प्रेमिका के शाश्वत त्रिकोण की प्रेम कहानी 'यही सच है' भी खासी रूमानियत से शुरू होती है और भावना की विजय पर समाप्त। क्षण ही सत्य है की वृत्ति को आप विवेकसम्मत तो शायद ही कहें, वह भी भावुकता का ही बहाव लगती है। [53] पर वह अस्तित्ववादी चिन्तन,क्षण का महत्व, आत्मेच्छा के प्रकटीकरण का प्रभाव है। जिसकी विवेचना प्रारंभिक वर्णन में उपलब्ध है। मन्नू भण्डारी ने नारी-जीवन के विविध पक्षों का कलात्मक निरूपण किया है। चाहे वह **'अकेली'** कहानी की सोमा बुआ हो , **'नई नौकरी'** की नायिका 'रमा' हो, **'एक कमजोर लड़की की कहानी'** की पात्रा 'रूप' हो या **'यही सच है'** कहानी की 'दीपा' नायिका हो।

3.16 कृष्णा सोबती (1925) : अपनी लम्बी कहानी 'मित्रो मरजानी'(इसे लघु उपन्यास भी कहते हैं) के प्रकाशन के साथ हिन्दी-कथा साहित्य में सहसा चर्चित हो उठी थी। 'मित्रो' के रूप में 'हिन्दी कहानियों में पहली बार एक ऐसे नारी पात्र की सृष्टि हुई है,जिसमें देहधर्म के उफनते ज्वार के सहज स्वीकार की संपूर्ण साहसिकता है। **'बादलों के घेरे'**(1980) आपका एक और कहानी संग्रह है। इसकी प्रायः सभी कहानियाँ 'नयी कहानी' के दौर की हैं। पर इन कहानियों में नयी कहानियों की रूढ़ियों का कोई प्रभाव नहीं है। आपकी कहानियाँ मानवीय मूल्यों के टूटने के दर्द की कहानियाँ हैं। परिवेश का यथार्थ चित्रण पंजाब की धरती की गंध और ऊष्मा तथा

पात्रों की खुली साहसिक मानसिकता आपकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। (54)

यारों के यार/तिन तहाड़' नामक दो कहानियों का संग्रह अपने कथ्य और शिल्प के अभिनव प्रयोगों, बेबाक बयान बाजी और स्त्री-पुरूष संबंधों के बीच कार्यालय में होनेवाली अश्लील टिप्पणियों और गाली-गलौज के कारण चर्चित हुआ था सातवें दशक में ही। कृष्णा सोबती ने 'प्रेम' और स्त्री-पुरूष संबंधों की विलक्षण कहानियाँ लिखी हैं। जिनमें 'बादलो के घेरे', 'कुछ नहीं- कोई नहीं', 'मित्रो मरजानी' और 'ऐ लड़की' महत्वपूर्ण हैं। कृष्णा सोबती की प्रेम संबंधी कहानियाँ अपने सारे रोमानी और भावुक मिजाज के बावजूद इस तथ्य को उद्घाटित करने पर बल देती हैं कि तन का धर्म मन के धर्म से अलग नहीं होता। 'बादलो के घेरे' कहानी तपेदिक की मरीज मन्नो हैं,उसका प्रेमी रवि उसके अभाव में स्मृतियों में चाहत लिए विवाहित होने के बावजूद सोचता है। पत्नी और बच्चे होने के बाद भी जैसे वह नितान्त अकेला है -वैसे ही जैसे कभी मन्नो थी।

बुआ भी मन्नो की विडम्बना को जानती थी xxx यही बार-बार सोचती हूँ कि जिसके प्यार को भी कोई छू न सके, ऐसा दुर्भाग्य उसे क्यों मिला ? (55) मन्नो के इस दुर्भाग्य में बुआ की भी कम भूमिका नहीं हैं कारण जब वह नैनिताल आयी थी तो उसे अलग कमरे में किराये के फर्नीचर लाकर एकाकी ठहराया गया था। खाना भी उसके कमरे में भिजवा दिया गया। पर रवि दोपहरी के एकान्त में झील के किनारे घूमते समय के रागात्मक क्षणों को विस्मृत नहीं कर पाया। बरामदे से सामनेवाले पाइंस देखकर रवि को अभी भी यह विश्वास ताकत देता है -आज वह होती तो मुझे झेल लेती। इस विश्वास को व्यक्त करके कृष्णा सोबती आखिरकार प्रेम की अव्यक्त शक्ति को ही व्यक्त करती हैं। जिसके अभाव ने मन्नो को मन्नो बना दिया और स्वीकार पाने के साहस के अभाव ने रवि को अव्यक्त चाहना, प्रेम की रिक्ततावाली जीवन पगडण्डी पर ढकेल दिया हैं। मित्रो सिर्फ सच बोलती है और सच के अलावा कुछ नहीं बोलती। यह अलग बात है कि ढ़ांक-तोप कर चीजों को रखने में विश्वास करने वाली हमारी सामाजिक संरचना में मित्रों का बोला गया सच औरों को झूठा और नंगा करने लगे।

अपने 'राह-कुराह' पड़ने का सच बिना किसी झिझक और हचकिचाहट के ,जिठानी से उगलते हुए कहती है, 'सात नदियों की तारू ,तवे सी काली मेरी माँ और मैं गोरी-चिट्टी उसकी कोख पड़ी। कहते हैं इलाके के बड़भागी तहसीलदार की मुंहादार है मित्रो। अब तुम्ही बताओ जेठानी,तुम जैसा सत-बल कहाँ से पाऊँ,लाऊँ ?देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता बहुत हुआ हफ्ते-पखवारे....और मेरी इस देह में इतनी प्यास है कि मछली-सी तड़पती हूँ ।"(56)अपनी मसखरी बोली,ठिठोली और शोखी से मित्रो अपने मन में छिपी पीड़ा को व्यक्त करती है, लेकिन उसकी सच्ची और खरी बातों का सुनने का ताब किसी में नहीं है। वह अपनी जिठानी से पूछती है, 'मैं इसलिए नही सुहाती न कि अंग-अंग से पूरी हूँ।' जब

जिठानी के पांव भारी होने की खबर सास,हौस के साथ, ससुर को देने जाती है तो मित्रो अपने से ही सवाल करती हैं, 'जिद-जान का यह कैसा व्यापार ? अपने लड़के बीज ड़ाले तो पुण्य और दूजे ड़ाले तो कुकर्म।"[57]

कृष्णा सोबती ने अधिकतर लम्बी कहानियाँ लिखी हैं, लघु उपन्यास की सीमा तक लम्बी। सुधी जन जानते है कि कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी'स्त्री-विमर्श के एक ऐसे जीवन्त को पेश करती है जो स्त्री-मुक्ति के बौद्धिक और किताबी आन्दोलन की पोल खोलती हुई अपनी मिट्टी से अपने रिश्ते के कारण इतनी जीवन्त और हाड़-मांस की सचमुच स्त्री लगती हैं।

मित्रो को अपने रूप पर गर्व है और उसका सबसे संगीन जुर्म ही यह है कि वह बिना किसी ढोंग और लिहाज के अपनी देह के वैभव और उसकी जैविक जरूरतों के प्रति मुखर है। [58] वह खुद अपने को 'दरिआई नार' कहती है और उसकी पीड़ा का मुख्य कारण ही यह है कि उसका 'मर्दजना' जानता ही नहीं यह किस गुर से काबू में आती है। जिठानी जब उसे अपने मर्द की बात मान लेने की सलाह देती है तो मित्रों आँखे चमकाकर कहती है, 'अरी मेरी सयानी जेठानी तुम क्या जानो यह किस्से प्रीतिप्यार के।' [59]उसकी मुँहफट बात जेठ में सुनने की ताव न होने से वह अपनी पत्नी को उसे अपने कमरे में सुला लेने को कहकर सामने से हट जाता है। मित्रो जिठानी से कहती है, 'बुरे माधेवाले! मर्दजन होते तो या चटखारे ले-ले मुझे चाटते या फिर शेर की तरह कच्चा चबा डालते। मित्रो इसीलिए 'मरजानी' है क्योंकि उसके पास उसकी देह की इलाही ताकत है और जब तक यह है, वह मरने वाली नहीं। [60]

पति उसे 'फरेबन' मानता है और उसकी शोखी एवं ठस्से को झेलने की ताव उसके पास नहीं है। जब सास रसोई में काम करती मित्रो को गौर से देखती हुई उसके ढीले कुरते और दुबली देह पर नजर डालकर उससे कारण जानना चाहती है तो मित्रो तेज नजरों से उसे देखते हुए चूल्हे पर उफनते दूध पर पानी का छींटा मारकर जैसे अपने दुबले होने का संकेत दे रही होती है। जब माँ बड़े बेटे बनवारी से सरदारी के संग -सेहत के बाबत पूछती है तो वह मित्रो को 'जरनैली नार' बताता है जो किसी छोटे-मोटे आदमी के बस की नहीं। [61] जिठानी की तरह उसकी अपनी कोख भी खुलने और इस आंगन में सात-सात बेटे खेलने की सास की बात पर वह उसी कटुता से कहती है, 'पाँच-सात क्या

मेरे तो सौ-पचास होंगे। मेरा बस चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ,पर अम्मा,अपने लाड़ले बेटे का भी तो आड़-तोड़ जुटाओ ! निगोड़े मेरे पत्थर के बुत में कोई हरकत तो हो। [62] चाहे सास धनवंती हो या जेठ बनवारी और जिठानी सुहागवंती -मित्रो की बात सुनकर किसी के बदन में काँटे उगते हैं, कोई अपने कान को हाथ लगाता है, कोई परमात्मा का वास्ता देकर उससे चुप हो जने की मिन्नत करता है और जब कुछ वश नहीं चलता तो राह बचाकर सामने से हट जाता है। ये जैसे परंपरा संरक्षित

समाज के विभिन्न रूप हैं जो ढोंग और सच को छिपाये जाने को ही नैतिक मूल्यों की मर्यादा की हैसियत देकर उन्हें स्वीकारता रहा है। मित्रो समाज के इसी संरक्षित रूप के आगे बड़े और असुविधाजनक सवाल की तरह खड़ी है।

3.17 उषा प्रियंवदा : (1931) 'नयी कहानी के दौर की बहुचर्चित कहानीकार हैं। आपकी कहानी 'वापसी' एक समय आलोचकों के मन-मस्तिष्क पर छा गयी थी। इसमें अवकाश ग्रहण करने के बाद गजाधरबाबू का अपने ही घर में फालतू या पराया हो जाने का बोध और उससे उत्पन्न पीड़ा ने पाठकों को विचलित कर दिया था। यह प्रश्न तो बाद में उठा कि यह अकेलापन अस्तित्ववादी ,भाववादी है या मार्क्सवादी ? आपके कई कहानी संग्रह **'जिन्दगी और गुलाब के फूल'** (1961), **'फिर बसन्त आया'** (1961), **'एक कोई दूसरा'** (1972) , **'कितना बड़ा झूठ'** (1972) प्रकाशित हैं। आपकी अधिकांश कहानियाँ ऐसी शिक्षित युवतियों की कहानियाँ हैं जो स्वच्छंद और आकुण्ठ जीवन व्यतीत करने के सपनों को लेकर विदेशों में जाती हैं, किन्तु वहाँ की उपभोगवादी संस्कृति से टकराकर उनके सपने टूट जाते हैं और उनकी जिन्दगियाँ त्रासदी में बदल जाती हैं।

उषा प्रियंवदा ने भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति की टकराहट को केन्द्र में रखकर जीवन-मूल्यों की संक्रमणता को केन्द्रीय विषय वस्तु बनाकर कहानिया लिखी है। उनमें से कुछ कहानियों में विदेशी पात्र या विदेशी संस्कृति परिवेश की झलक है। और कभी-कभी पात्र सभी भारतीय हैं मात्र परिवेश और पृष्ठभूमि विदेशी हैं। "मछलियाँ' की बिजी और 'शेष यात्रा' की अनु की तरह उषा प्रियंवदा की नायिकाएँ प्रायः ही परिवार का विरोध झेलकर अपने सहःविवाहित पति या प्रेमी के साथ या फिर उसके आमंत्रण पर वहाँ पहुँचती है। दो सभ्यताओं संस्कृतियों की मुठभेड़ प्रायः उन्हें शॉक देती है जिससे उनका वैचारिक संतुलन बिगड़ जाता है। यही 'मछलिया' कहानी का केन्द्र बिन्दु है। जिसे विजय लक्ष्मी औार मनीष के माध्यम से रेखांकित किया गया है।

'हिन्दी कहानी का सफरनामा' में धनंजय वर्मा ने भी स्वीकारा है कि उषा प्रियंवदा की कहानियाँ (एक कोई दूसरा) देख लो। विदेशी पात्र,पूरी सेटिंग विदेशी, लेकिन उनके पीछे धड़कता हुआ वही भारतीय मानस है, भारतीय कुण्ठाएँ और अभिज्ञताएँ है, क्योंकि आप अपने संपूर्ण अस्तित्व की इकाई को नकार सकते है, उसके समस्त सामाजिक संदर्भ से एकदम कैसे कट सकते हैं। [xxx] वह देवयानी जो भारतीयता को अपने व्यक्तित्व से अलग नहीं फेंक पाती, विदेशी परिवेश में एक अन्तर्द्वंद्व और व्यवस्थित न हो सकने की पीडा लिए हुए है, वह उद्वेलन और वह मानसिक तनाव मगर औस्कर (पति) की अनुपस्थिति में जब यास्पर उससे कहता है- शायद औस्कर को पता नहीं है कि तुम उसे कितना मिस करोगी'- और साथ ही यह कि , 'मैं भी अपनी 'गर्ल' को छोड़कर आया हूँ, मेरे आते समय बहुत रो रही

थी, पर -अब तक उसने दूसरा फ्रेण्ड ढूँढ़ लिया होगा! (क्या यहाँ यह बताने की जरूरत है कि यह दो विभिन्न संस्कारों का द्वंद्व है) तब देवयानी पर जो प्रतिक्रिया होती है वह (-यास्पर,यास्पर ! देवयानी ने एकाएक चीखती हुई आवाज में पुकारा !....भागकर आया यास्पर कमरे की दहलीज पर ठिठक गया ! अर्ध अनावृता देवयानी ने उसके गले में अधीर बाँहे डालकर अपनी ओर खींच लिया।) क्या यह संकेत नहीं करती कि देवयानी ने अपने 'आचरण'को भले बदल दिया हो, मगर उसका 'मानस' नहीं बदला है। या फिर 'चांदनी' में बर्फ पर' -भारतीय पत्नी (कल्याणी) के विलोम में विदेशी पत्नी (मेरी) को रखा गया है। एक अपने भूतपूर्व प्रेमी का भी आमंत्रण अस्वीकार करती है, दूसरी अपने नए 'फ्रेण्ड' के साथ निस्संकोच, निर्द्वंद्व आगे बढ़ जाती है और हेम (भारतीय पति) संस्काराविष्ट, उस द्वंद्व का भोक्ता बनता है। वह अक्षय हो या तंत्री त्रिपाठी या फिर नमिता, अमृता और नीलांजना, एक मुक्त और स्वतंत्र-स्वच्छंद वातावरण में भी अपने बद्धमूल भारतीय संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाते। (64)

भारतीय जन-जीवन के अनुकूल उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी अधिक महत्वपूर्ण हैं जिसमे गजाधरबाबू आजीवन रेलवे में नौकरी करते हुए रिटायरमेण्ट के बाद सुखी जीवन की कामना करते हैं। पर सेवा निवृत्ति के बाद घर में पत्नी और सन्तान से यथोचित सम्मान और अपनत्व नहीं मिल पाता हैं। वे पुनः किसी मिल की नौकरी के लिए प्रस्थान करते हैं। जो हताशा,अलगाव बोध और तनाव का मसला हैं।

प्रायः हमारे यहाँ माना हुआ सत्य है कि भाई अपनी बहनों से उतना प्यार नही करते, जितना बहनें अपने भाइयों से करती हैं। परन्तु युद्ध की विभीषिका, दिनों दिन बढ़ती कीमतें और देश-विभाजन के बाद जब लड़कियाँ नौकरी करने लगीं तो वे न केवल आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी हुई, वरन माता-पिता और छोटे भाई-बहनों की गार्जियन बनी। घर में उनकी स्थिति अनायास बदल गई। अब बेरोजगार भाई के लिए उसका व्यवहार ऐसा उपेक्षापूर्ण हो गया, जैसा पहले कभी भाई का बहन के प्रति था। (65) नौकरी पर लगी बहन द्वारा बेकार भाई की चीजों पर धीर-धीरे अधिकार करने का इतना विशद चित्रण उषा जी ने किया हैं कि लगता है अब लड़कियाँ अबला नहीं रहीं, सबला हो रही हैं जुल्म सहने वाली ही नहीं जुल्म करने वाली भी हो रही हैं।

पुरूषप्रधान समाज में पुरूष का वर्चस्व स्वाभाविक हैं। पर आर्थिक स्वावलंबन के चलते स्त्री वर्ग भी कम धौस नही जमाता है। प्रसंगवश जब तक सुबोध कमाता था,परिवार का संचालन उसी के हाथ में था। किन्तु जब से वह बेकार है, और बहन कमाने लगती है तब से उसका स्थान छोटी बहन वृन्दा लेती है। एक दिन शाम को घर लौटकर सुबोध देखता है कि उसके कमरे के मेज और कालीन वृन्दा के कमरे में पहुँच गये हैं। एक बेकार पुरूष के स्वाभिमान को चोट पहुँचाने के लिए इतना पर्याप्त है-'उसकी सारी चीजें वृन्दा के कमरे में जा चुकी थीं पर अब वह अभ्यस्त हो गया

था उसका पुरूष हृदय घर में वृन्दा की सत्ता स्वीकार न कर पाता था। (66) कमाने वाली बहन का भाई के प्रति पूर्व स्नेह भी टूट जाता है। भाई को परिवार का अवांछित बोझ मानकर बहन उसकी उपेक्षा करने लगती है। पुत्र को प्यार करने वाली माँ भी बेटी का पलड़ा भारी देखकर चुपचाप बेटी के निर्णय में शरीक हो जाती है। यदि संयोग से पुरूष बेकार हो तो उसके प्रति नारी की संबंधहीनता बडी गहरी होती है।

प्रस्तुत कहानी में आर्थिक धरातल पर उभरने वाले नए पारिवारिक संबंधों का यथार्थ चित्रण हुआ है। वृन्दा के माध्यम से पुरूष प्रधान समाज में नारी की उस सत्ता का बोध कराया गया हैं, जिसके अर्थोपार्जन करते ही पुरूष की प्रधानता कुछ विचलित सी होने लगती हैं। आज का समाज न तो पुरूष प्रधान हैं, न नारी प्रधान ,वह है मात्र अर्थ-प्रधान। यहाँ सत्ता उसी की चलती हैं जो कमाता हैं। जिन्दगी गुलाब के फूल की भाँति सुंदर और प्यारी तभी हो सकती है,जब वह अर्थ से सींची और संवारी जाये। (67)

उषा प्रियंवदा की कहानियाँ अनुभव की विपन्नता की कहानियाँ नहीं हैं। जैसा कि मधुरेश ने कहा है कि वे कदाचित अकेली लेखिका है जिसमें 'प्रेम' और 'स्त्री-पुरूष' संबंधों पर अनेक वृतों,आयामों में कहानियाँ रची हैं। उषा प्रियंवदा के प्रेम संबंधों में देह के नैतिक व अनैतिक रिश्तों के चित्रण में कोई गुरेज या मतभेद नही हैं। 'कँटीली छांह' की रानी अपने माता-पिता और मुहल्ले-पडोस के सारे लोगों द्वारा कंपाउंडर की पत्नी राधा और मास्टर साहब को लेकर थू-थू के बाद भी इसे मानने से इनकार कर देती है कि मास्टर साहब ने कोई पाप किया है। चालीस वर्ष की उम्र में किये विवाह की जो परिणति रानी ने देखी हैं, उसके सबब से वह मास्टर साहब के प्रति कठोर नही हो पाती हैं। जब सब लोग मास्टर साहब को लेकर चेमेगोईयाँ कर रहे होते हैं, वह सबकी आँख बचाकर उनके कमरे में पहुँचती है और उसमें ताला पडा देखकर उसे गहरी निराशा होती है। लेकिन तुरंत ही वह निराशा एक अंतरंग सद्भावना में ढ़ल जाती हैं, मास्टर साहब चले गये ,रानी सोच उठी, वह तो उनसे कहने आई थी कि मास्टर साहब चाहे कोई कुछ कहे, मेरे लिए आप उतने ही आदर के पात्र हैं। जीवन की राह पर चलते हुए यदि कोई राही किसी पेड़ की छांह में खड़ा हो जाए तो मैं उसे बुरा नहीं समझती क्योंकि मैंने जाना है कि सुख क्या हैं....।(68) कहना न होगा कि ये सारी सद्भावना रानी की उम्र के अनुरूप ही भावुकता से अछूती नहीं है और कहानी पर अतिरिक्त रूप से आरोपित होकर आयी हैं। पर उषा प्रियंवदा के नैतिक साहस ,स्त्री-पुरूष संबंधों के बेबाक चित्रण की सराहना करनी चाहिए कि उसने तथाकथित वर्जनाएँ नहीं पाली । सती-सावित्री नारी पात्रों का पाखण्ड सूर्यबाला की तरह नहीं रचा हैं।

3.18 फणीश्वरनाथ रेणु : फणीश्वरनाथ रेणु नयी कहनी के दौर में ग्राम-अंचल की विशिष्ट ,ताजी और जीवंत अनुभूति लेकर आनेवाले रचनाकारों में अन्यतम रहे हैं। अब तक आपके पाँच कहानी संग्रह ,

'ठुमरी' (1959), **'आदिम रात्री की महक'** (1967), **'अग्निखोर'** (1973), **'एक श्रावणी दोपहर की धूप'** (1984), **'अच्छे आदमी'** (1986) प्रकाशित हो चुके है। इनमें अंतिम दो आपकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए हैं। अब आपकी सारी कहानियाँ 'रेणु रचनावली' भाग-1 में प्रकाशित हो गई हैं। रेणु की ख्याति का आधार उनकी कहानी 'तीसरी कसम' उर्फ 'मारे गये गुलफाम' रही हैं। **रसप्रिया, ठुमरी, आग्निखोर, एक आदिम रात्रि की महक**,आदि कहानियाँ भी विशेष रूप से चर्चित हुई हैं। वस्तुतः रेणु को पूर्णिया जिले की भूमि के प्रति निश्च्छाठ और गहरा लगाव था। वे वहाँ के कण-कण को आत्मीय भाव से देखते थे। वहाँ के पशु, पक्षी, वृक्ष, पर्व, त्योहार, व्रत, संस्कार,गीत, कथा और इन सबके बीच अभाव से जूझते हुए अज्ञात, अंधविश्वास और अशिक्षा में जीते हुए लोग उनकी कहानियों में सजीव हो उठे हैं। (69) रेणु की कहानियों में परिवेश, कथ्य, पात्र की अनुषंग रूप में सहचर रूप में सक्रिय रहता हैं।

नरेन्द्र मोहन का भी अभिमत रहा है कि फणीश्वरनाथ रेणु कहानी की'तीसरी कसम' में ग्राम जीवन का जैसा जीवंत, सहज और सजीव चित्रण हुआ है वह ग्राम जीवन की करूणा को उभार देता हैं। आगे चलकर मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, रामदरस मिश्र, लक्ष्मीनाारायण लाल, शैलेश मटियानी ने इस ढंग की कहानियाँ लिखकर आँचलिक कहानियों के अनुभव के संसार को समृद्ध किया।(70) मधुरेश का प्रासंगिक मत है कि प्रेम संबंधों को आधार बनाकर रेणु की कहानियों की चर्चा खूब हुई हैं। 'तीसरी कसम' अर्थात 'मारे गये गुलफाम'
रसप्रिया,और एक आदिम रात्रि की महक जैसी कहानियों ने अपनी ताजगी और नयेपन से बहुतों को अभिभूत किया है और उसकी सराहना में किसी कदर अतिरंजना से भी काम लिया गया है। (71)

कहना न होगा कि 'तीसरी कसम' कहानी में स्त्री-पुरूष संबंधों का अनभिव्यवत संबंध,पारस्परिक विश्वास, अनबूझ रोमांटिक भाव अपनी पूर्ण कलात्मकता औरा अर्थगर्भी संकेत में रूपायित हुआ हैं। वैसे भी रसप्रिया,और एक आदिम रात्रि की महक ,नैनाजोगिन की तुलना में 'तीसरी कसम' अर्थात 'मारे गये गुलफाम' कहानी में रोमांटिक आकर्षण अव्यक्त आसक्ति भाव ज्यादा मुखर और स्पष्ट हैं। (72) सामाजिक संदर्भों का एक बेहद क्षीण-सा तंतु ही इस कहानि को थामे दिखाई देता हैं। महुआ घटयारिन को सौदागर ने खरीद लिया और हीराबाई को कभी मधुर मोहन कंपनी के स्टेज पर, नाचना है तो कभी रोता कंपनी के स्टेज पर। हिरानन को बुरा लगता हैं जब तरह-तरह के लोग उसे 'रंडी' और 'पतुरिया' कहकर बुलाते हैं। लेकिन वह किस-किस से लडे ? कंपनी की औरत को घर ले जाकर बाकायदा बिठा लेने की बात भी उसकी कल्पना से परे हैं। जब घर में भाभी और गाँव में और दूसरे लोग नौटंकी देखने की सुन लेने भर से उसका जीना मुहाल कर सकते हैं। तो इससे आगे की बात तो शायद सोची भी नहीं जा सकती। और सचमुच हिरामन सोचता भी नही हैं। इन दृश्य-

अदृश्य सामाजिक दबावों को लेकर वह जरा भी परेशान नहीं दिखाई देता हैं। (73)

कहना न होगा कि हीराबाई के रूप-रस और गंध को जिस मोहक अंदाज में कहानी में बाँधा और उतारा गया हैं, सचमुच ही उसे एक परी या देवकुल की औरत बना कर,उसका वह मोहक अंदाज ही वस्तुतः उसकी रोमानियत के लिए भी जिम्मेदार हैं। उसके शरीर के विभिन्न अंगों के लिए लेखक एक बार फिर नये सिरे से रीतिकालीन उपमाओं को पुनर्जीवित करता दिखायी देता है ....'हीरामन परदे के पीछे से देखता हैं। हीराबाई एक दियासलाई की डिब्बी के बराबर आईने में अपने दाँत देख रही हैं। मदनपुर मेले में एक बार बैलों को नन्ही-चित्ती कौड़ियों की पांत। (74) लाल मोहर का नौकर लहसन व नौटंकी कंपनी में नौकर होकर अपने को धन्य मानता हैं। गाँव में आखिर रखा ही क्या हैं ? हीराबाई की साड़ी धोने के बाद कठौती का पानी अतर गुलाब हो जाता हैं। उसमें अपनी गमद्दी डुबाकर छोड़ देता हूँ। लो सूंधोगे ? (75)

आंचलिक प्रदेश की सादगी अंधविश्वास, लोक व्यवहार प्रेम की एक निष्ठता और नारी-सौन्दर्य के प्रेम लालसा का चित्रण हीरामन के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ हैं। वैसे 'तीसरी कसम' उर्फ 'मारे गये गुलफाम' इस ग्रामीण परिवेश की सामान्य सी गाथा है। हीरामन के साधारण जीवन में संवेदन की अभूतपूर्व घड़ी आई थी और उसका हृदय, उस स्मृति को संजोये आज भी पुलक अनुभव करता हैं, लेकिन उस पुलक में कहीं एक मीठी सी कसक भी हैं। कहानी की पूरी अन्तर्यात्रा में एक अनाम सी महक ,कोमलता और मिठास हैं लेकिन शेष हैं -'मरे हुए मुहूर्तो की गूँगी आवाजे, जो मुखर होना चाहती हैं।'

कथावस्तु के धरातलपरा शायद इसमें कोई भी असामान्यता नहीं हैं लेकिन फिर भी हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में इसकी गणना होती हैं,- इसका कारण रेणु का एप्रोच और निर्वाह हैं। यों यह ऐसे जीवन की घटनाओं और चरित्रों का चित्र है ,जिसके विश्वास पुरातन और रोमांटिक हैं, मगर यहाँ घटना और चरित्र गौण हैं ,उनकी आंतरिक संवेदनाएँ ही प्रमुख हैं। पूरी कहानी हीरामन के अकेलेपन की तीव्रतम अनुभूति को सध्वनित करती है -मेले में,अपने साथियों के बीच और लौटती हुई सडक पर वह एक ,रिक्तता से भरा है -'जारे जमाना' दुहराता हुआ, अपने अतीत से कटना चाहकर भी बार-बार वह वहीं लौट जाता है, उस एक बिन्दु पर जहाँ उसकी रिक्तता का कोष हैं। अपने परिवेश के भीतर चरित्रों की छोटी-से-छोटी प्रतिक्रिया को एक सम्पृक्त आत्मीयता और रागात्मक तल्लीनता से रेणु ने अभिव्यंजना प्रदान की हैं। (76) **'नैना जोगिन'** कहानी में नारी अस्मिता के सूत्र परिव्याप्त हैं तो **'एक आदिम रात्रि की महक'** में स्त्री-पुरूष पात्रों में स्वाभाविक यौन आकर्षण को रेखांकित किया गया है।

आंचलिक कहानी आन्दोलन नयी कहानी आन्दोलन का सहवर्ती आन्दोलन रहा हैं। शहर बनाम ग्राम, संवेदना बनाम बौद्धिकता, रागात्मक

बोध बनाम अलगाव बोध तत्व इसके अधिक सक्रिय हैं। फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, धर्मवीर भारती, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी आदि कहानीकारों ने ग्रामीण आंचलिक परिवेश में उभरते नारी रूपों को चित्रित किया हैं। किन्तु विज्ञान के बढ़ते चरणों, राजनीति का विस्तार,ग्राम विकास की सरकारी नीतियों के परिप्रेक्ष्य में आये अधिकारियों का ग्रामीण क्षेत्र में कार्य,दूरदर्शन का प्रसार आदि ने ग्रामों में परिवर्तन उपस्थित किया। वहाँ के लोगों में जागरूकता बढ़ाई। नारी अब वहाँ सिर्फ शोषण में दबती,अंधविश्वासों में डूबती उतराती नारी नहीं हैं। उसके भी सोचने का ढंग अब बदल चुका हैं। वह भी नारी स्वातंत्र्य की अलख जगाती हैं। अपनी टूटी-फूटी अनपढ़ समझ के आधार पर ही वह अपने दिल की बात जुबान पर लाती हैं।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' मिनख खोरी कहानी की हुकी कहती है -'सच तुझे एक भेद की बात बताती हूँ ...घणे सारे मरद पति बनते ही जानवर हो जाते हैं। मैं तो कहती हूँ कि लुगाई को घरवाली बनना ही नहीं चाहिए, घरवाली बनते ही वह लुगाई से जूती बन जाती हैं। (77) क्योंकि वह इस वास्तविकता से परिचित हैं कि प्रेम विवाह से पूर्व ही रहता है पति होते ही वही शख्स तड़ातड़ बेंत से पीटता हैं। हुकी को अपने स्वातंत्र्य के साथ-साथ जीवन को अपने ढंग से जीने की अदम्य आकांक्षा है। वह विठला से कहती है -विठला यह मरद, जात है, यह खाली लुगाई को नफे के लिए ही काम में लाना चाहती हैं, बड़ी कुत्ती है यह मरद जात, लुगाई को झाड़ू से लेकर बिस्तर तक तो बना सकती है पर उसे हवा और धूप नहीं बनने देती ,पर मैं हवा और धूप बनकर जिन्दा रहना चाहती हूँ। (78) अस्तित्व के प्रति यह सचेतनता के साथ-साथ ग्रामीण परिवेश की नरियों का वर्ग भी है जो परिस्थितियों के प्रति वशीभूत होकर शहर में रहकर मजूरी करती है, क्योंकि जिन्दगी जब तक हैं, ढ़ोनी ही पड़ेगी।

आंचलिक कहानी आन्दोलन ने ग्रामीण जीवन में परिव्याप्त मानवीयता, करूणा, सहधर्मिता आदि की भावना को रेखांकित किया हैं। जिसका दिग्दर्शन हम रेणु कृत 'लालपान की बेगम'कहानी में देख सकते हैं। धनंजय वर्मा ने भी अकहानी आन्दोलन' के लेखकों रेणु, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'और शेखर जोशी के कृतित्व की हिमायत करते हुए कहा है कि - नए और पुराने मूल्यों के संघर्ष और पुराने से नये के संक्रमण की अपेक्षा कृत जितनी आकस्मिक गति इन ग्रामों में मिलती हैं,उतनी अन्यत्र नहीं, क्योंकि ग्राम में कोई नया परिवर्तन पुरातन मूल्यों की आमूल टूटन से संबंध होता हैं। संक्रमण की स्थिति में तो परिवर्तन होते चलते हैं और उसके साथ ही व्यवस्थापन भी होता रहता हैं। इसलिए यदि नये कहानीकारों का एक वर्ग, जिसका प्रतिनिधित्व रेणु और मार्कण्डेय करते हैं, इन ग्रामों की ओर गया है तो उसे केवल फैशन या व्यवसाय का तकाजा नहीं माप लेना चाहिए। हाँ,फैशन और व्यवसाय के तकाजों को पूरा करनेवाले लोगों से उन्हें अलग अवश्य करना होगा। (79) कथा साहित्य की

आलेचना से सरोकार रखने वाले समीक्षकों एवं पाठकों को अपनी बेबाक अभिव्यक्ति रचनी होगी।

रेणु की प्रेम कहानियों में विशेषकर स्त्री-पुरूष संबंधों के अभूतपूर्व प्रसंग विवेचन में हम उनकी 'नैना जोगिन' कहानी को रेखांकित करना चाहेंगे। जिसमें एक सम्पूर्ण स्त्री-रतनी-कदाचित पहली बार अपने स्त्री होने का अधिकार मांगती है बड़े चुनौती भरे और आक्रमक ढंग से मेरा क्या कसूर जो बारह साल से वनवास दिए हुए हैं आप लोग । उस बूढ़े की करनी का फल चखाया तो क्या बेजा किया ? मैं उस समय उसकी पोती की उम्र की थी। सो आप लोगों ने हम लोगों को 'रंड़ी' से बदतर कर दिया ! मैं जवान हुई, आप लोगों ने आँख उठाकर कभी देखा नहीं कि आखिर गाँव-घर की एक लड़की ऐसी जवान हो गयी और शादी क्यों नहीं होती ? अब इस बार आये है तो कभी आपके मय यह नही हुआ कि रतनी की शादी को ढ़ाई साल हो रहे है और रतनी को बच्चा क्यों नही हुआ ? [80] रतनी को देखकर यह समझ सकना मुश्किल नही होता हैं कि दूसरों के कारण भोगी हुई पीड़ा का विस्फोट कैसे सात्विक आवेश को जन्म दे सकता हैं ऐसी पीड़ा का एक अलग तेज होता है जो अश्लीलता को गला देता हैं।

यह विवाद का विषय हो सकता है कि "विशुद्ध रूप से रेणु एक आंचलिक कथाकार हैं भी या नहीं। लेकिन ऐसे विवादों की सार्थकता को लेकर कोई अंतिम फैसला दे पाना किसी कदर मुश्किल ही हैं। वैसे भी रागों को परिशुद्धता की तरह रेणु किसी भी क्षेत्र में विशुद्धता के बहुत कायल कभी नही रहें। तथाकथित परिशुद्धता की विडम्बना को शायद वह गहराई से समझ सके थे, इसलिए उस ओर उनका कोई आग्रह भी नही दिखाई देता हैं।" [81] उन्होंने नेपाली क्रांति के संदर्भ में राजनीतिक चेतना की कहानियाँ भी लिखी हैं। प्रस्तुत संदर्भ में निर्मल वर्मा का वक्तव्य देखा जा सकता है, 'रेणु का स्थान यदि अपने पूर्ववर्ती और समकालीन आँचलिक कथाकारों से अलग और विशिष्ट है तो वह इसमे है कि आंचलिक सिर्फ उनका परिवेश था, उसके भीतर बहती जीवन धारा स्वयं अंचल की सीमाओं का उलंघन करती थी। रेणु का महत्व उनकी आंचलिकता में नहीं, आंचलिकता के अतिक्रमण में निहित है। बिहार के एक छोटे भूखंड की हथेली पर उन्होने समूचे उत्तर भारत के किसान की नियति रेखा को उजागर किया था। इस कथन की अतिरंजनाओं को बचाकर भी रेणु के महत्व को आसानी से समझा जा सकता है। [82] फिर भी वे हमारे आंचलिक कथा लेखन के मुकुटमणि हैं।

3.19 मार्कण्डेय : मार्कण्डेय प्रगतिशील चेतना के प्रखर पक्षधर और ग्रामीण चेतना के सशक्त रचनाकार हैं। 'नयी कहानी' के दौर में ही मार्कण्डेय ने नयी ग्रामीण जीवन-व्यवस्था तथा उससे उत्पन्न मानसिकता के प्रति अपनी तीखी आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय दिया था। आपके कई कहानी संग्रह

'पान फूल'(1954), **'पत्थर और परछाइयाँ'** (1956), **'महुए का पेड़'**(1957) , **'हँसा जाई अकेला'** (1957), **'मूदान'** (1958), **'माही'** (1962), **'बीच के लोग'** (1975),प्रकाशित हैं। वे सामाजिक विषमता और विसंगति के चित्रण तक ही अपने को सीमित नहीं रखते। वे बेहतर समाज के निर्माण के लिए क्रांतिकारी बदलाव में विश्वास रखते हैं। इसलिए वे यथास्थिति वाद के समर्थकों का खुल कर विरोध करते हैं। वर्तमान दौर में जनवादी कहानी लेखक मार्कण्डेय को जनवादी कहानी -परंपरा को समृद्ध और विकसित करने वाले रचनाकार के रूप में देखते हैं। (83)

आंचलिक कहानी आन्दोलन में मार्कण्डेय एक सजग ,समर्पित रचनाकार ही नहीं हैं बल्कि 'कहानी की बात' लिखनेवाले'चर्चित एवं स्पृहणीय आलोचक भी हैं। नयी कहानी आन्दोलन के बरक्स उसी दौर में मार्कण्डेय ग्राम कहानी /आंचलिक कहानी के प्रवक्ता और सूत्रधार बनकर आते हैं। ग्राम कथानकों को रेखांकित करते हुए उन्होंने आंचलिक रचनाओं के शिल्प सौन्दर्य के लिए ,आग्रह रचा -"वास्तव में कहानी के सामने अभिव्यक्ति अथवा शिल्प की बारीक पैठ के साथ ही मुख्य बात है जीवन की उभरती हुई वास्तविकताओं को उसके पूरे परिवेश के साथ ग्रहण की। प्रेमचन्द और यशपाल के बाद फीकी उदास और मरणोन्मुख कहानी को इसी ग्रहणशीलता ने बचाया है,और कहना नहीं होगा कि कहानी को सशक्त साहित्य विधा के रूप में एक बार फिर विचार-विमर्श का केन्द्र बना देने का श्रेय इसी नवीन ग्रहणशीलता के साथ आये ग्राम कथानकों को है। (84)

मार्कण्डेय ने बहुत तीखे स्वर में 'नयी कहानी' आन्दोलन के उन रचनाकारों की भर्त्सना की जो चेखव की व्यथा और ओ.हेनरी की जड़ी-बूटी को लेकर हलकान थे। (यहाँ मर्कण्डेय का इशारा राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर की ओर रहा हैं) विषय-कथ्य की प्रस्तुति में पुरानी पीढ़ी के अज्ञेय,जैनेन्द्र और यशपाल को खारिज कर रहे थे जो- कहानियों के गढ़े हुए निष्कर्षों और जीवन के सीधे साक्षात्कार के बजाय अवधारणाओं के आधार पर कहानी लिख रहे थे।

मार्कण्डेय ने 'पान फूल' (1954) कहानी संग्रह हैदराबाद के बदरी विशाल जी को समर्पित किया था। जो 'कल्पना' पत्रिका के संस्थापक रहे हैं। (85) कहना न होगा कि 'पान फूल' के बाद 'महुए का पेड़' से लेकर 'बीच के लोग' तक मार्कण्डेय की कहानियों में अपने समय - संदर्भो के प्रति सजगता क्रमशः विकसित होती देखी जा सकती है। इन कहानियों के आधार पर स्वाधीनता के बाद के गाँवों की एक प्रामाणिक और अंतरंग दुनिया से साक्षात्कार किया जा सकता है। परिवेश के प्रति गहरे लगाव के बावजूद मार्कण्डेय की ये कहानियाँ उस अर्थ में आंचलिक नहीं हैं जिस अर्थ में रेणु की कहानियों को आंचलिक कहा जाता रहा है। इन कहानियों में परिवेश कहीं एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में अंकित नहीं है -वह सिर्फ पृष्ठभूमि के रूप में अंकित है। 'महुए का पेड़', 'कत्यागमन', 'हंसा जाई अकेला', 'सहज और शुभ' तथा 'मधुपुर के सिवान का एक कोना' आदि

'मधुपुर के सिवान का एक कोना' आदि कहानियों में परिवेश के प्रति एक गहरी रागात्मक संपृक्ति देखी जा सकती है, लेकिन फिर भी परिवेश की अपेक्षा उनमें चरित्र अधिक महत्वपूर्ण है। (86)

मार्कण्डेय ने ग्रामीण जीवन-संघर्ष के स्त्री-पुरूष जीवन के विभिन्न सन्दर्भो को समसामयिक समस्याओं से जोड़कर लिखा है। मार्कण्डेय की भूदान नए विकास के स्वप्न-भंग की कथा है जिसमें ग्राम का पुराना शोषक वर्ग अपने संकुचित न्यस्त स्वार्थों के कारण आज भी साधारण किसानों के अभावग्रस्त जीवन और उनकी ट्रजेड़ी का उत्तरदायी है। रामजतन भूदान को लेकर एक स्वर्णिम भविष्य की कल्पना करता है, लेकिन ठाकुर के जिस दान से उसे भूमि मिलती है वह तो केवल पटवारी के कागज पर थी। असल में तो वह कबकी गोमती के पेट में चली गयी। इस कहानी में एक राजनीतिक पक्षधरता का रूप सामने अवश्य आता है जिसमें कोई भी जागरूक लेखक बच नहीं सकता, लेकिन यह पक्षधरता केवल इसी अर्थ में है कि वह एक व्यापक अनुष्ठान भूदान आन्दोलन की व्यावहारिक परिणति को उजागर करता है। वह इस आन्दोलन की आलोचना नहीं है, उसका निहित व्यंग्य तो उस शोषक वर्ग पर है जो इस तथाकथित समाजवादी व्यवस्था में आज भी अपने हाथ-पैर फैलाए हुए हैं। ग्रामीण चरित्रों के सहज विश्वास और मानवीय आस्था के विपरीत उस वर्ग की कुटिल नीतियों की यह कहानी उन ग्रामों की वास्तविकता उभारता है, जिन्हें सामान्यतः ढ़ोल-मजीरे की धुनों पर गूँजते लोकगीतों की भूमि माना जाता है। यह स्वप्न-भंग और कटु-तिक्त यथार्थ का चित्र अवश्य है लेकिन इसमे कुछ भी आरोपित नहीं हैं। कहानी की 'फ्लैटनैस' संवेदना और रचना दोनों स्तर पर हैं और उसकी नाटकीयता को नकारा नहीं जा सकता -भले यह वास्तविकता रचना के धरातल पर ही ग्रहण की गई हो। (87)

लेकिन भूदान तक मार्कण्डेय की कहानियों से एक शिकायत यह की जाती रही और वह किसी हद तक उचित भी थी कि उनमें एकरसता है। उनकी सारी कहानियाँ मिलकर गाँव का एक ही तरह का चित्र बनाती हैं। उनमें विविधता नहीं हैं,जैसी कि फणीश्वरनाथ रेणु में हैं। दरअसल मार्कण्डेय की कहानियों की एकरसता वस्तु की भी एकरसता थी या है। उनके संग्रहों के नाम गिनाने के लिए गाँवों से हटकर कुछ कहानियाँ जरूर मिल जाएगी लेकिन कुल मिलाकर मार्कण्डेय ने गाँव की कहानियाँ ही लिखी हैं। 'माही' इससे कुछ अलग हटकर हैं। उसमें न ग्रामीण वातावरण है, न चरित्र और न प्रसंग ! उसकी विज्ञप्ति में कहा गया हैं कि "उभरती हुई नई सच्चाइयों के सन्दर्भ में रागात्मक सम्बन्ध का जो रूप इन कहानियों में चित्रित है, उसी को दृष्टि में रखकर इन्हें एक जगह प्रकाशित किया जा रहा हैं। कथावस्तु या अन्य प्रतिमानों के प्रति लेखक का न तो कोई आग्रह हैं, न दावा। (88)

मार्कण्डेय ने सेक्स के 'फ्रस्ट्रेशन' को'सेमल के फूल'नामक लघु उपन्यास में किया ही साथ में 'माही' कहानी संग्रह की आठ में से छँह

कहानियाँ प्रकारान्तर से प्रेम की रूग्ण मनःस्थितियों और सेक्स फ्रस्ट्रेशन से सम्बन्ध हैं। कहना न होगा कि संक्रान्तिकालीन रागात्मक सम्बन्धों का यह रूप बड़ा सतही और छिछला है। 'समसामयिक जीवन के पूरे विकास'और 'उभरती हुई नई सच्चाइयों के सन्दर्भ में व्यक्ति के रागात्मक सम्बन्धों का रूप इससे अधिक संश्लिष्ट ,जटिल और गतिशील हैं और उसे केवल बौद्धिक स्तर पर जुगाली करके ही रचना नही की जा सकती। [xxx] मार्कण्डेय का परिवेश-बोध और संवेदना, सामाजिक जागरूकता का अधिक व्यापक और उपेक्षित क्षेत्रों में उपयोग ,'हिन्दी कहानी' को 'ग्रामोन्मुख' करने की पहल और नई ग्रहणशीलता, कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनसे मार्कण्डेय की कहानियाँ, नई कहानी की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ कही जा सकती हैं। यदि यह सच है कि भारत, ग्रामों में बसता हैं, तो भारत की आत्मा को न सही ,उसके बाह्य रूप और संस्कार को ही अभिव्यक्त करने का यह प्रयत्न कम महत्वपूर्ण नहीं है।

मार्कण्डेय की तरह शेखर जोशी भी आंचलिक ग्रामीण कथानक के सशक्त रचनाकार है। शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' में भी ग्रामीण आंचलिक परिवेश में प्रणय सम्बन्धों के टूटने का यथार्थ चित्रण है। गुसाई और लछमा एक दूसरे को चाहते थे, पर किसी कारण वश उन दोनों का विवाह नहीं हो पाता। गुसाई फौज से रिटायर होकर घर चलाता है। लछमा विधवा हो जाती हैं। दोनों के हृदय में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति एवं प्रणय की भावना विद्यमान है। गुसाई के वहाँ आटा पिसाने आने पर लछमा को वह दो-ढाई सेर आटा और दे देता है। प्रणय, सहानुभूति किन्तु अकेलेपन की नियति का यह द्वंद्व परिवेश के संदर्भ में और भी तीखा हो जाता है। 'घर के अन्दर' की काठ की चिडिया अब भी किट-किट आवाज कर रही थी, चक्की का पाट खिस्सर-खिस्सर चल रहा था और मथानी की पानी काटने की आवाज आ रही थी, और कहीं कोई स्वर नहीं, सब सुनसान निस्तब्ध। [(89)] शेखर जोशी ने तो आज की विसंगतियों में टूटे हुए लोगों का चित्रण किया है,तो ग्रामीण जीवन के नये-नये कोणों का अन्वेषण कर प्रेमचन्द की परम्परा को भी आगे बढ़ाया। [(90)]

नयी कहानी आन्दोलन के अन्तर्गत नगर, महानगरीय जीवन को रेखांकित करनेवाले रचनाकारों के बरक्स ग्रामीण-आंचलिक जीवन को 'समग्रता' में पेश करनेवालों के दोष कम सशक्त व प्रामाणिक नहीं रहे है।

3.2 अकहानी आन्दोलन और समांतर कहानी आन्दोलन

अकहानी आन्दोलन हिन्दी साहित्य के अकविता आन्दोलन की तर्ज पर रचा गया आन्दोलन रहा हैं। अकविता आन्दोलन में 'विजय' (गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार) सक्रिय रहे हैं। जो यूरोप के 'एण्ट्री पोएट्री' नीग्रो पोएट्री का समानांतर आन्दोलन रहा है। अकविता आन्दोलन के गंगाप्रसाद विमल और जगदीश चतुर्वेदी ने 'अकहानी आन्दोलन' के अन्तर्गत

अपनी रचनाओं में दमित कुण्ठाओं ,यौन-बुभुक्षा, कौमार्य-भंग, और सैक्स की भावनाओं को चित्रित किया हैं। 'अनुभूति की प्रामाणिकता और भोगा हुआ यथार्थ के आलोचनात्मक पदों को अपने हक में इस्तेमाल किया है।' (91)

अशोक भाटिया ने 'समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास'रचने के क्रम में स्वीकारा है कि नई कहानी के आधार जब नूतन परिवेश में लेखकों को अपर्याप्त प्रतीत होने लगे, तो उनमें से कुछ लेखकों ने 'अनुभव की प्रामाणिकता' का सूत्र अनुभव की निजता के अर्थ में बदल लिया। अकहानी आन्दोलन वस्तुतः तत्कालीन मूल्यों तथा कथाशिल्प दोनों के अस्वीकार का आन्दोलन है। सन् 1962 में चीनी आक्रमण के परिणाम स्वरूप हुए मोह-भंग का विशेष प्रभाव इनके अस्वीकार-बोध पर पड़ा है। यह आन्दोलन पैरिस के 'एंटी स्टोरी' का अनुकरण है। इसमें कहानी के 'शिल्पहीन शिल्प' तथा एक रूप पर अधिक बल रहता है। (92)

अकहानी आन्दोलन से प्रभावित दूधनाथ सिंह ने 'रीछ और रक्तपात' कहानियाँ लिखी। 'सपाट चेहरे का आदमी' कहानी संग्रह अकहानी आन्दोलन की प्रवृत्तियों से प्रभावित रहा हैं। मणिमधुकर ,महेन्द्र भल्ला और रमेश बक्षी की कहानियों में भी यौनकांक्षा,यौन तृष्णा और अजनबीपन की भावना पायी जाती हैं। (93) धनंजय वर्मा अकहानी के संदर्भ में 'छद्म बुद्धिजीवी वर्ग का हवाला देते हुए कहते है कि 'स्यूडोइन्टेलैक्युअल्स' की आमद कुछ बहुतायत से होने लगी है, जो अपने-आपको पराजित और कुछ पीढी या 'डिकेडेन्ट' संस्कृति का कहलाना पसन्द करते हैं। इनका समस्त दर्शन और यहाँ तक कि शब्द-विन्यास भी उधार लिए हुए फैशन की तरह इन पर हावी होता है। इनके आचरण और व्यवहार -चिन्तन और दृष्टि का धरातल भी अपने परिवेश और सन्दर्भ से इतना कटा हुआ होता है कि जब ये चलते-फिरते या बातें करते है, तो एक कौतूहल-मिश्रित आनन्द इन्हें देख-सुनकर जरूर होता है, लेकिन अपनी रचना या विचार से ये कभी भी आश्वस्त नहीं करते। बहुत जल्द इनके मूल संस्कार उभर कर सामने आ जाते है और कलई खुल जाती है। पुस्तके पढकर ये जीवन को देखते है और चाय-कॉफी के प्याले और बियर के मग में जीवन-मूल्यों की तलाश करते है। अकेलापन, यन्त्रणा, निरर्थकता, संकट, अनिश्चितता, नियतिहीनता, आत्महीनता, अनिर्णय, अस्थिराता, निष्क्रियता, असंगति और एब्सर्डिटी (सारे शब्द श्रीकान्त वर्मा के) ये अनुभव करते हैं, और अनुभव भी नहीं करते ,पढ़ी हुई पुस्तकों से उदघृत करते है, क्योंकि इस सबकी अनुभूति यदि हो जाती तो ये 'टैड़ी-बौएज-दार्शनिक' सर्वत्र अकेलेपन और निरर्थकता की बात न करते। (94)

कहना न होगा कि 'अकहानी आन्दोलन' एक विवादास्पद और मूल्य संक्रमण तथा मोहभंग की प्रक्रिया का आन्दोलन रहा है। शशिकला राय के विचारानुसार -अकहानी 'नो प्लौट' नो स्टैक्चर ऑफ करेक्टर्स की परिभाषा लिए चलती है। 'कहानी की मृत्यु से ही चर्चा का आरंभ करना चाहिए।'

मुझे कहानी के उस स्वीकृत रूप से घोर वितृष्णा है जिस अर्थ में वह आज कहानी के नाम से जानी जाती है। 'कहानी एक से अधिक स्तरों का उदघाटन करती है तब वह एंटी-स्टोरी होती है। 'डीसैटली कल्पनाएँ साहित्य से चुक गई है। पहले की तरह अब कहानी लिखने के लिए मूड नहीं बनाना पड़ता, कहानियों में (इसमे अ साईलेंट है) 'इन कहानियों में न केवल कहानी के तत्वों से मुक्ति का प्रयास है बल्कि उस समझदारी और चालाकी से भी है जो पूर्ववर्ती कथाकारों में थी। पाँचवे पाठक के तलाश की बात की गई जो मात्र मनोरंजन,रूचि संकीर्णता, सनसनीखेज या समय काटने के लिए पढ़ने जैसी सीमाओं से सही मायनों में ऊपर उठा हुआ हो।' ये सारे अकहानी के प्रति दुलार अकथाकारों और उनके संरक्षकों ने व्यक्त किए।(95)

अकहानी आन्दोलन की रचनाओं में बोहेमियन,अराजक और विश्रृंखल भावनाओं के पात्र अधिक है। जो क्षण के अस्तित्व में जीते है। अतीत त्रासद रहा है और वर्तमान उनके लिए बोझिल है तथा बेरोजगारी, महंगाई,परिवेश की अन्तर्जटिलता उन्हे व्यथित करती है। अतः क्षणिक रोमान्स के क्षण,यौन संबंधो की चाह व तृष्णा उनके लिए यथार्थ की अनुभूति का बायस रहता है। शशिकला राय भी मानती है कि -अकथावादीयों की कथाओं के पात्र बोहेमियन थे। कथाएँ यूँ चलती हैं ज्यों अँधेरे में साया। अवधनारायण सिंह 'अनिश्चय' रवीन्द्रकालिया 'धक्का' ,महेन्द्र भल्ला 'बटा-वही' , गंगाप्रसाद विमल 'अपना मरना'। अकहानी के सारे पात्र सर्वनाम में जीने वाले है। अकहानियाँ मूड की कहानियाँ है परन्तु विभिन्न मूड की नहीं। कौन-सी दुनिया के ये लोग हैं जो निरंतर एक मूड में बने रहते हैं वह मूड है निष्क्रियता का, इसलिए जिस तरह एक ही टोन की कहानियाँ है उसी तरह उनका तयशुदा पैटर्न भी एक ही है। "आज की कहानी उस रूप को ग्रहण नही करती जहाँ वह अनर्गल प्रलाप बन जाए। (96)

गंगाप्रसाद विमल की अकथा को लेकर यह डिफेंसिव मुद्रा हैरान करती है 'दूसरे का पैर' (श्रीकान्त वर्मा) की कहानी, का वह कहता है एक साधारण स्त्री और मामूली-सी नौकरी एक बकवास-सी दुनिया को वह अपने अंदर उतने बरसों कैसे पोसे रहा इस पर उसे खुद आश्चर्य होता है अब वह बिलकुल स्वाधीन है। अकथा के अपात्रों की असार्थक दुनिया है। 'एक अघटना घटी बस और कुछ नहीं सिवाय इसके उसे कुछ भी नहीं कह सकते। (कहानी 'आत्मीय') गंगाप्रसाद विमल की कहानी 'विध्वंस'का मैं कहता है चौबीसवाँ साल मेरी चेतना का एक ऐसा साल है कि उस दिन मैं असली रूप में अपने आपको खत्म मानता हूँ दरअसल सारी अकथाओं की कथा खत्म मानसिकता का उजाड है ढेरों कहानियाँ पढ़ते के बाद स्मृति थोड़ी देर ठहर जाए। ऐसी कहानी शायद ही मिले। पर अकहानी आन्दोलन सामान्य पाठकों को सहजानुभूति का माध्यम जरूर बन जाता है।

कहानीकार विजय मोहन सिंह ने पाश्चात्य एण्टी-स्टोरी के काथाकार के माध्यम से एक सात्विक व मार्मिक प्रश्न उठाया है कि अ-कहानी के साथ भी हम रॉब्ब ग्रिए या मैडम सारा या बार्धस से नही बच सकते।

हमारे सामने उन्हें भी ग्रहण करने या नहीं ग्रहण करने की समस्या आती है। कारण अ-कथा सम्बन्धी आन्दोलन केवल 'फार्म' या शिल्प का आन्दोलन नहीं है- वह एक निश्चित दृष्टिकोण और जीवन-दर्शन का आन्दोलन है, इसलिए सवाल उस दृष्टिकोण के स्वौकार या अस्वीकार का भी है। रॉब्ब ग्रिए के लिए इंसानी हरकतें किसी दूसरी वस्तुओं से भिन्न नहीं हैं - वे सिर्फ उतनी ही है जितनी नजर आती है -दूसरी तमाम वस्तुओं के साथ हरकत करती हुई यांत्रिक और ठोस ! वे अपनी ठोस यांत्रिकता में मानवीयता से मुक्त होती हैं, वे सिनेमा के पर्दे चलती-फिरती व्याख्याहीन स्थितियाँ हैं। क्या हमारी तथाकथित अ-कहानियाँ इन धारणाओं के निकट पडती हैं ? क्या हम रॉब्ब ग्रिए की तरह इतने 'डेस्पेरेट' हो सके हैं कि कह सके, 'लेखक वह है जिसके पास कहने के लिए कुछ नही है !'न हम 'नर्वस ब्रेक-डाउन' की उस स्थिति में ही पहुँचे हैं जिसमें यथार्थ और कल्पना का भेद मिट जाये और हम विलियम बरोज की तरह क्रमहीन कतरने जमा कर उपन्यास लिख सके । (97)

सातवें दशक के अकहानी आन्दोलन मेंजहाँ विमल, जगदीश चतुर्वेदी, महेन्द्र भल्ला, रमेश बक्षी और श्रीकान्त वर्मा सक्रिय थे। वहाँ समांतर कहानी आन्दोलन के प्रेरक कमलेश्वर के संग सुधा अरोड़ा, निरूपमा सेवती, शानी, के संग दीप्ति खण्डेलवाल की रचनाएँ अपने पाठक वर्ग को कम आकर्षित नहीं कर रही थी। कहना न होगा कि समान्तर आन्दोलन ने प्रकट होकर दोबारा नई कहानी के वाद की विकृतियों से संघर्ष किया ओर कहानी को 'समय की जरूरतों'से जोड़ा। इस तरह प्रेमचन्द की समय-सापेक्षता तथा नई कहानी की निरंतरता में सामान्तर की समय-सापेक्षता भी प्रतिष्ठित हुई। समान्तर लेखक प्रगतिशील चिन्तन से निकटता प्रदर्शित करना चाहते है - मसलन रूपवाद, शाश्वतता औार सौंदर्य वाद पर किया गया वैचारिक आक्रमण अज्ञेय, भारती, तथा उनका प्रभाव ग्रहण करनेवाले उन अनेक लेखकों पर सटीक बैठता है। समांतर कहानी आन्दोलन के रचनाकारों ने कल्पना की जगह यथार्थ को, उच्च वर्ग के बजय निम्न वर्ग को, विशिष्ट चरित्र की जगह आम आदमी को महत्व दिया है।

लेकिन 'अकहानी आन्दोलन के रचनाकारों ने मानव मन की अन्तग्रंथियों को, यौन आकांक्षाओं , और वर्जना के प्रतिरोध को रेखांकित करना चाहा है। 'अनुभूति की प्रामाणिकता का दावा जगदीश चतुर्वेदी, गंगाप्रसाद विमल, दूधनाथ सिंह और महेन्द्र भल्ला ने किया है। वे मनोविश्लेषण की राह पर दमित इच्छाओं सम्भोग के क्षणों में अतृप्ति ओर वर्जित क्षेत्रों में प्रवेश की चाह प्रकट करते रहे है।

3.21 **जगदीश चतुर्वेदी** : जगदीश चतुर्वेदी 'अकहानी आन्दोलन के उन्नायकों में से एक हैं। उनका पहला कहानी संग्रह 'जीवन का संघर्ष' (1954) में प्रकाशित हुआ था। उस समय इनकी ओर लोगों का विशेष ध्यान नहीं गया। उसके बाद इनका कथा-संग्रह **'निहंग'**(1973) प्रकाशित हुआ। उस

समय इसकी समीक्षा कराते हुए हरदयान ने कहा था -"'निहंग'की सोलह कहानियों में से तेरह का विषय एक लड़के और एक लड़की, एक पुरूष और एक स्त्री की निकटता के कारण उत्पन्न लालास ,भोग एवं प्रतारणा है।"इसके बाद आपके **'अंधेरे का आदमी'** (1980) **'चर्चित कहानियाँ'** (1981) **'विवर्त'** (1981) आदि कई संग्रह प्रकाशित हुए है। इन संग्रहों में आपने स्त्री-पुरूष के यौन संबंधों का खुलकर चित्रण किया हैं। इधर की आपकी कुछ कहानियों में साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के विरोध तथा जीवन में पैसे के बढ़ते हुए प्रभाव का स्वर मुखरित हुआ है। किन्तु सब मिलकर आप की पहचान मुक्त काम-सम्बन्धों के साहसिक विश्लेषण और चित्रण करनेवाले लेखक के रूप में ही बन सकी है।

अकहानी आन्दोलन तत्कालीन स्थापित मूल्यों तथा कहानी शिल्प दोनों का विरोध था। जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों में यह विरोध मूलतः नैतिकता के स्थापित प्रतिमानो के विरोध में जाता हैं।[98] 'निहंग' की कहानियों में भोगवादी दृष्टि है। इनमे काम संबंधो का निर्बन्ध और अकुण्ठ चित्रण हुआ है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियों के नायक कम आयु की लड़कियों के प्रति आकर्षित हो कर उनसे देह संबंध रखते है। 'अंधेरे का आदमी' संग्रह की कहानियों में यह आकर्षण महिलाओं के प्रति हो जाता है। कहना न होगा कि 'जगदीश चतुर्वेदी पर हेराल्ड रॉबिन्सन, हॅवलाक एलिस, और डी.एच.लारेन्स का गहरा प्रभाव है।[99]

जगदीश चतुर्वेदी की अनेक कहानियाँ लैंगिक भूख की स्थिति के पहलुओं को विभिन्न अर्थ-छवियों में विश्लेषित करती हैं। कथ्य की दृष्टि से इन कहानियों को तीन वर्गो में रखा जा सकता हैं। -एक सैक्स से ऊबा हुआ आदमी, दूसरा सैक्स और भावना की द्वंद्वात्मक स्थिति, तीसरा महानगरीय परिवेश में आदमी का अकेलापन।

'ड्राईंग रूम की पेंटिग' में आदमी की सैक्स से ऊब की जटिल स्थिति विश्लेषित हुई है। स्त्री-पुरूष संबंधों में काम की उत्तेजना में सारे काल्पनिक सौंदर्य को नकारता हुआ व्यक्ति अपनी आदिम भूख के वशीभूत हो जाता है। 'शिशुहंता' कहानी में यौन-भूख और भावना के साथ लगा है सृजन का मानवीय दायित्व। दायित्व बोध से अभिभूत स्त्री सृजन और पोषण के लिए तलाशती है। एक घरौंदा और पुरूष का सहारा इस दायित्व को नकारता एक स्तर पर उदासीनता निर्लिप्त पुरूष दूसरे स्तर पर दायित्व को स्वीकारता हुआ एक जिम्मेदार सामाजिक प्राणी बनता है, जो मानवीय संस्कृति के मूल्य बोध के संस्कार से बँधा हुआ हैं। वह आकर्षण-विकर्षण के बीच भटक रहा है। उसकी सामाजिकता उसे शिशुहंता के रूप में देखती है वह अपने ही सामने एक अपराधी बनकर खडा है।[100] यौन सम्बन्ध में भावनात्मक एवं सामाजिक सुरक्षा की मांग अधिकार रूप में संभवतः स्त्री की ओर से अधिक होती है। पुरूष इस सब का निर्वाह जैविक-प्रक्रिया का यंत्र बनकर भी करता है किन्तु स्त्री उस यंत्र पर अधिकार करके निश्चिंत होना चाहती है।यह वस्तुस्थिति 'हरक्यूलीज' कहानी में विश्लेषित हुई है। इस

कहानी का पुरूष अजेय है। दुबली-पतली बौद्धिक लडकी, उसको वश में करने की मासूम कोशिश में व्यतीत हो रही है। 'मुर्दा औरतों की झील' में सहज उपलब्ध यौन-सुख से उबा हुआ व्यक्ति नींद की गोलियाँ निगलकर सोता है। यहाँ अनियन्त्रित सैक्स की त्रासद स्थिति सामने आती है। (101)

विज्ञान के इस युग में आदमी बौद्धिकता अथवा विचार में इतना उलझ गया है कि भावन के लिए उसके पास समय ही नहीं रहा। किन्तु महानगरीय जीवन में अकेलेपन के अस्तित्व संकट का बडा कारण भावनात्मक असुरक्षा ही है। भावना विहीन व्यक्ति की परिकल्पना अपने आप में यंत्र की परिकल्पना है। बौद्धिक नीरसता और यांत्रिकता से ऊबा व्यक्ति भावना में त्राण पाता है। इसके कुछ प्रतिरूप 'यूक्लिप्टस के साये', 'शैन्टीमेंटल गर्ल', 'डेलियाका फूल' , गोभी आदि कहानियों में देखा जा सकता है।

महानगरीय परिवेश की कहानियों में 'फ्री-लांसर' की पीड़ा भी भावना और तन की भूख है। 'उदासीन' में व्यक्ति का अकेलापन उसकी नियति बन गई है। 'अंधेरे का आदमी' भी भावनात्मक अकेलापन का संत्रास भोग रही है।

3.22 **दूधनाथ सिंह** : दूधनाथ सिंह की शुरूआत 'अकहानी आन्दोलन के पूर्व हो चुकी थी। वैसे दुधनाथ सिंह का **'सपाट चेहेरे वाला आदमी'** कहानी संग्रह (1967) अपने रूप बन्ध,भाषा और चालू मुहावरों में ये कहानियाँ, अपने समकालीन होने का पूरा-पूरा भ्रम देती है, लेकिन इनकी समकालीनता केवल सोचने के धरातल पर ही है,भोग के धरातल पर नहीं और चिन्तन भी एक खास काट और मुद्रा का है।(102) जो रति क्रिया,यौन प्रसंगो के साथ-साथ अलगाव बोध का है।

'सुखांत' कहानी संग्रह अकहानी आन्दोलन के प्रभाव में रचा गया है। आइस वर्ग, रक्तपात और रींछ आदि रचनाएँ उनकी संश्लिष्ट ओर किसी हद तक जटिल बुनावट तथा प्रतीक विधान की रचनाएँ है। मधुरेश ने अभिज्ञापित किया है कि "दूधनाथ सिंह का शिल्प वैसा अनगढ़ नही है जैसा कि अकहानी सम्बन्धी घोषणाओं में बताया जाता रहा है। और स्वयं गंगाप्रसाद विमल की अधिकांश कहानियाँ जिसका विडम्बनापूर्ण साक्ष्य बन चुकी है। लेकिन 'रींछ' और 'कोरस' जैसी कहानियों की जटिलता और दुर्बोधता तथा 'सपाट चेहेरे वाला आदमी' में अकारण अमूर्तन की प्रवृत्ति उन्हें अकहानी के निकट ले जाती है। 'रींछ' कहानी के भाष्य उपलब्ध है उतने किसी कहानी के तो क्या किसी कविता के भी उपलब्ध नहीं होंगे। 'रींछ' कहानी वास्तव में स्त्री-पुरूष के दैविक स्पर्श और संघर्ष की कहानी है। पुरूष अपनी वासनापूर्ति के क्षणों में 'रींछ' जैसा हिंस्र बन जाता है। उसी का प्रतीकात्मक वर्णन है। हैवलाक ने जिस प्रकार सम्भोग के लिए पूर्व उत्तेजना का होना महत्वपूर्ण माना है। यौन मिलन में पूर्णता प्राप्त करने के लिए नित नवीन तरीके से होना आवश्यक माना है। उसका कथन है 'प्राक्-

क्रिडा का सम्बन्ध यौन स्फीति तथा स्खलन या पूर्ण मैथुन से है, जो मानो यौन जीवन की नींव है। [103]कारण देहस्पर्श, चर्मस्पर्श के माध्यम से ही सैक्स की शुरूआत होती है। एलिस हॅपलॉक के अनुसार- स्पर्श ही वास्तविक रूप से प्राथमिक तथा आदिम कामानुभूति है। [104] ऐसी ही प्राक् अनुभूति दूधनाथ सिंह की 'रींछ' कहानी की सैक्स प्रक्रिया और अनुभूत सत्य की प्रतीति में रेखांकित हुयी है।

कहना न होगा कि अकहानी के घोषणापत्र के अनुरूप 'शिनाख्त' कहानी रागात्मक सम्बन्धों के क्षरण और अंततः निषेध की कहानी है। 'संबंध' और 'सुखांत' में भी दुर्बोधता, अमूर्तन और शिल्प प्रयोग के प्रति अर्थहीन मोह जैसी चीजे उन्हें अकहानी की सीमा में लाकर एक नकली माहौल की नकली लड़ाई की कहानियाँ बना देती है। यहाँ शाश्वत संवाद हीनता की स्थिति वाला अमूर्तन और छद्म दार्शनिकता है जो जीवन के समग्र निषेध तक जाते है। 'हम लोग' एक लम्बी दीवार अपने सिरों और कंधो की टक्कर से तोड़ रहे थे। 'सुखांत' की यह घोषणा अपने बड़ी अस्पष्ट और अमूर्त सी है। यह न तो 'हम' की व्याख्या करती है और नही 'दीवार' को स्पष्ट करती है। जिसे सिरों और कंधो से तोडने की कोशिश की जा रही है। इस 'कोशिश' का उल्लेख भर हुआ - उसकी प्रकृति ,प्रक्रिया और परिणाम कहानी में कहीं नहीं है। 'सुखांत' एक नपुंसक आक्रोश को लड़ाई का रूप देने की विड़ंबना का दयनिय साक्ष्य है। [105]

सातवें दशक का उत्तरार्द्ध, जिसमें एक ओर यदि अकहानी प्रभाव अपनी सारी संक्रमणता के साथ लेखकों को आकृष्ट कर रहा था,वही सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भी बनियादी एवं व्यवस्थागत परिवर्तनों की आकांक्षा को रूपायित करनेवाली कहानियाँ लिखी जा रही थी। ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, और मधुकर सिंह जैसे राजनीतिक संदृष्टि वाले लेखक भी अकहानी के प्रभाव से अछूते नही रह पाते है। इस आन्दोलन के समाप्त हो जाने के बाद दूधनाथ सिंह एक लम्बे समय तक चुप रहते है। [106] अपनी रचनात्मकता के दूसरे दौर में लिखी गई उनकी कहानियाँ -**'माई को शोकगीत', 'हुँडार',** आदि न सिर्फ अकहानी के प्रभाव वृत्त से उनकी मुक्ति का प्रमाण है, अकहानी की अनेक स्तरों पर सक्रिय संश्लिष्ट संरचना की वापसी का भी संकेत देती है। दूधनाथ सिंह की **'रक्तपात'** कहानी भी दो अर्थगर्भी संकेत लिए हुए है। बाहर से कुछ नही बदला, है.... सारा रक्तपात भीतर हो रहा है। [107]इस 'रक्तपात' के दो स्तर है। एक ओर यह यदि बूढ़ी माँ के गले से होता तो दूसरी ओर पत्नी की अतृप्त इच्छाओं का होता है। जो बाहर से दिखाई न देने पर भी उतना ही सच है। वास्तव में बात अनुभव व कल्पना की मिश्रित प्रस्तुति पर है। दूधनाथ सिंह अनुभूति की प्योरिटी और अनुभव के अकेलेपन पर जोर देना चाहता है लेकिन सवाल यह है कि कोई भी अनुभूति इतनी और ऐसी शुद्ध नही होती और नही अनुभव नितान्त अकेले होते है, उनमें परिवेश और अनुभव करते व्यक्ति की मानसिकता (जिसके रूपायन में भी परिवेश और सन्दर्भो का योग होता है)

सक्रिय और निर्णायक भूमिका अदा करती है। फिर मान लिया कि नरमादा और यौन पाशवता के स्तर पार उतरकर सम्बन्धों की यह पहचान भी 'रीछ' कहानी की तरह शायद काल का एक आयाम है तो सवाल यह उठता है कि काल का यह आयाग स्थिति के आन्सेशनसे तय किया जा सकता है क्या ? याने क्या समकालीनता के बोध को इतने कटे-छँटे रूप में पाया जा सकता है। इसमे न तो स्थितियों का कोई तर्क है न संगति । (108)

परवर्ती दौर में दूधनाथ सिंह ने अकहानी की प्रवृत्तियों और यौन प्रसंगो की अभिव्यक्ति से हटकर नमो अंधकार' और 'माई काशोकगीत' जैसी विवादास्पद और अन्तर्विरोधी चरित्रों की कहानियाँ रची है।,

3.23 **गंगाप्रसाद विमल** : गंगा प्रसाद विमल 'अकहानी' आन्दोलन के पुरस्कर्ता माने जाते है। इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में - गंगा प्रसाद विमल जो शायद 'अकहानी' आन्दोलन के नेता माने जाते है, आन्तरिक अकेलेपन आन्तरिक खालीपन, इन्सान के एकांत, अस्तित्व के विराट भय के सवालों को लेकर अ-कहानी के चेहरे को उजागर करते है। यो डॉ.मदान यह मानते है कि विमल की अपनी कहानियों को आधुनिकता की दृष्टि से पहचानना बेहतर होगा। वे कहते है " यह आवश्यक नहीं है कि कहानी पर इनकी कहानी से मेल खाती हो। **'विध्वंस'** (1965) , **'शहर में'** (1966), **'बीच की दरार'** (1968) तक इसकी अपनी कहानी के चेहरे की पहचान आधुनिकता की दृष्टि से कहना बेहतर होगा। पिछले तीन दशकों में **'आपके अतीत में कुछ'** (1972), **'कोई शुरूआत'** (1973), **'खोई हुई पती'** (1995) शीर्षक संग्रह और प्रकाशित हुए है। इन कहानियें में आधुनिकता के सकारात्मक पक्ष को महत्व देने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। (109)

अकहानी के शिल्प में ,संरचना -कौशल में काफ्का और ईरानी लेखक समद बहरंगी की तरह फैण्टसी शिल्प का भी प्रयोग किया गया है। अजीब से खालीपन ,मन की रिक्तता मस्तिष्क की विचित्र कल्पना और प्रेम संबंधों की अनचाही स्थितियाँ अकहानी आन्दोलन के मुख्य सूत्र रहे है। हालाँकि दृष्टि मूल्य सौंदर्य बोध के दावे उन्होने भी किये है चाहे वे जगदीश चतुर्वेदी हों या गंगप्रसाद विमल ।(110) अकहानी में आयी अत्यंतिक व्यक्तिवदिता की ये लोग किसी अकल्पित स्थिति के रूप में स्वीकारने को तैयार नही है। वे यह मानकर चलते दिखाई देते हैं कि कमोवेश सभी लोग ऐसा ही जीवन जी रहे है। इसे वे जीवन का तीखा, त्रासदायक और साहसिक चित्रण के रूप में स्वीकृति देते है,जिसमें आवेश और आक्रोश की एक निर्णायक भूमिका है।(111) इस संदर्भ में गंगाप्रसाद विमल की टिप्पणी है -"यह कहना एकदम सही नही हैकि एक प्रबुद्ध आदमी जो जीता है वह अन्य लोगों के लिए अकल्पित है। जीवन की सारी स्थितियाँ ऐतिहासिक शक्तियों के दबाव के कारण समान रूप से व्यवस्थित रहती है,प्रबुद्ध या संवेदनशील व्यक्ति उन्हें जल्दी पकड़ लेता है। बाहर से दिखनेवाले जीवन की अन्तर्धाराओं के अनेक चेहरों का परिचय सिर्फ बिम्ब या आसंगो से संभव

नहीं है। उसके लिए उसी तरह का 'अनगढ़ वातावरण'स्वयं बिम्बात्मक होकर स्पष्ट हो जाता है। (112)

डॉ.गंगाप्रसाद विमल के अनुसार अकहानी में परम्परा और मूल्य को तोड़ने वाली सभी कहानियाँ परिगणित की जा सकती है ओर अभिशप्त, दण्ड़ित, तटस्थ, अस्वीकृत तथा मौन सब प्रकारा के व्यक्ति की अलग-अलग अकहानियों में आ-जा सकते है। (113) अकहानी के डॉ. गंगाप्रसाद विमल जैसे व्याख्याता कहते है किकहानी जब एक से अधिक अर्थ-स्तरों का उद्‌घाटन करती तो 'एंटी स्टोरी' होती है -"एक ऐसा तत्व (देश, काल और परम्परा को पीछे छोड़ने वाला तत्व) जब विभिन्न स्तरों के पाठकों से भिन्न स्तरों की परते खोलता है तो वह शुद्ध रूप से 'एंटी स्टोरी' होती है।" व्याख्या अपनी जगह सही है, पर उसके साथ 'एंटी स्टोरी' की संगति नहीं बैठती। कहानी अर्थ के अनेक स्तरों का उद्‌घाटन कर अधिक सार्थक, सफल और सोद्देश्य बनती है-विमल अ-कहानी में अर्थ तत्व की विविधता देखते है, जो कहानी को अधिक सम्पन्न और सन्तुलित बनाती है। (114)

विमल की 'अभिशाप' और 'विध्वंस' कहानियों में अस्तित्ववादी दिग्भ्रमिता, अनिश्चय, संशय, और तनाव ग्रस्त मानसिकता तथा फैण्टेसी शिल्प के अन्तर्गत बिम्ब व प्रतीकों का इस्तेमाल देखा जा सकता है। 'पंखो में,धागे में लिपटी टंगी,मरी हुई चिड़ियाँ का प्रतीक भी ऐसा ही आरोपित और किताबी प्रतीक है जिसे दोहराने की ललक विमल के ही लेखन में आसानी से देखी जा सकती है। विमल बिम्ब विधान और प्रतीकों के इस्तेमाल का विरोध करके, कहानी की अनगढ़ता की वकालत के बावजूद यह सब करते है। 'अभिशाप' का त्रास विभ्रम से उत्पन्न भय की उपज है। (115) मैं नाई के यहाँ जाता है। वहाँ भीड़ होने के कारण वह पास की दुकान पर चाय पीने लगता है, जहाँ उसे कोने में किसी आदमी के बैठे होने का भ्रम होता है। बेयरा से पूछने पर पता चलता है कि उस कोने मे ही क्या ,पूरी दुकान में और कोई आदमी नहीं है। फिर नाई की दुकान पर शीशे में उसे अपना चेहरा विकृत दिखाई देता है। कभी किसी ओर के क्रूर और भयावह चेहरे का भ्रम होता है। कभी नाई की कैची गायब हो जाती है, तो कभी कंगी और उस्तरा। आतंक से उसकी चीज निकलने को होती है और भय से मुट्‌ठियाँ बंद जाती है। दुकान से निकलकर जब वह घर को चलता है तो उसकी पेंट की जेब ये बंद मुट्‌ठियाँ वैसी ही है और यह सोचकर उसे भय लगता है कि यदि ये मुट्‌ठियाँ घर पहुँचने तक भी नहीं खुली तो फिर वह ताला कैसे खोलेगा। (116)

'विध्वंस' भी अनिश्चय और निर्णयहीनता के आरोपण की कहानी है, जिसमें कुछ करने और कही जाने की चेतना के बावजूद 'मैं' के आगे यह स्पष्ट नहीं है कि कहाँ जाना है और क्या करना है। किसी अनाम युद्ध में निर्जीव हुए अपने शहर और मृत पत्नी की स्मृति संजोए वह सोलह वर्षो से इसी तरह भटक रहा है। 'शीर्षक हीन' में पिता-पुत्र बहुत कुछ दो मित्रों की तरह है। अपने विकसित सौंदर्य बोध के आधार पर पिता मिलने आई

लडकियों में से सुंदर और स्मार्ट लडकी को ही लडके के अंदर वाले कमरे में भेजता है जब कि अन्य लडकियों से वह स्वयं ही तरह-तरह की जानकारियाँ लेता रहता है। बेटा अपने पिता की पूर्व प्रेमिका को देखकर न सिर्फ उसके सौदर्य बोध से प्रभावित होता है, अपनी तलाक शुदा महिला बॉस को उन्हे तोहफे में देने की बात भी सोचता है।

3.24 **महेन्द्र भल्ला** : महेन्द्र भल्ला की ख्याति 'एक पति के नोटस' नामक लघु उपन्यास के कारण परिव्याप्त रही है। रवीन्द्र कालिया, गंगाप्रसाद विमल, की तरह महेन्द्र भल्ला आदि की कहानियाँ एक भिन्न मानदंड़ की मांग करती है, समाज के एक अलग कोण से उन्हे देखना पड़ता है - पर 'एक पुरानी कहानी के बीच ' या लड़के को सी ऑफ करके लौटी लड़की या 'दूसरें का भोग' में अपनी माता के प्रेमी से सटी हुई लड़की एक निश्चित मनोवैज्ञानिक सत्य को व्यक्त करती है। ये कहानियाँ एक निश्चित निष्कर्ष तक पहुंचती है - काफी सांकेतिक और काफी अर्थगर्भित। महेश भल्ला की अधिकांश कहानियों में 'मेटाफोर्स' का खूबसूरत और सन्तुलित उपयोग मिलता है। चाहे वह 'कुत्तेगिरी' हो अथवा 'पुल की परछाई।' (117)

'पुल की परछाई' एक पारिवारिक सी प्रतीत होने वाली कहानी है जिसमें एक किशोर संवेदना में घुली हुई यौन भावना को व्यक्त किया गया है - किशोर मन की अस्पष्ट, अव्यक्त सी यौन भावना जिसके बुलबुले कहानी में यहाँ-वहाँ तैरते रहते है। इसे व्यक्त करने के लिए कहानी में एक ठंड़ा ,निष्क्रिय सा वर्णनात्मक अंदाज अपनाया गया है, व्यवहारवाद की ओर झुका हुआ। कहानी में जाने-अनजाने आधुनिक लेखक का एक 'हिट फार्मूला' है - 'मौत' के सामानान्तर यौन' अनुभूतियों के चित्रण का। परिवार के एक विशिष्ट व्यक्ति की मृत्यु के बाद का आतंक और उसकी औपचारिकताएँ और उनमें खोया हुआ एक किशोर जो इन सारी बातों को एक तटस्थ 'तीसरी आँख' से देख रहा है; इस तीसरी आँख में मृत्यु के साथ जुड़े हुए पाखंड़ के प्रति प्रच्छन्न व्यंग्य भी है। शुरू मे लगता है कि कहानी का मकसद इसी को बताना है। (118)

महेन्द्र भल्ला की कहानियाँ अपने खुले बेबाक चित्रण के कारण ही चर्चित हुयी है। प्रेम विवाह समर्पण प्रतीक्षा और मौत आदि के क्षणों में जो युवा पीढ़ी की मानसिकता बदल रही है। उसे उन्होने अकहानी आन्दोलन के दौरान रेखांकित किया है। वैसे भी मौत के बद मौत से भी भयानक क्या है ? शायद मौत का रिचुअल लेकिन यह मेरा आरोपण है, कहानी उस 'भयानक' को नही दिखाती। वह कुछ और दिखाती है जो एक रिश्तेदार युवती के प्रवेश के द्वारा शुरू होता है। वैसे भी कहानी में 'किशोर' की यह चिन्ता ज्यादा प्रमुख है कि भाई के मरने के बाद भाभी का क्या होगा ? - "एकाएक उसे खयाल आया कि अब भाई साहब नहीं है, भाभी क्या करेगी ? उसे याद हो आया कि मेहर झीर जब मरा था तो उसके छोटे भाई गुलाब ने उसकी पत्नी को 'कर' लिया था। [xxx] तो मौत के साथ यौन

भावना की घुलावट यहीं शुरू होती है पर प्रत्यक्ष होती है उस 'युवती' के प्रवेश के बाद। 'विमल!'अचानक उसने अपना नाम सुना। आवाज बहुत पास और परिचित थी। उसने मुड़कर देखा। नयी आयी स्त्री गुसलखाने के बाहर दीवार से सटकर खड़ी उसे देख रही थी ... विमल की बाँहे अचानक ही उठी और अपनी नंगी देह को ढ़ाँपने की कोशिश करने लगी .... सीता ने दुपट्टा उतारकर खूँटी पर लटका दिया... उसकी बाँहे सुड़ौल और गोरी थी। उसकी आँखे भाभी की तरह काली। मगर होठों के उपर कोनों की तरफ महीन भूरे बाल थे जो पानी पड़ने से इकट्ठे हो गये थे और साफ दिखाई देते थे। धीरे-धीरे मुँह पोंछती हुई वह निरन्तर विमल को देख रही थी। (119)

महेन्द्र भल्ला ने वयस्क पुरूष और किशोर मानसिकता के भावों को ,उद्विग्नता को प्रकारान्तर से 'एक पति के नोट्स' और 'पुल की परछाई' कहानी में रेखांकित किया है - 'पुल की परछाई' कहानी का सबसे असफल और हास्यास्पदहिस्सा वह है जहाँ वह किशोर उस औरत को साइकिल पर बैठाकर ले जाते हुए सोचता है -"उसे तब महसूस हुआ कि सब कुछ ऐसे ही चलता है - लड़खड़ाकर धीमी गति में चलने वाला!" यहाँ लेखक वास्तविक 'किशोर' से कितना बाहर है - बाहर और उस पर लदा हुआ। जनाब कोई किशोर इस तरह 'फिलॉसोफाइन' नही करता ! यही तथाकथित बुनियादी सवालों को फिलॉसोफाइन'करने का नकलीपन भी पूरी तरह उजागर हो जाता है।

इस तरह हम देखते है कि 'अलगाव' या यौन अनुभूतियों की छायाएँ किसी भी प्रकार रचनात्मकता की शर्त नही बनती और महेन्द्र भल्ला की कहानियाँ इन्हीं सीमांतों पर समाप्त ही जाती है। भले ही अकहानी संरचना के विभिन्न दावों पर खरी उतरती हो।

3.25 **रमेश बक्षी** : रमेश बक्षी अकहानी आन्दोलन और आधुनिकता बोध के कहानीकार है। डॉ.मदान ने इनकी तीन कृतियों -**'एक अमूर्त तकलीफ'** (1968), **'तलघर'** (1970), **'सजा'** (1970) का विवेचन करके बताया है कि 'रमेश बक्षी की कहानी में आधुनिकता का बोध, अकेलेपन, अजनबीपन, फालतूपन, और घुटन,बोरियत में अभिव्यक्ति पाता है। आपकी **'पिता-दर-पिता'** (1971) शीर्षक लम्बी कहानी की समीक्षा करते हुए सुरेन्द्र तिवारी ने अनुभव किया है कि माँ-पिता-पत्नी के प्रति अत्याधुनिक आक्रोश जो कही कही अनायास ही घृणा का रूप पा लेता है। बक्षी की कहानियों की पहचान है। सब मिलकर देखा जाय तो अब सन साठ के बाद हिन्दी कहानी में 'आनेवाले अस्तित्ववादी रूझान से प्रभावित अकहानी आन्दोलन और आधुनिकता बोध के रचनाकार हैं। (120)

रमेश बक्षी ने अकहानी आन्दोलन और आधुनिकता बोध की पृष्ठभूमि में रचा है कि आधुनिकता संस्कारज बनी है। उसके कई पहलू है; एक ओर तो वह चल रही परम्परा का विरोध करती है, दूसरी तरफ उसे किसी भी साहस से ऐतराज नहीं है, तीसरी तरफ उसमें अनिवार्य रूप से इतनी

बत्तमीजी भी है कि जहाँ पुरखों ने दीवारे खड़ी की थी, इसने दरवाजे बना दिया। संस्कारज आधनिकता देह की अपनी होती है, बुद्धि पर उसका रंग रहता है, आचार-विचार उससे निर्देशित होते है - वह स्कर्ट और रूज की तरह नहीं होती, देह के रंग और शरीर के रोओ की तरह होती है। (121)

आधुनिक भाव-बोध संस्कारण आधुनिकता का एक प्रोजेक्शन है जो सर्जनात्मक साहित्य का प्रमुख स्वर है। नया साहित्य इसी बोध का परिणाम है। उसमे यथार्थ है, विरोध है, निर्माण है और सत्य है, कल्पना ,समझौता, चिरन्तनता और भूलभुलैया नही है। नयी कहानी में वस्तु-पात्र-चरित्र-चित्रण से ऊपर एक और चीज दिखाई देती है संवेदना। सबसे बड़ी भूमिका है काल की ,समय की। परिवर्तन भाग-दौड़, ग्लैमर ,तंगी ,महंगी, सबके सब नयी पीढ़ी के चिन्तन पर अक्स होते जा रहे है। सारा नवलेखन वक्त का माउथ-आर्गन हो गया है। (122)

रमेश बक्षी के कहानी लेखन की विशेषता उनकी क्राफ्टमेन शिप है। उन्होने अपनी कहानियों में दृश्य विचार घटना या चरित्र के प्रभाव क्षणों को बाँटा है, उनके यहाँ किसी स्वयंचालित कैमरे की एक क्लिक की तरह वर्णन क्षण उपलब्ध हैं। (123) 'आत्महत्या' नामक कहानी ऊन की बुनावट (यह महज संयोग नही है कि बक्षी की कहानियों में ऊन बुनती हुई एक लड़की या नारी होती है -जैसे 'किस पर गये है) की तरह अतीत और वर्तमान के प्रभाव -क्षण परस्पर बुने हुए है -एक उल्टा ,एक सीधा, एक वर्तमान का सूत्र, एक अतीत का । ऐसी बुनावट की एक सार्थकता यह हो सकती है कि बहुत ही 'काम्प्लैक्स'वस्तु और संवेदना , बिना अपनी तात्कालिकता नष्ट किए ज्यो -की -त्यो प्रभावित कर सकती है। इस कहानी के 'मै' का कुण्ठाग्रस्त ,ग्रन्थिमय, व्यक्तित्व और उसकी मानसिक चेष्टाएँ ही इसमे सक्रिय है। 'जूही' ही जिसके लिए 'रिफ्यूजी' है यथार्थ से भागकर छिपा जाने का या वहीं से यथार्थ को देखने का ।(124) वस्तु-यथार्थ के धरातल पर कहानी निम्न मध्यम वर्ग के अभावों से भरे जीवन और उसकी प्रतिक्रया स्वरूप सारे स्वप्नों की हत्या की है। लेकिन यही वस्तु इतने लम्बे विस्तार से और नफासत से भरी बुनावट के माध्यम से कही गई है कि कहानी का 'क्रैफ्ट' और 'शिल्प' बरबस अपना ध्यान आकर्षित करता है, जिसके लिए बक्षी याद किए जाते है और किये जाते रहेंगे। (125)

रमेश बक्षी ने 'पीढ़ियो' के अन्तराल की सोच कोभी अपनी कहानियों में रेखांकित किया है। कहना न होगा कि रमेश बक्षी की कहानी 'पिता-दर-पिता' बावजूद रोमांटिक कथा-संस्कारों के ,पीढ़ियों के बीच के फासले और संघर्ष को उभारती है। इस कहानी में पिता-पुत्र के सम्बन्धों ,सम्बन्धों नहीं , अस्म्बन्धों और पीढ़ी-दर-पीढ़ी रूपान्तरित होते चेहरों और 'आर्क टाइपो' का निरूपण किया गया है। इसमे सम्बन्धों की अभिव्यक्ति बौद्धिक या एकेडेमिक स्तर पर न हो कर संवेदनात्मक स्तर पर है और इसमे युवा पीढ़ी की अराजक स्थिति का बोध कराया गया है। प्रसंगवश रामदरश मिश्र की कहानियों में यद्यपि विघटित संबंधो को भावात्मक नजरिये से देखा गया

है, तो भी कुछेक कहानियों में गाँव ओर शहर की सक्रांत चेतना का यथार्थ उभरा है। (126)

अकहानी आन्दोलन के रचनाकारों ने एक ओर अपने युग की त्रासद अमानवीय स्थितियों में संवेदना के मानवीय पक्ष को रेखांकित किया, बदल ते हुए स्त्री -पुरूष सम्बन्धों में। जहाँ प्रत्याशा, प्रतीक्षा और चाहत के कण बाकी थे। जो पाठक की आकांक्षा के पठनीय और रोचक तत्व हुआ करते थे(127)

धनंजय वर्मा ने भी माना है कि पठनीय और रोचक बक्षी की प्ररम्भिक कहनियाँ भी है और वे किशोर मन को बांधने वाली भी है। मगर बक्षी ने अपने रचनावृत को लगातार विकसित किया है। इस विकास के लिहाज से उसका ताजा संग्रह **'कटती हुई जमीन'** उल्लेखनीय है। प्रारम्भिक कहानियों से लेकर अब तक बक्षी कै कहानियों के तीन पड़ाव इस संग्रह में मिल सकते है। संग्रह की पहली पाँच कहानियाँ तो कच्ची उम्र के युवक-युवतियों की भावुक स्वप्निल और रूमानी वृत्तियों को तुष्ट करनेवाली है। कॉलेज में 'नये आये सर' और किशोरवय लडकियों को रोमान्स गद्य में लिखे गये बारहमासे और इस रोमान्स के ज्वर में हर सम्भव-असम्भव छलाँग लगाती हुई काल्पनिक स्थितियाँ। इन कहानियों में केवल एक बात उल्लेखनीय है - इनकी बुनावट ,सलाइयों से बेहद नफासत से बुने हुए स्वेटर की तरह-एक उल्टा, एक सीधा, एक अतिका, एक वर्तमान का,सूत्र। इस बुनावट के सहारे बक्षी किसी मनःस्थिति के प्रभावक्षण खे बड़ी नफासत के साथ ज्यो-का-त्यों प्रेषित कर सकता है। इससे अलग उसकी पाँच कहानियों का दूसरा वर्ग, रूमानी कल्पना-ब्लौक से उतरकर यथार्थ के धारातल पर आता है, गो कि इस इस यथार्थ के प्रति भी उसका दृष्टिकोण कोरमकोर रोमाण्टिक है। मगर कहानियों में औसत आदमी की जिन्दगी के प्रति लेखक का सहानुभूति का रूख भी है। (128) तीसरे वर्ग की पाँच कहानियाँ बक्षी ने इन दोनों को मिलाने की कोशिश की है, याने बुनावट और यथार्थ-धरातल को।

सारांशतः अकहानी आन्दोलन में रमेश बक्षी को अस्तित्ववादी चिन्तन और शिल्प सम्बन्धी क्राफ्टमेन शिल्प का सशक्त रचनाकार माना गया है।

3.26 सुधा अरोड़ा (1944) : सुधा अरोड़ा की कहानियाँ स्त्री-पुरूष संबंधों के सीमित अनुभव के दायरे का अतिक्रमण करती है। 'बगैर तराशे हुए', 'युद्ध विराम' (1977), 'महानगर की मैथिली', 'काला शुक्रवार' (2004) आपके चर्चित कहानी संग्रह है। पहले कहानी संग्रह में आपने ऐसे नारी पात्रों को अंकित किया है, जो प्राचीन मान्यताओं और रूढ़ियों को तोडकर अपने लिए नया समाज बनाने को बेचैन है। परवर्ती कहानियों में आपका अनुभव-वृत बृहत्तर होता गया है। 'दमनचक्र' कहानी में नौकरी करती हुई लड़की के जीवन -संघर्ष के साथ लेखिका ने उसके भाई को भी कथा में प्रतिष्ठित किया है, जो नक्सलवादी आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार लेखिका को आज की युवा पीढ़ी की सोच और मनेविज्ञान को विवेचित

करने का अवसर मिल गया है। वृद्धों के अकेलेपन की पीड़ा का भी आपने बहुत ही मार्मिक चित्र खींछा है। आज के व्यापक भ्रष्टाचार के बीच ईमानदार व्यक्ति की जिन्दगी कितनी विषम हो गयी है,इस प्रश्न को पूरी गंभीरता से उठाकर कथा-लेखिका ने हमे व्यवस्था के बदलाव की दिशा में सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। निश्चय ही सुधा अरोड़ा ने समकालीन महिला कहानीकारों में अपनी एक अलग पहचान कायम की है।(129)

प्रसंग वश समांतर आन्दोलन ने 'आम आदमी की पीड़ा और संघर्ष को रेखांकित करने का दावा किया था। जिसमें कमलेश्वर, जितेन्द्र भाटिया, से.रा.यत्री, इब्राहिम शरीफ और कही-कही निरूपमा सेवती और रवीन्द्र कालिया भी शामिल थे। पर सुधा अरोड़ा ने मानवीय संवेदना, करूणा और विश्वास को भी चालू फैशन से हटकर महत्व दिया है। सुधा अरोड़ा की कहानी **'मरी हुई चीज'** में नायिका की बुद्धि परिपक्व है। वह विवाह-पूर्व प्रेम और यौन संबंधो को स्वीकार तो करती है। परन्तु उससे ऊपर उठकर वह अपने भावुक प्रेमी के साथ विवाह-बंधन में नही बंधना चाहती। प्रस्तुत है यहाँ दोनों के विचार - "तुम भ्रम में हो शुभा! तुम मुझे चाहती हो नही तो....."नही तो मुझे छू भी नही पाते , यही क्या ? सुधीर मुझे मालूम नही था कि तुम सारे जीवन को एक चुम्बन के दांव पर लगा दोगे। उसे सारे जीवन की प्रतिक्रिया मान बैठोगे। तुम्हारे मन में अपोजिट सेक्स का जो बंधन है -उसे तोड क्यों नहीं ड़ालते ? मुझे तुम अच्छे लगते हो बस ! मैंने तुमसे बाते की है -वैसा एक लड़की के साथ ,भी तो हो सकता था और विदा लेते समय वह लड़की अगर मुझे चूम लेती , तो मैं उसका प्रतिवाद भी नही करती। फिर ऐसा तुम्हारे साथ हो गया , तो उसके लिए मैं यह आवश्यक नहीं समझती कि हम जिन्दगी भर साथ रहें।(130)

अकहानी आन्दोलन के रोमाण्टिक अवसाद वितृष्णा और ऊब की जगह यहाँ मानवीय भावों और परिवेश का महत्व है। बौद्धिकता के आग्रह के साथ-साथ संवेदना का भी ख्याल है। सुधा अरोड़ा की कहानियों का परिप्रेक्ष्य व्यापक है। जिसे महानगर की मैथिली कहानी में भी महसूस किया जा सकता है। घनश्याम दास भुतड़ा ने भी माना है कि "बम्बई जैसे महानगरों के संवेदनशून्य जीवन को सुधा अरोड़ा ने अपनी कहानी 'महानगर की मैथिली' में बडी शिद्धता से महसूस किया है। यहाँ गरीबों के लिए कुछ नही है, सिवा दो जून रोटी के। यह शहर पैसे वालों का है, न कि आम आदमी का पारिवारिक, आर्थिक, विसंगति का बहुत सुन्दर चित्रण सुधाजी ने किया है। महानगरीय जीवन की विवशताओं एवं विद्रूपताओं को अभिव्यक्ति देने वाली यह सशक्त रचना है। एक मध्यवर्गीय दम्पत्ति द्वारा अपने बच्चे को पाले जाने की समस्या को इसमें रूपायित किया गया है।(131)

मैथिली उर्फ 'मैथ्यू' इस नन्ही सी बालिका की माँ चित्रा ,उसे अपनी पडोसी ताराबाई के यहाँ छोडकर पढाने के लिए स्कूल में जाती है। चित्रा के पति दिवाकर भी किसी दफ्तर में काम करते है और अफसर जरा-जरा सी बात पर झल्लाया करते है। शाम को ताराबाई के घर में मैथ्यू को लेकर

अपने घर पहुँचने तक चित्रा बहुत बक जाती है। उसे बम्बई की भाग-दौड़ वाली जिन्दगी भीतर से कही तोड़ती हुई महसूस होती है। प्रतिदिन वह भीतर से टूटती जा रही है। xxx वर्णनानुसार पहले ही दिन ज्यों ही मैथू को दूध पिलाने की उसे याद आती है, तो स्कूल में ही वह अपना आंचल भीगा हुआ पाती है। स्टाफ रूम में वह बे तरह फूट-फूट कर रोने लगती है। किन्तु कोई भी उसकी मनःस्थिति को जान नही पाता। उसके मातृत्व की प्यास को समझना बहुत कठिन है।

मध्यवर्गीय परिवारों की शहरी जिन्दगी की झलक विवेच्य कहानी के कई हिस्सों में देखने को मिलती है। xxx एक बार पिक्चर देखर चित्रा और दिवाकर लौटते है,तो बुखार में तप रही मैथू को देखकर दोनो चिंतित होते है। दोनों को उसके स्वास्थ्य से अधिक अपनी नौकरी की चिंता है। चित्रा की आवाज तेज हो गयी -" तुम नहीं जाओगे तो नुकसान तुम्हारा ही होगा। ···· नौकरी चली जायेगी ···· मेरे न जाने से सवा सौ लड़किया बैठी रह जायेगी ··· इतनी गैर जिम्मेदार मैं नहीं हूँ।"वह अपने अध्यापन कार्य के प्रति पूर्णतः सजग है। बेटी बुखार में तड़प रही है, फिर भी वह छुट्टी नही लेती। टैक्सी के पैसों की वह सोचती है, किन्तु बच्चे के बुखार की नही। महानगरीय जीवन में कामकाजी नारियों के लिए बच्चों की परवरिश एक सरदर्द है। नौकरी,पति और बच्चे इन तीन-तीन मोर्चों पर उन्हे जीवन की लड़ाई लड़नी पड़ती है।

सुबह उठने पर पहले पेपर तैयार करना ,फिर बच्ची का बुखार लेना लेकिन बेचारी माँ ! वह करे तो भी क्या ? अपनी बच्ची के माथे को ही वह चूमकर रह जाती है। कहानी का अंत सचमुच संवेदनापूर्ण हुआ है।(132) और उसकी मार्मिकता पाठकों के मन को आद्र कर देती है।

सुधा अरोड़ा, ममता कालिया, उषा प्रियंवदा और निरूपमा सेवती में समान्तर कहानी आन्दोलन में एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा रही है, जीवन के विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत करने की । समान्तर आन्दोलन की कहानियाँ 'युद्धविराम' संग्रह में संकलित है। शुरू की आत्मकेन्द्रित दुनिया से बाहर आने का प्रमाण उनकी 'बलवा' और 'दमनचक्र' जैसी कहानियों से मिलता है - लेकिन इन कहानियों की दुनिया बहुत प्रामाणिक और विश्वसनीय नही लगती। 'दमन-चक्र' वर्तमान समाज व्यवस्था में युवा वर्ग के भटकाव को महज सतह पर छूती हुई गुजर जाती है। उनकी इन कहानियों की अपेक्षा 'युद्धविराम' 'तानाशाही' और 'पति परमेश्वर' जैसी कहानियाँ अधिक सफल बन पड़ी हैं - ये कहानियाँ अपने जाने पहचाने क्षेत्र में रहकर भी उसके विस्तार की कोशिश का उदाहरण है। कैसे एक खास समय के बाद आदमी अपने ही घर में ,अपने ही जवान बेटे-बेटियों के बीच अकेला और फालतू होता चला जाता है। यह अहसास 'युद्धविराम' में काफी विश्वसनीय ढंग से उभारा है। 'तानाशाही' और 'पति परमेश्वर' में परिवार की पृष्ठभूमि मे ही रूढ़ियों और दुराग्रहों से मुक्त होकर अपने विवेक के अनुसार जीवन जीने का आग्रह स्पष्ट है।

मे ही रूढ़ियों और दुराग्रहों से मुक्त होकर अपने विवेक के अनुसार जीवन जीने का आग्रह स्पष्ट है। (133)

3.27 **निरूपमा सेवती :** महानगीय जीवन की विषमताओं फिल्मी जगत एवस्ट्रा, कामकाजी महिला की त्रासदी और यौन शोषण की शिकार नारियों पर सशक्त लेखन करने वाली रचनाकार है। (134) प्रसंगवश निरूपमा सेवती की 'भीड़ मे तुम ' कहानी में यह ऊब का बोध नगर बोध से जुड़ा है जहाँ वह स्वयं को मिसफिट अनुभव करती है और कहती है - " और मैंने बड़े डूबते दिल से महसूस किया है कि मैं उस छोर पर खड़ी हूँ , जहाँ विश्वास अविश्वास से कटने लगता है और उसके कट जाने में और कही गायब हो जाने में भी अब एक झटके की देर भर है।"(135)

निरूपमा सेवती अपने वेबाक चित्रण और अभिव्यक्ति के लिए प्रसिद्ध है। उनकी कहानियों में विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध और विवाहेत्तर प्रेम प्रसंगों का चित्रण कलात्मक चित्रण मिलता है। विवेच्य शोध ग्रंथ के हम रेखांकित करना चाहेंगे कि निरूपमा सेवती की कहानी 'ठहरी हुई खरोच', में दो बहिनों के विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों का ही चित्रण है। दोनों बहिने भिन्न स्वभाव की है और अपने अपने ढंग से विवाह पूर्व सम्बन्ध रखती है। इनमें बडी बहन अपने स्वभाव तथा पारिवारिक परिस्थितियों के कारण अपने प्रेमी से विवाह करने में असफल रहती है ओर अंत तक जीवित रहकर अविवाहिता के रूप में वेदना और कुंठाग्रस्त जीवन बिताती है। दूसरी ओर छोटी बहिन प्रेम में कुछ आगे बढती है, किन्तु विवाहपूर्व गर्भ रह जाने के कारण गर्भपात की दवा खा लेती है और फिर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। कहानी दुखांत होने के कारण इसका संपूर्ण प्रभाव एक प्रकार की टीस उत्पन्न करता है। बड़ी बहिन की ओर से यहाँ कहानी लिखी गयी है -[xxx] "इन्ही दिनो मैने पहली बार उसकी (छोटी बहिन की) डायरी पढ़ ली, जान-बूझकर नहीं, अचानक सामने आने पर , -'मेरा मन चाहता है कोई मुझे जोर से भींच ले-',(अंकल बहुत अच्छे लगते है। जब वह हाल पूछने के लिए प्यार से खींच लेते है, तो उनके वे खुरदरे से हाथ गर्दन पर कितनी गुदगुदी कर देते है। पर उनसे कैसे कहूँ ? वह अंकल जो है ....हाय आज स्कूल जाने को मन नही करता। कुछ भी करने को मन नहीं करता। यूं ही लेटी रहू, बस सोई रहू', 'ईशू कल छत पर मिला था।(136) ' कैसे उसने ..." इस प्रकार वासना प्रेम समर्पण और आसक्ति के क्षणों का वर्णन कलात्मक ढंग से निरूपमा सेवती ने रचा है।

परन्तु निरूपमा केवल यौन प्रसंगो की रचनाकार नही है बल्कि उनके पास मानवीयता, करूणा और मातृत्व की भावनाएँ भी कम महत्वपूर्ण नही है। प्रसंगवश निरूपमा सेवती की कहानी 'माँ यह नौकरी छोड दो' एक ऐसी मां की कहानी है जो अपने बेटे की शिक्षा के लिए किसी अफसर के यहाँ रसोई बनाने की नौकरी करती है। मां को आशा है कि उसका बेटा पढ़-लिखकर बड़ा अफसर बनेगा। [xxx] मां पारवती अपने पति से पिटकर बिना

किसी शिकायत के अलग रहने लगती है। वहा सारी जिन्दगी अकेली दुख सहना पसन्द करती है। वह अपने बेटे को समझाती है -" कमरा ही तो है यह , तेरे बाबा का सिमेंट का कमरा था.... यह ईटों का है। अपने पति के विरूद्ध एक शब्द भी वह किसी से नही कहती। अफसर के रसोईघर में परवती अपने बेटे को बाहर खेलने के लिए भगा देती है। मां की हृदय की वेदना, पीड़ा , छटपटाहट कई जगह स्पष्ट होती है। वह गिनती करना नही जानती, पर नितान्त व्यवहार कुशल है। साहब के व्यावहार से वह दुखी है। घर की ओर जाती हुई मां को देखकर लड़के को वह नितान्त ही पराई लगती है जितनी वह साहब का गाउन पहने रसोईघर में लगती है। (137)

साहब के अविवाहित होने से यह संकेत भी मिलता है कि उन दोनों में कुछ सम्बन्ध स्थापित हुए हो। साहब उसके साथ पत्नी जैसा व्यावहार करता है। लडका अपनी मां से यह नौकरी छोड़ने के लिए कहता है,पर दूसरी जगह नौकरी करने पर भै ऐसे ही साहब मिलेंगे। अपने बेटे की पढ़ाई के लिए किया गया माँ का यह त्याग महान है। (138)

निरूपमा सेवती की कहानियों में सूर्यबाला की तरह नकली अभिजात्य और पाखण्ड़ नहीं है वल्कि व्यावाहारिक और टुच्चे जीवन की वास्तविकता भी है। कहना न होगा कि नारी के परिवरिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के विघटनों का परिणाम निरूपमा सेवती की कहानी 'टुच्चा' द्वारा परिलक्षित होती है। आर्थिक तनावों को उजागर करते हुए सेवती जी ने कहानी में स्पष्ट किया है कि जहाँ शरीर की व्यवस्था करने के लिए आर्थिक सम्पन्नता की आवश्कता होती है, वही मानसिक पारितोष के लिए यौन उत्कंठाओं की पूर्ति भी अनिवार्य है।

'टुच्चा' कहानी नारी तन मन की आवश्कताओं की पूर्ति के लिए स्वयं अपन अस्तित्व खो चुकी है और धरीहीन जीवन बिता रही है -"वह एक उपकरण मात्र बनकर रह गयी है। राशन से लेकर आफिस तनाव से लेकर तृप्त हुए जानवरों जैसे जिस्म ... घर के लिए समस्त आवश्कताओं की पूर्ति के लिए शारीरिक पूर्ति और बॉस के लिए मानसिक पूर्ति के लिए कुछ भी नही ।"(139)

'नारी' का बॉस के साथ जुड़ने का मूल कारण आर्थिक तनाव है, जो उसके मानसिक अन्तर्द्वंद्व से स्पष्ट होता है -"वह आज तक किस चीज के लिए भागती रही है ? ... क्या तलाशती रही है ? कभी पेट की भूख जागती रही है, कभी शरीर की। मन की भूख को तो उसने पहले ही सड़ियल चीज मान लिया था। वह अपनी जिन्दगी को अपने लिए क्यों जिये ? यह सोचने की कभी फुर्सत नही मिली।"(140) कहानी के अन्त में बॉस का दिया हुआ सौ का नोट उसकी मुट्ठि में भिंचता जाता है और उस लगता है कि सारी धरती ही एक कागज के टुकड़े की बनी है... सारे समन्दर पर एक सौ का नोट बिछा हुआ है। xxx एक प्रकार से 'टुच्चा' कहानी भारत वर्ष के महानगरीय जीवन की एक हकीकत है। जहाँ विवाहेत्तर सेक्स सम्बन्ध

केवल आर्थिक विवशता के कारण बनाए नही जाते है बल्कि कोई कोई पात्र या प्राणी अपनी अस्मिता,अस्तित्व और जिजीविषा के लिए भी साध लेता है।

कलात्मक प्रौढ़ता और रचनादृष्टि के स्तर पर निरूपमा सेवती की कहानी उनकी 'काले खरगोश', 'कब तक' और 'विरासत' आदि की तुलना में उनके सर्जनात्मक विचलन को ही उदाहृत करती है। 'आतंकबीज' की युवतियाँ निरूपमा सेवती की अपनी ही परम्परा का विरोध करती है क्योंकि कैसी भी नई मूल्य-दृष्टि के अंवेषण की अपेक्षा वे नैतिक स्खलन की राह जाकर उपभोक्ता संस्कृति का वरण करती है। कहानी के अन्त में जिस विकल्पहीनता, संशयात्मक और दुविधा का संकेत है, अंततः वे सब भी आदमी की टांगों को कमजोर करने वाली चीजे है और इसका लाभ आम आदमी को न मिलकर इस समूची व्यवस्था के पक्ष में ही जाता है। (141)

3.28 **दीप्ति खाण्डेलवाल** (1930 ई.) : नारी मन के विविध स्तरों और पर्तो का सूक्ष्म विश्लेषण करनेवाली विशिष्ट कथा-लेखिका है। **'कडवे सच'**(1975), **'धूप के अहसास'** (1976), **'वह तीसरा'** (1976), **'सलीब पर'** (1977), **'दो पल की छाँव'** (1978), **'नारी मन'** (1979), **'औरत और बातें'** (1980) आदि आपके प्रकाशित कहानी संग्रह है। आपने आधुनिक संदर्भ में परम्परावादी, सामाजिक मानसिकता पर बार-बार प्रहार किये है। आपकी कथा-भूमि तो स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के दायरे में सीमित है किन्तु इस दायरे में नारी के जितने भी रूपों और छवियों को आपने उकेरा है, वे अन्यत्र दुर्लभ है। इसमे संदेह नही कि दीप्ति खण्डेलवाल नारी के प्रति अत्यंत संवेदनशील है। उसके प्रति उनमें गहरी सहानुभूति है। वे उसकी प्रत्येक प्रकार की पीडा से परिचित है, किन्तु वे इस पीड़ा के मूल में सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियों और पूँजीवादी व्यवस्था को नही देख पाती। इसे वे पुरूष की कठोरता ,क्रूरता, और जडता का परिणाम मान लेती है। इसीलिए उनकी कहानियाँ हमें छूती तो है, किन्तु विचलित और प्रेरित नही करती। (142)

दीप्ति खण्डेलवाल की कहानियों की चर्चा उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी 'अर्दशती के महिला लेखन' में की है। यथा [xxx] दीप्ति खण्डेलवाल की कॉलेजो में 'रैगिंग' के विषय पर लिखी एक मार्मिक कहानी आज भी याद है। (143) उसमे मेडिकल कॉलेज के सीनियर लड़के एक फ्रेशर को घेरकर जबरदस्ती उसके साथ एक ऐसा नितान्त फूहड़ और अश्लील मजाक करते है कि वह किसी को अपना मुख दिखा नही सकता और आत्महत्या कर लेता है। दीप्ति खण्डेलवाल ने अपने सातवे-आठवे दशक के दौर में बहुत ही बोल्ड कहानियाँ लिखी है। अर्थ शब्द के विभिन्न अर्थो को विकीर्ण करती हुई दीप्ति जी की अर्थपूर्ण कहानी 'अर्थ' नारी-जीवन से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण तत्वों को रेखांकित करती है।

पति के रहते हुए भी कुमुद एकाकिनी बनी हुई है। वह सोचती है -" सेठ जी तो इस आग, इस प्यास का अर्थ ही नहीं समझ पाये है। अपने सहपाठी वीरेन्द्र की काली- कजरारी आँखों में वह अपने सपनों का अर्थ

ढूँढ़ लेती है। वास्तव में कुमुद सेठ जी की तीसरी ब्याहता है। विवाह की पहली वर्षगांठ पर सेठ जी कुन्दन का हार पहनाते है तो क्रोध से भड़क उठती है। वह न उनके आलिंगन से पिघलती है न स्वर से। वह कहती है- " किसी क्यारी से अनायास खिल आये गुलाब का अर्थ वे क्या समझेंगे ?" (144)(दीप्ति खण्डेलवाल :अर्थ : नारीमन पृ. 9)

प्रसंगवश संगीत की शिक्षा देते हुए रखे युवा मास्टर शरद के प्रेम में कुमुद डूब जाती है और एक दिन उसका हाथ पकड़ कर चल देती है। मृत्यु के तीसरे दिन सेठ जी का 'विल'पढ़ा जाता है -"मैं यह कोठी, कार,और तीन हजार मासिक की आय देता हूँ .... कुमुद रानी प्रसन्न रहे मेरी भगवान से यही प्रार्थना है।"[xxx] थर-थर कापती कुमुद अभी तक यही मानती रही कि उसके निर्मम ,स्वार्थी पति सेठ ,प्रेम जैसे शब्द का कोई अर्थ नही समझते है। किन्तु विल सुनकर उसे लगा कि वे सचमुच प्रेम करते थे। (145) सुधी पाठक जानते है कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न कामकाजी नारी का अहम पति के अहम से टकराना, आधुनिक दाम्पत्य जीवन की घोर विभीषिका है। दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी 'तपिशके बद' पति-पत्नी के अहम के टकराहट की कहानी है। कहानी में सुमी बैंक में अकाउंटेंट है। उसका पति आनन्द जान बूझकर उसकी अहवेलना करता है फिर भी सुमी अपने बेटे से अधिक अपने पति का ध्यान रखती है। आनन्द हमेशा हड़बड़ी मचाए रहता और बेचारी सुमी पति की मीठी बात के लिए तरसती रह जाती है। उसे पूरा विश्वास है कि "मेरी लम्बी पतली उंगलियों का स्पर्श आज भी किसी पुरूष को पागल बना सकता है।" (146) उसे अपने पति आनन्द के वे चाटुकारी शब्द याद आते है -"इन स्वादिष्ट करेलो के लिए प्यार सुमी। पता नही सुमी जैसे जीते जागते रूप सागर को आनन्द क्यों प्यासा रख रहा है ?

कहानी में वर्णन है कि सुमी द्वारा पिक्चर के लिए इनकार करने पर आनन्द कहता है -" क्या समझने लगी हो अपने आप को ... ,मैं पल भर में ठुकरा सकता हूँ। (147) आनन्द क्यो नहीं समझता है कि पिक्चर जाने के लिए भी तो मन चाहिए । बैंक से थकी हारी लौटी ,व्यंगबाणों से घायल सुमी का मन पिक्चर जाने के लिए क्यों कर होगा ? इतनी जरा-सी बात के इन्कार करने पर कामकाजी नारी को घर से निकाल दिये जाने की धमकी दी जाती है। यह भारतीय जन जीवन में पुरूष प्रधान समाज का खोखला अहम है। जहाँ वह नारी को अपने उपभोग की वस्तु और इच्छा-पूर्ति का माध्यम समझता है।

दीप्ति खण्डेलवाल को **'हव्वा'** कहानी के माध्यम से ,स्त्री के उन्मुक्त व्यवहार और जीवन शैली के वर्णन के कारण पर्याप्त प्रसिद्धि मिली है। आर्थिक स्वतंत्रता के कारण नारी जीवन की उन्मुक्त विचारधारा में आये बदलाव को दीप्ति खण्डेलवाल ने अपनी कहानी **'हव्वा'** में रूपायित किया है। छत्तीस वर्ष की मिस रतिलाल, पप -पुण्य की किसी 'फिलासफी' को न मानते हुए अपनी इच्छा के अनुसार जीवन जीने वाली नारी है। बड़ी बहन

की आत्महत्या , माँ की निर्ममता एवं मुंछदर चाचा द्वारा बचपन मे किया गया बलात्कार , इन सारी बातों से मिस रतिलाल असंतुलित हो गई है। [148] एअर इंडिया में रिसेप्सनीस्ट के इंटरव्यू में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में वह कहती है -" लाइफ इज टुबी लिव्ड, नोट टू बी डैबूड।' मिस रतिलाल का सिद्धांत है -" यदि मर्द औरत से खेल सकता है, तो औरत भी मर्द से खेल सकती है। फ्लाइट लैफ्टीनण्ट कोहली उसके पहले मेजर अनुभव है। वह कहती है -" मैं तो अपनी नैचुरल , 'अर्ज' के लिए किसी पुरूष का साथ चाहती हूँ, जैसे पुरूष नारी से चाहता है। कोहली से चटर्जी तक उसका अनुभव बढ़ता जाता है। वह इन बातों को वेश्यापन न मानकर 'अनुभव' और 'थ्रिल' मानती है। दूध की जगह शराब तक पीने लगती है। शादी, बच्चे आदि को वह 'नान्सेन्स' कहती है। अपनी बीती हुई जिन्दगी के विषय में वह कहती है -"क्या मिलता है एक औरत को अंत में ? एक पति,कुछ बच्चे, यही न.....। [149]वस्तुतः वह मात्र एक नारी बनकर जीना चाहती थी। पुराने मूल्यों को तोड़ना इतना सहज नही है, फिर भी मिस रतिलाल उसे तोड़ने का प्रयत्न करती है। वैसे भी सुनंत कौर के ग्रंथ 'समकालीन हिन्दी कहानीः स्त्री-पुरूष सम्बन्ध में कहा गया है कि "प्रेम अब बहुत स्थिर भावना बनकर रह गया है। प्रेम पात्र बदल जाना अत्यन्त साधारण बात है। [150]

3.29 **रवीन्द्र कालिया** : कतिपय आलोचक यह मानते है कि रवीन्द्र कालिया अकहानी आन्दोलन से जुड़े हुए रचनाकार है। आपकी कहानियों में भी संत्रास विसंगति, तनाव, अजनबीपन, ऊब आदि का चित्रण देखा जा सकता है। आपके कई कहानी संग्रह, **'नौ साल छोटी पत्नी'**(1969), **'काला रजिस्टर'** (1972), **'गरीबी हटाओ'** (1976), **'चकैया नीम'** (1979) प्रकाशित है। इधर की कहानियों में आपके सामाजिक संदार्भो को अधिक महत्व दिया है। 'गरीबी हटाओ' संग्रह की कहानियों की समीक्षा करते हुए विवेक राय ने लिखा है -" इसमे कथाकार मोहन के परिवार की गरीबी के ईर्दगिर्द रहता है। भोजन ,वस्त्र, मकान, शिक्षा, जीविका, और प्रतिष्ठा आदि सारे सामाजिक परिप्रेक्ष्य सामने है। परदे में जो वस्तु है, वह है व्यवस्था, जिसमे औद्योगिक दौड़धूप की गहमागहमी भरे नगर की गरीबी ,बेरोजगारी औरा दीनता अपने चर्मोत्कर्ष पर है।" यहाँ भी देखा जाये तो लेखक ने विसंगति को ही मूर्त किया है। बम्बई जैसे महानगर में एक ओर उद्योगपतियों की जगमगाती हुई खुशहाल जिन्दगी है , दूसरी ओर चाल में रहनेवालों का नारकीय जीवन । इस विसंगति को उभारने में लेखक का सुख गंभीर नही हो पाया है। इसे लेखक की शिल्पगत कमजोरी माना जायेगा। सम्भवतः अभी रवीन्द्र कालिया 'अकहानी आन्दोलन' के दौर के संस्कारों से मुक्त नही हो सके है। [151]

वास्तव में रवीन्द्र कालिया महानगरीय जीवन की आपाधापी ,विसंगति, विद्रूपता में संवेदनशील मानस के किंकर्तव्य विमूढ़ होने की स्थिति का वर्णन

शहर,कस्बा या फिर गाँव छोड़कर महानगर की इन त्रासद और भयावह विसंगतियों से जूझने निकल पड़ा है - जहाँ दफ्तर की कमीनगी और टुच्चापन है। अर्थहीनता के बीच जिन्दा रहने की बाध्यता है। 'मै' बड़े शहर का आदमी', 'पचास सौ पचपन' और 'अकहानी' आदि कहानियाँ मान्यता प्राप्त संबंधों और मूल्यों के नकार की कहानियाँ है। इनका व्यंग्य एकोन्मुखी और केन्द्रीभूत न होकर अलग-अलग स्थितियों और संदर्भो को छूता हुआ निकल जाता है। (152)

अकहानी आन्दोलन से जुड़े लेखकों ने या तो आत्मसंघर्ष की प्राक्रिया से गुजर कर इससे बाहर आकर अपने रचना कर्म की सार्थकता प्रमाणित की या फिर वे लिखना ही छोड़ बैठे। रवीन्द्र कालिया और दूधनाथ सिंह यदि पहले प्रकार के लेखकों के उदाहरण है तो गंगाप्रासाद विमल दूसरे के। कालिया ने **'दफ्तर'** और **'काला रजिस्टर'** आदि कहानियों के माध्यम से अपनी और एक तरह से समूची अकहानी आन्दोलन द्वारा निर्मित सीमाओं से बाहर निकलने की एक उल्लेखनीय छटपटाहट दिखाई देती है। (153) 'काला रजिस्टर', 'चाल', और 'चकैया-नीम' जैसी कहानियाँ अकहानी की सीमाओं से बाहर निकाले की उनकी कोशिश का ही साक्ष्य है। उनकी कहानियाँ दाम्पत्य संबंधो और प्रेम के प्रभा मंड़ल को तोड़कर उनकी मानसिकता को पहचानती है और मानवीय सम्बन्धों की तरह में छिपी अमानवीयता को उद्घाटित करती है। कहना न होगा कि **'काला रजिस्टर'** कहानी 'धर्मयुग' पत्रिका के सम्पादक धर्मवीर भारती की अहंभरी प्रवृत्ति पर व्यंग्यात्मक चोट है जहाँ कालिया ने सह सम्पादक रूप में कार्य किया था।

3.3 समकालीन कहानी और जनवादी रूझान

समकालीन कहानी आन्दोलन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में विभिन्न प्रवृत्तियों रूचियों, रूझानों और विचारधाराओं के रचनाकार शामिल है। विगत पचास वर्षो। में प्रयोगवादी-प्रगतिशील रचनाकार अज्ञेय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ,रघुवीर सहाय, भी इसमे शामिल रहे है जिनके कवि-व्यक्तित्व को अधिक सराहा गया तो उनके समांतर राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, और कमलेश्वर ने मोहभंग ,बौद्धिकता विडम्बना को केन्द्र में रखकर केवल स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की रचनाएँ ही नही लिखी बल्कि वे मनोविश्लेषण एवं अस्तित्ववादी रूझानो से परिचालित रहे है। हालाँकि दावे उन्होने प्रगतिशील आस्थाओं और युगबोध से परिचालित होने के किये है। (154)

नयी कविता की तर्ज पर नयी कहानी आन्दोलन की चर्चा 1954-55 के इलाहाबाद लेखक सम्मेलन में हुयी। जिसमें हरिशंकर परसाई ,मुक्तिबोध और राजेन्द्र यादव आदि ने शिरकत की थी। (155) और यह भी आश्चर्यजनक तथ्य नहीं है कि नयी कविता के दावेदारों के बरक्त रेणु, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह ने आंचलिक कहानी की अभूतपूर्व संरचनाएँ पेश की है। नामवर सिंह ने भी नयी कहानी और एक शुरूआत' नामक लेख में 'नयी

कविता और नयी कहानी आन्दोलन की शुरूआत और समांतरता पर टिप्पणी की है कि हिन्दी में 'निकष' संकेत, हंस अर्द्र वार्षिक जैसे बड़े-बड़े साहित्य -संकलन निकाले गये, जिनमें नवलेखन की सभी विधाएँ दृष्टि ,वस्तु और शिल्पगत विविधताओं-सहित एक साथ प्रकाश में आई। नयी पीढ़ी की कहानियाँ यहाँ नयी कविता के साथ-साथ छपी। उस समय नयी पीढ़ी के बीच 'नयी कविता' बनाम 'नयी कहानी' जैसा कोई विवाद न था।(156) हंस अर्द्धवार्षिक संकलन में जहाँ मोहन राकेश , मार्कण्डेय, शेखर जोशी, हरिशंकर परसाई की कहानियाँ छपी , वही निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' और मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह, श्रीकान्त वर्मा, आदि की 'नयी कविता' भी साथ-साथ पढ़ने को मिली। इसी प्रकार अमरकान्त ,राजेन्द्र यादव,मोहन राकेश की कहानियों के साथ रघुवीर सहाय की 'खेल' कहानी भी प्रकाशित हुई। यही बात 'निकष' में प्रकाशित कहानियों के बारे में भी कही जा सकती है। सभी जानते है कि 'निकष' के संपादक 'नयी कविता' के पक्षधर है ,फिर भी उसमें मोहन राकेश, शेखर जोशी, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, रेणु, आदि ने सहर्ष अपनी कहानियाँ दी। रघुवीर सहाय, मनोहरश्याम जोशी, राजेन्द्र किशोर, जैसे लेखकों की कहानियाँ पढ़ने को मिली, जिनका संबंध मूलतः 'नयी कविता'से था और आज जिन्हे नयी कहानी के पक्षधर नये कहानीकार तो क्या ,कहानीकार-मात्र मानने के लिए भी तैयर नहीं। परन्तु नवलेखन के व्यापक परिवेश को देखते हुए नयी कविता के वजन पर कहानी में नयी कहानी अकविता की तर्ज पर अकहानी -समानांतर कविता की बहर में समांतर कहानी वामपंथी कविता की तर्ज पर वामपंथी कहानी और जनवादी कविता व जनवादी कहानी की समानान्तर प्रवृत्ति कोई चौकाने लायक बात नही है। सारांश रूप में हम सन् 1962-65ई.के बाद के समस्त कहानी आन्दोलनों को समकालीन कहानी में परिभाषित करते है।

कतिपय आलोचकों ने समकालीन कहानी को एक आन्दोलन के रूप में प्रस्थापित कर समकालीन की प्रवृतिगत व्याख्या कर डाली। समकालीन की प्रवृत्तिगत व्याख्या में वे ही सब दावे, घोषणाएँ और अपेक्षाएँ थी जो किसी आन्दोलन में होती है। गंगाप्रसाद विमल, शैलेश मटियानी, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, धनंजय, नरेन्द्र मोहन, विनय आदि ने अपने-अपने ढंग से समकालीन के प्रवृत्तिगत अर्थ पर ही बल दिया।

वस्तुतः समकालीनता अपने युगबोध, इतिहास बोध और समसामयिक चेतना से जुड़े होने का भाव बोध है। यह अपने समसामयिक चेतना से जुड़े सम्पृक्ति की अवधारणा है। समकालीन स्थितियों, परिवर्तनों और ऐतिहासिक संक्रमणो के प्रति रचनाकार और दृष्टा का एक अपना विशेष दृष्टिकोण हो(157) । वह अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनैतिक ,आर्थिक और विश्व चेतस परिस्थितियों के प्रति विशेष रूख अपना सकता है। (158) वैसे समकालीन कहानी के परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श और दलित विमर्श का अपना आन्दोलन परक महत्व भी कम प्रहारक नही है। समकालीन कथा परिदृश्य में स्त्री लेखन ने अपनी अलग पहचान बनाई है। पहले जहाँ स्त्री लेखन को

'काउच' लेखन कह उसका उपहास किया जाता था वहीं अब उसे 'स्त्री विमर्श' से नवाजा जा रहा है। स्त्री की आत्ममुग्धता टूट रही है। वह देवदासी और आधुनिक समझदार मशीनी गुडिया की सीमा को तोड रही है। (159)

प्रारंभ में स्त्री की जद्दोजहद अपने आपको रेखांकित करना था। अपनी पहचान को स्वयं गढ़ना उसके लिए अनिवार्य था। इसलिए वह विरोध का रास्ता अख्तियार करती है। उसका विरोध हर उस बिन्दु पर था जो उसे दोयम दर्जे की ओर ले जाता है। सीमोन द बुआर का नारीवाद यहीं से शुरू होता है। वे मानती है कि नारी को एक साँचे में ढ़ाला जाता है, उसे गढ़ा जाता है। xxx नारी जन्मना अबला नही होती है बल्कि उसे सामाजिक संरचना में दोयम दर्जे की स्थिति ही दी जाती है।

समकालीन कहानी के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में जहाँ विभिन्न आन्दोलनों के तहत कृष्णा सोबती, मन्नू भंड़ारी, सुधा अरोड़ा, निरूपमा सेवती, और दीप्ति खण्डेलवाल ने नयी कहानी आन्दोलन व समान्तर आन्दोलन के तहत नारी की की अभिनव व संघर्षशील छवि रची है वही मृदुला गर्ग, कृष्णा अग्निहोत्री, नमिता और नासिरा शर्मा ने उसे युगान्तकारी स्वरूप में रचा है। कृष्ण बलदेव वैद्य ने नारी की परम्परागत छवि की जगह उसे आधुनिक स्वरूप में अंकित किया है तो उषा प्रियंवदा ने उसे भारतीय परिवेश और विदेशी परिवेश के बीच अन्यत्र ईयता अस्मिता प्रदान की है। मृदुला गर्ग ने नारी के आंतरिक और बाह्य परिवेश के द्वंद्व को रेखांकित किया है।

जनवादी कहानी आन्दोलन के अन्तर्गत प्रगतिशील प्रगतिवादी प्रवृत्तियों के विकास क्रम में काशीनाथ सिंह, ज्ञानरंजन ,उदय प्रकाश,संजीव,सृंजय, शिवमूर्ति और रोहिताश्व आदि ने नारी के संघर्षशील स्वरूप और आधुनिक माना, तथा स्त्री-मुक्ति के प्रसंगो को रूपायित किया है। काशीनाथ सिंह ने जनवादी प्रवृत्ति के लोकतांत्रिक स्वरूप को रेखांकित करते हुए कहा है - "जनवादी का मतलब है 'डेमोक्रेटिक'। जनवादी चेतना अर्थात जनतांत्रिक चेतना । वह चेतना 75 में भी थी और आज भी है - उतार पर नही,बल्कि उभार पर,बढ़ाव पर। एक फर्क के साथ। तब कहानीकारों ने स्वयं को सीमित कर रखा था। राजनीतिक-आर्थिक विषमताओं और विसंगतियों के चित्रण तक, भ्रष्टाचार,घूसखोरी,बेईमानी, लूट खसोट और पाखंड़ के उद्घाटन तक। इन कहानियों में लेखक की 'राजनीति' और 'दृष्टि' दिखाई पड़ती थी। 2000 के बाद के युवा कहानीकारों की दृष्टि मुख्यतः मानव मूल्यों के क्षरण और उनके बदलते रूप पर है। आप नही जान सकते कि राजनीति क्या है। लेकिन है वह प्रगतिशील और जनवादी ही। (160)

3.31 **मृदुला गर्ग** (1938) : प्रेम और काम संबंधों का आधुनिक दृष्टि से खुला विश्लेषण करने वाली एक सशक्त कहानीकार के रूप में चर्चित है। **'कितनी कैदे'** (1975), **'टुकडा-टुकडा आदमी'** (1977), **'डेफोडिलजल रहे है'** (1978), **'ग्लेशियरसे'** (1980), **'उर्फसैम'** (1986), **'समागम'** (1996), **'मेरे देश की**

के बदले माहौल में परम्परागत नैतिक मूल्यों का विघटन,सामाजिक रिश्तों का खोखलापन, प्रेम और विवाह से संबद्ध समस्याएँ, सेक्स जीवन की विसंगतियाँ और अतृप्तिबोध, पुरूष-निरपेक्ष नारी का व्यक्तित्व और उसकी मानसिकता बलात्कार का मनोवैज्ञानिक प्रभाव और उससे मुक्ति, उच्च वर्गीय अत्याधुनिक जीवन की विसंगतियाँ, विदेश में बसे भारतीयों की मानसिकता आदि अनेक जीवन संदर्भों को केन्द्र में रखकर आपने कहानी की एक जमीन तैयार की है। आपकी इधर की कहानियाँ नये संदर्भों को लेकर सामने आई।

'उर्फ सैम' संग्रह की **'अगली सुबह'** कहानी में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद दिल्ली में होने वाले सांप्रदायिक दंगे और विनाशदूत कहानी में भौपाल गैस त्रासदी का चित्रण किया गया है। बेनकाब कहानी में चम्बल क्षेत्र में व्याप्त अत्याचार और शोषण का अंकन किया गया है। इस प्रकार इधर आपकी कहानियों का कथा-फलक विस्तृत हुआ है। आपकी कहानियों में हास्य-व्यंग्य और फंतासी की प्रवृत्ति बढ़ी है। इनके माध्यम से आपने गहरी पीड़ा का ही इजहार किया है। आपकी कहानिया बहुत कुछ आपके जीवनानुभव और सोच की कहानियाँ है, उन्हें किसी सांचे या आन्दोलन के साथ जोड़कर नहीं देखा जा सकता। (161)

सुधी ,पाठकों के सामने यह तथ्य उजागर है कि मृदुला गर्ग की कहानियाँ 'कितनै कैदे' नैतिक जकड़न ओर उससे उभरने की कोशिश से सम्बद्ध स्थितियों-मनःस्थितियों की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ एक ओर आधुनिक व्यक्ति की ग्रंथीबद्ध मानसिकता से सम्बन्ध नैतिक मानवीय पहलुओं को गहराती है तो दूसरी ओर पारिवारिक सम्बन्धों के मौजूदा संकट की ओर संकेत करती है। पहले प्रकार की कहानियाँ है **'कितनी कैदें'** और **'झुटपुटा'**। **'कितनी कैदें'** में संवेदना ओर संरचना का अपूर्व संयोजन हुआ है। यौन-ग्रंथि के बनने की पूरी प्रक्रिया और विवाहोपरान्त उसके मनोवैज्ञानिक दबावों को इस कहानी में बड़े
कौशल से बुना गया है। लिफ्ट के द्वारा नदी के भीतर पचहत्तर फुट गहरे तक की यात्रा का प्रसंग मीना की अन्तर्वेदना ओर मानसिक स्थिति को व्यक्त करने में बेहद कारगर रहा है। कहानी की संरचना में लिफ्ट सिर्फ शिल्प साधन नही है बल्कि मीना के मनोदशा के अनुकूल होने के कारण कहानी में उसकी निरन्तर जीवन्त उपस्थिति है। लिफ्ट चढ़ते ही हमेशा की तरह बन्द जगह पर आकर उनका सिर घूमने लगा था। उबकाई आने लगी थी और दिल जोरों से धड़कने लगा था। लग रहा था जैसे उसे जीवित ही कफन में बांधकर नीचे फेंक दिया गया हो। उसका पति मनोज , लिफ्ट में उससे यौन संपर्क स्थापित करना चाहता है तो वह घबड़ा उठती है, असहज हो उठती है। उसका संपूर्ण व्यवहार और स्वभाव 'एब्नार्मल' हो जाता है। (162) एक प्रकार से 'कितनी कैदे' कहानी पुरूष वर्ग की यौन बुभुक्षा और नारी मन की सहज संस्कारों के तहत प्रतिरोध की रचना है।

मनोविश्लेषण की शब्दावली में यह दमित वासना और कुंठित मनोवृत्ति का ही दिग्दर्शन है। यहाँ यौन ग्रंथि द्वारा उत्पन्न मानसिक जकड़न ही है जिससे उसकी यह हालत हो गयी है। आसन्न मृत्यु और दहशत भरा माहौल भय और वासना का संचाार करके उसकी मानसिक स्थिति को तनावपूर्ण बना देता है 'भय से विस्फारित उसकी आँखो में' एक अद्‌भुत मदहोशी का भाव है। दाँतों के नीचे भिंचकर सूज आये होठ खुलकर फैले है जिसमें दाँत कुछ बाहर निकल आये है। भय और वासना के मिश्रण से उसका चेहरा वीभत्स बन गया है। इस तनाव पूर्ण मनःस्थिति में ही वह यौन ग्रंथि की गिरफ्त से मुक्त होती है। पर यही कहानी खत्म नहीं होती। यहाँ से मनोज की उद्विग्नता और दुविधा शुरू होती है। वह सोचता है -" क्या मैं इसकी पिछली जिन्दगी के शिकंजों से बरी रह सकूँगा ? इस औरत के साथ जी सकूँगा ? [163] इस तरह इस कहानी में मनोग्रंथि से मुक्त होने के बाद के नैतिक संकटो की ओर संकेत किया गया है। 'झुटपुटा' भी किशोरावस्था में पैदा हो जानेवाली यौन-ग्रंथि की ही कहानी है जिसे लेखक ने कहानी के अन्त में टूटते हुए दिखाया है। अस्पष्ट और अटपटे ब्यौरों के कारण कहानी कोई प्रभाव नहीं छोड़ती।

मृदुला गर्ग ने अपनी कहानियों में किसी इन्हीविशन-वर्जना को पाला नहीं है। अगर पुरूष वर्ग अपनी रिक्तता, शून्यता को विवाहेत्तर यौन सम्पर्क से प्रेरित करने की ख्वाहिश पाल सकता है तो नारी-विशेष क्यों नही ? प्रसंगवश मृदुला गर्ग की कहानी 'अवकाश' की नायिका दूसरे मर्द से देह सुख चाहती है। पति महेश से अगाध प्रेम करते हुए समीर के प्रति आसक्ति उसमें इतनी जबरदस्त है कि वह महेश को छोड रही है। नायिका भोगवादी मानसिकता तथा क्षणवाद में विश्वास रखने वाली प्रतीत होती है। जाते-जाते वह अपने पति को यौन सुख देती है। लेखिका लिखती है -"अहम को खोकर आदि पुरूष और आदि नारी में बदल गये। [164] अपने पति को बेचारा कहकर पराये मर्द से देह-सुख की तरफ आकर्षित होने वाली इसप्रकार की नारी -पात्र विरले है मिलते है। 'कितनी कैदे' की मीना भी विवाह के पहले ही दो-तीन लडकों के साथ यौन संबंध स्थापित करती है। नशा तथा उन्माद की अवस्था में मीना आधुनिक बनने के पीछे अपने कौमार्य को गँवा बैठती है। बेपर्दा, बेहया-सी अपने शरीर को नंगा कर इसका आनंद लेती है। "मेरे साथ मेरा मुँह थामे-थामे वह नीचे आ गिरा। इससे पहले कि मैं समझ पाऊँ, वह मेरे भीतर प्रविष्ट हो चुका था। इस प्रकार का खुला चित्रण मिलता है। इस संबंध को किसी भी प्रकार से अनैतिक नही कहा गया बल्कि एक देह-सुख की मांग भर है। अब तक देह-सुख की अभिव्यक्ति पुरूषों द्वारा होती रही है पर बीसवीं शती का उत्तरार्ध नारी के इस मांग को लेखन में वाजिब मान रहा है। 'रूकावट' कहानी रीता और मदन के मुक्त यौन संबंध पर लिखी गयी है। रीता विवाहित है। मदन कई स्त्रीयों से सम्बन्ध रखनेवाला पुरूष है। रीता यह जानती है ,फिर भी मात्र यहाँ एक स्त्री-पुरूष नजदीक आते है। अपनी भूख

मिटाकर अपनी राह चले जाते है। इस प्रकार की जीवन शैली यहाँ प्रतीत होती है -" साडी ही नही उसके सभी कपडे कमरे मे तितर-बितर पड़े थे। मदन के कपड़ों से मिले जुले।.... उसने सोचा बह जओ। डूब जाओ। छिन्न-भिन्न हो जाओ फिर निकल आओ अवेतन मिलन से झिलमिलाते आलोक में। (165) इस प्रकार का मुक्त यौन-तृप्ति की मांग पाश्चात्य विचार के प्रभाव फलस्वरूप तो है ही पर मात्र पाश्चात्य का लीक पीटना अथवा अनुकरण की प्रवृत्ति मात्र नही है। यह स्त्री-पुरूष के जीवन का यथार्थ है। जिसे अब मान्यता दी जा रही है। (166)

विवाहेत्तर यौन सम्पर्क न तो उच्च वर्ग की धरोहर है और न ही निम्न वर्ग की सहज आकांक्षा । इसलिए मृदुला गर्ग की कहानी 'खरीदार' में संयुक्त सचिव के पद पर कार्य करने वाली एक ऐसी नारी का रूप उभरता है जो विवाह के बिना अपने मनचाहे प्रेमी को खरीदकर जैविक भूख मिटा सकती है। प्रेम का एक नया कोंण लेकर प्रेम एवं सेक्स को बड़ी गहराई एवं सूक्ष्मता से लेखिका ने रूपायित किया है। बीस हजार में रिश्ता तय करने पर नीना माँ से स्पष्ट कह देती है -" मैं यह शादी नही करूँगी। (167) स्वयं अविवाहित रहकर नीना दहेज लेनेवाले के मुँह पर तमाचा जडती है। वह आई.ए.एस पास करके सहायक कमिश्नर के रूप में नियुक्त होती है। कुछ ही वर्षो में पदोन्नति होकर वह ग्रह-मंत्रालय में संयुक्त-सचिव के पद पर पहुँचती है। वह न स्त्री है, न पुरूष, बस मात्र एक कुरसी है। वह विवेकशील है, कर्म कुशल है, स्त्री है तो क्या ?

मैसूर में ए.एस.पी के साथ दुबली-पतली ,बदसूरत नीना घोडे पर बैठकर लम्बाड़ियों के तांड़े पर सबसे पहले पहुंचती है। जीप आगे ले जाकर दंगाइयों को चेतावनी देती है। अचानक एक पत्थर आकर लगने से वह वही बेहोश हो कर गिर जाती है। अस्पताल में होश आने पर वह पहला सवाल पूछती है -"गोली तो नही चलानी पडी ?" वह कट्टर अहिंसावादी है,और स्वयं गोली खाकर भी ए.एस.पी को गोली चलाने का हुक्म नही देती। कहानी में ही वर्णन है कि नीना का प्रेमी सुनील कवि है। लेखिका ने इतनी बदसूरत औरत का प्रेमी एक कवि बनाकर हमारे बिम्ब को तोड़ा है। सुनील का साथ नीना के लिए बहुत आरामदेह है। उसमे न कोई तनाव है , न दबाव। कविता के साथ बगवानी का शौक भी सुनील को है, जिसे नीना बहुत पसंद करती है। (168) यह हमारे भारतीय जीवन का आधुनिक पक्ष है जो उतना ही यथार्थ परक है जितनी कहानी संरचना में कल्पना परक।

नीना के पास गाडी, बंगला, नौकर और उपभोक्ता वर्ग की सारी सुविधाएँ हैं। वह जब चाहे सुनील को अपने पास बुला सकती है,उसे रख सकती है। पारम्पारिक समाज में बीस-तीस हजार में दूल्हा खरीदो और आजीवन उसकी गुलामी चाकरी करती रहो। xxx नीना अपनी शिक्षा-दीक्षा ,कर्तव्य कुशलता से संयुक्त सचिव बनी है। वह जब चाहे जितने दूल्हे खरीद फरोख्त कर सकती है।

आधुनिक युग नें कैरियरिस्ट नारी-वर्ग ने प्रमाणित कर दिया है कि वह भी इस व्यावसायिक अवसरवादी दुनिया में पुरूष पात्र ,गिगेलो को अपनी वासनापूर्ति, अहम पूर्ति हेतु खरीद सकती है। जिस प्रकार सामन्तवादी, पूंजीपतिवर्ग का पुरूष नारी-देह का सौदा कर सकता था। परिवर्तित उपभोक्तावादी जीवन शैली ने स्त्री हो या पुरूष उसे एक विक्रय वस्तु में परिवर्तित कर दिया है। सुरेन्द्र वर्मा ने पुरूष-वर्ग की वेश्यावृत्ति-शैली के जीवन को केन्द्र में रखकर 'दो मुर्दो के लिए 'गुलदस्ता' उपन्यास भी रचा है। (169)

3.32 **कृष्ण बलदेव वैद्य :** कृष्ण बलदेव वैद्य ने 'नयी कहानी' के दौर में अपनी विशिष्ट महानगरीय बोध वाली कहानियो से आलोचकों का ध्यान आकृष्ट किया था। महानगरोंके जीवन में बढती हुई यांत्रिकता को आपने बहुत गहरे में जाकर महसूस किया था और अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाया था कि आज व्यक्ति अपने परिवेश से पूरी तरह कट गया है। यही नही व्यक्ति और व्यक्ति के बीच भी आत्मीय संबंधों में इतनी दरार पड गयी है कि वह केवल- "मैं, वह और तुम हो गया है।"डॉ.इन्द्रनाथ मदान ने इनकी 1954 से 1967 ई. तब प्रकाशित महत्वपूर्ण कहानियों में-, 'अगर मैं आज', 'उड़ान', 'जामुन की गुठली', 'एक बदबूदार गली,' 'टुकड़े, 'खामोशी', 'भाई की महिमा', 'एक था विमल', 'एक कुतुब मीनार छोटासा', 'शैडोज', 'अजनबी', 'मेरा दुश्मन', 'इन्कार', 'भूत'- का उल्लेख किया है। आपको जटिल मनोवैज्ञानिक यथार्थ और महानगरीय जीवन - बोध का कहानीकार कहा जा सकता है। आपके विदेश -प्रवास ने इस बोध को अधिक गहरा और सूक्ष्म बना दिया है। (170)

कृष्ण बलदेव वैद्य ने 'विमल, उर्फ जाये तो जाये कहाँ' उपन्यास में , विदेश में अध्ययन व अध्यापन करने वाले शिक्षित वर्ग की यौन बुभुक्षा का सटीक चित्रण खींचा है। वैसे यौन सम्बन्धो की जटिलता ओर उनके बदलाव की स्थितियाँ भी कुछ कहानियों में व्यक्त है। इन कहानियों में यौन जीवन की विस्फोटक स्थितियों का दबाव बड़ा साफ है। कृष्ण बलदेव वैद्य की कहानी 'त्रिकोण ,महीप सिंह की 'गंध', और सांत्वना निगम की कहानी 'बीतते हुए' इस कथन की पुष्टि करती है। त्रिकोण कहानी में पति, पत्नी और प्रेम का बिलकुल तथा त्रिकोण है, क्योंकि प्रत्येक की मनःस्थिति बदली हुई है। संबंधों का यह बदला हुआ रूख, अहं की खोल को बनाए रखने और उसी में सिमट जाने का है। इस कहानी में संबंधों के बदलाव की लेखकीय दृष्टि स्थितियों के यथावत स्वीकार की है। जो चित्रण से आगे नही बढ़ पाती। महीप सिंह की कहानी 'गंध' कोरे चित्रण से आगे बढ़ती है। इसमे यौन भावों का रचनात्मक और संश्लिष्ट रूप मिलता है। यौन परक विस्फोटक स्थितियाँ सांबंधों मे जो तनाव और हताशा भर देती है, उसका बोध 'गंध' कहानी कराती है। (171)

पर महीप सिंह के जीवनानुभव बम्बई और दिल्ली महानगर की विषमता यांत्रिकता और अजनबीपन पर आधारित है,सीमित है। जबकि सुधी पाठक जानते है कि कृष्ण बलदेव वैद्य की कहानियों को पढ़ते हुए ऐसे व्यक्ति का बिम्ब कौंधता है जो अपने सामने नग्नप्राय खडा हो और अपनों से इतर अपनी स्थिति के लिए किसी को जिम्मेदार न ठहराता हो। उसकी काँपती हुई क्रुद्ध उँगली उठते-उठते रूक जाती है। क्योंकि वह अपने सामने आईनों की एक दीवार खड़ी पाता है, जिसमें उसके अपने ही विसंगतियो भरे, विरोधाभासपूर्ण, बेढ़ंगे और विकलांग अक्स उभरते है। उसके लिए अपने अंदर के भयावह यथार्थ से बड़ा कोई यथार्थ नहीं होता। वह सत्ता या व्यवस्था के प्रति न घृणा उड़ेलता है, न परिवेश की विसंगतियों की शिकायत करता है। उसके लिए प्रामाणिक है परिवेशगत बोध जिसकी पहचान वह गहरे आत्मिक स्तरों पर करता है, जो उसे सताता है, तिलमिला देता है और उथल-पुथल मचा देता है।

कृष्ण बलदेव वैद्य के पास भाषायी चातुर्य, शिल्प लाघवता और उपमा, बिम्ब प्रतीक के साथ एक खिलंडर प्रवृत्ति पायी जाती है। इसीलिए नरेन्द्र मोहन ने कहा है कि - कृष्ण बलदेव वैद्य की कहानियों में जहाँ बाहरी स्थितियों के चित्रण की अपेक्षा एक आंतरिक अमूर्त उत्कटता है और महीप सिंह की कहानियों और संदर्भो की भौतिक सत्ता सूक्ष्म मनःस्थितियों के व्यंजनापूर्ण संकेतो से भरी है, वहाँ दूधनाथ सिंह स्थितियों के रूप में ही लेते है, पर कहानी के अन्तिम अंश में पहुँचकर उन्हे सायास भीतर ढ़केलते है और अभ्यन्ती करण का भ्रम पैदा करते है। उनकी कहानियाँ (कहानी संग्रह : सुखान्त) बाहरी स्थितियों को भीतर प्रक्षेपित करनेवाली हैं।[172]

'शिनाख्त' कहानी में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की रिक्तता और खोये चले जाने का भाव अंकित हुआ है। इसमे एक विवाहित मर्द-औरत के यौन सम्बन्धों की व्यंजना है।[173] वर्षो पहले मर्द-औरत के पारस्पारिक यौन सम्बन्ध थे। शुरू-शुरू में वे एक दूसरे को हसरत से देखते थे, लेकिन बाद में उसके पास एक-दूसरे के लिए हिकारत, नफरत, उपहास, जहर, बुझे गन्दे शब्द थे जिन्हे वे रह-रहकर अपने एकान्त में उगला करते। और अब वर्षो बाद वे एक दूसरे को यूँ ही नही निकल जाने देना चाहते थे। संभोग के बाद के जटिल एहसास को लेखक ने मानव-अस्मिता से जोड़ दिया है 'क्या मैं बोल सकता हूँ कि वह कौन सी चीज थी जिसकी सहसा हमने मिलकर हत्या कर दी ? क्या मैं उसकी शिनाख्त कर सकता हूँ ? प्रेम,घृणा, वासना, स्वार्थ सबका मिलाजुला नाटक । यह कहानी की केन्द्रीय संवेदना का स्थल है पर इस तक पहुंचने के लिए कथा-रस की लम्बी भूमिका तैयार की गयी है।

3.33 **कृष्णा अग्निहोत्री** : सातवें-आठवे दशक में दीप्ति खण्डेलवाल, मृदुला गर्ग, कृष्णा अग्निहोत्री, की रचनाएँ स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की विवादास्पद रचनाएँ मानी जाती थी। कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के भीतर सभी स्तरों पर पिसती और प्रवंचित होती नारी की पीड़ा

के विरूद्ध गहरे क्षोभ और विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है। अब तक आपके कही कहानी संग्रह **'टीन के घेरे'**(1970), **'यही बनारसी रंग बा'**(1983), **'जिन्दा आदमी'** (1968), **'जै सियाराम'**(1993), **'सर्पदंश'** (1997), **'अपने-अपने कुरूक्षेत्र'** (2001) प्रकाशित हो चुके है। आपकी कहानियाँ मूलतः अनुभव प्रसूत है। उनके पीछे किसी विचारधारा का अनुशासन नहीं है। आवेग-प्रधान होने के कारण आपकी कहानियों का शिल्प-पक्ष दुर्बल हो गया है। आपकी कहानियों में रचनात्मक यथार्थ की जगह भोगा हुआ यथार्थ उभर आता है, इससे अनुभव की समृद्धि का आकर्षण क्षीण हो जाता है। (174)

कृष्णा अग्निहोत्री के नारी पात्र निम्न मध्य वर्ग के कामकाजी जीवन संघर्ष को रेखांकित करते है। शोध प्रबन्ध की सीमा में हम नारी जीवन की यथाथपरक विवशता को जाहिर करनेवाली उसकी 'आक्टोपस' कहानी को उद्धृत करना चाहेंगे:- 'आक्टोपस' कहानी का सारविवरण है कि तलाकशुदा नारी नौकरी करती हुई अपना तथा सन्तान का निर्वाह तो करती है किन्तु सामाजिकता के कठोर बन्धन में उसकी नौकरी छुड़वाकर उसे छटपटाता छोड देती है,कहा नही जा सकता। इी बात को लेकर कृष्णा जी ने अपनी कहानी 'आक्टोपस' मे चित्रण किया है। कहानी की पात्र माँ अपने शराबी पति से अलग होती है, क्योंकि नशें में धुत पति जलती हुई सिगरेट से उसके जिस्म पर दाग देता है। पति से अलग होकर,उसकी समस्याएँ अधिक विकट हो जाती है क्योंकि माँ को कभी राजेश अंकल ,तो कभी भटनागर अंकल के पास जाना पड़ता है, जो उसके बॉस अग्रवाल की बर्दाश्त के बाहर है। दूसरे ही दिन माँ पर न जाने कितने दोष लगाकर उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है।

विषादपूर्ण स्थितियों में माँ अपरा की दृष्टि अपनी बेटी नीता पर केन्द्रित होती है। बेसहारा माँ तब सोचती है कि नीता को उद्देश्य स्थल तक पहुंचाने के लिए किसी-न-किसी की जरूरत पड़ेगी ही। वह सोचती है-" उस तक पहुंचाने के लिए मुझे नीता के कितने अंकलो की खुशामद करनी होगी .... किसी तरह सावधानी से काम निकालती हूँ। (175) हर कोई शरीर चाहता है। xxx नीता दिनभर घृणा से दब जाती है, तो अपरा की 'सॉडिस्ट' बन रही है। अभी तक अपरा पति का शक झेल रही है तो अब बेटी की शंकाएँ भी उसे झेलनी है। वहा जानती है कि नीता के मन में इन अंकलो के प्रति जो घृणा है वह आक्टोपस के रूप में उसे जकड़ रही है। (176)

वास्तव में तलाकशुदा नारी को लोग नरमचारा समझते हैं। केवल सेक्स की हद तक लोग उससे संबंध रखना चाहते हैं। शक के कारण पति से तलाक लेना पड़ा, अब लगता है बेटी से भी छुट्टी लेनी पड़ेगी। बेटी की शादी के लिए न जाने उसे कितने अंकलों के पास जाना पड़े।

3.34 **मैत्रेयी पुष्पा :** संवेदनापरक अनुभूति और तीक्ष्ण दृष्टि के साथ नारी जीवन के विभिन्न पक्षों को चित्रित करनेवाली मैत्रेयी पुष्पा हमारे दौर की सबसे जीवन्त और स्पृहणीय कथाकार है। **इदन्नमम चाक, कही ईसुरी फाग,**

गुड़िया जैसी औपन्यासिक और आत्मकथा लेखन से 'नारी विमर्श' के नये अध्याय रूपायित हुए हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने कहानियों के क्षेत्र में भी अच्छी ख्याति अर्जित कर ली है। आपके तीन कहानी संग्रह-**'चिन्हार'** (1991), **'ललमनियाँ'**(1996), **'गोया हँसती है'** (1998), प्रकाशित हो चुके है। मैत्रेयी की कहानियों में समकालीन जीवन यथार्थ के विविध परिदृश्य उभरते है किन्तु मूलतः अपना ध्यान सदियों के गहन अंधेरे को चीरकर रोशनी की तलाश में आगे बढ़ती हुई स्त्रियों के जीवन पर ही केन्द्रित किया है। कोई अपनी तेजस्विता से ,तो कोई अपनी अन्तरात्मा की निर्मलता और पवित्रता से ,कोई पीड़ा को भीतर ही भीतर पी जानेवाली अपनी सहनशीलता से, तो कोई अपनी सहजता और ममता से, कोई अपने अदम्य साहस जिजीविषा और विवेक से ,तो कोई अपनी नारी सुलभ तिरछी मुसकान से। मैत्रेयी मे सामाजिक जड़ता के प्रति गहरा आक्रोश है। उनकी वास्तविक रचनाशक्ति स्त्रियों की अस्मिता के लिए छेड़े गये उनके अविराम संघर्ष में ही लक्षित होती है।(177)

मैत्रेयी के नारी पात्र हाड़-मांस के सजीव पात्र हैं। केवल काल्पनिक दृष्टि के मनोरंजनकारी पात्र नहीं है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' में महिला आरक्षण का पूरा-पूरा फायदा परिवार के पुरूष उठा रहे हैं तथा नारी को नाममात्र के लिए खड़ा किया जा रहा है। उसे सामने रखकर पीछे से अपना उल्लू सीधा किया जा रहा है। नत्थू सिंह कहता है -" जै बोलो महिला आरक्षण की....ऐसी महिला खोजी जाये जो जीते ही जीते खोज लेंगे, और फिर जो औरत तुम्हारे कंधों पर खड़ी होगी, उसे हरानेवाला कौन ?(178) इनकी 'वहेलिये' की गिरजा गाँव में स्त्री पर हो रहे अत्याचार ,बलात्कार, तथा अनाचार को देखकर सहन नहीं कर पाती है। वह अंत में राजनीति में आने का अपना निर्णय ले लेती है। 'फैसला'की बसुमती भी आरक्षण के द्वारा प्रधानपद के लिए चुनी जाती है। इसुरिया कहती है -"ए ऽऽऽऽ ,सब जनी सुनलो कान खोले के ! बरोबरी का जमाना आ गया। अब ठठरी बंधे मरद मारकूटी करे, गारी गरौज करे,मायके न भेजे,पीहर से रूपईया,पइसा मँगवावे .. तो बैन सूधी चली जाना बसुमती के ढिंग। "(179)

कहना सही होगा कि महिला आरक्षण नारी जीवन के लिए राहत का पर्याय बनकर आया है। जिसके परिणाम स्वरूप दहेज की समस्या एवं पति का अत्याचार इन सबका वह मुकाबला कर सकती है। चित्रा मुद्गल की कहानी 'नतीजा' की पुरबी दी वेश्याओं की बच्चियों के लिए 'होम' चलाती है तथा इन वेश्याओं के नागरिक अधिकार के लिए वे प्रयत्नशील है जब कि सरकार इन्हें 'सेक्स वर्कर' मानकर नए वोट बैंक की तैयारी कर रही थी- "नागरिक सुविधाएँ मिले। राशन कार्ड बने। पानी मिले। टट्टी मिले। चिकित्सा सुविधा मिले। वोट डालने का अधिकार मिले। सरकार की राजनीति लहलहाए। नए वोट-बैंक मिले। वह तो पुरबी दी विरोध में कूद पड़ी। नागरिक सुविधाएँ उनका बुनियादी अधिकार है।"(180) विवेच्य कहानियों में

महिला आरक्षण स्त्री-जीवन के लिए आवश्यक बताया गया है ताकि वे अपने जीवन को एक सही दिशा दे सके। कहना न होगा कि यहाँ आरक्षण राजनीति के क्षेत्र में ही अधिक परिलक्षित होता है।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'रिजक' की लल्लन तथा ललमनिया की मौहरो को अपने पेशे के प्रति ईमानदारी तथा आस्था है। लल्लन बच्चा जनाने का ट्रेनिंग खत्म कर गाँव आई तो डाक धरनी की अदा से मोटर से उतरी। अपने पेशे के प्रति समर्पित लल्लन अपने परिवार को संभालती है। 'ललमनियाँ' की मौहरो को ललमनियाँ नृत्य(शादी में नाचा जानेवाला) अम्मा के द्वारा धरोहर के रूप में मिला है। अम्मा कहती है " अरे और इसके सिवा हमारे पास है ही क्या देने को ?"(181) मैत्रेयी की लल्लन तथा मौहरो दोनों नारियाँ अपने पेशे को अपनाकर एक आत्मनिर्भर जीवन जीती है। मौहरो की अपेक्षा लल्लन में अपने पेशे के प्रति आत्मविश्वास अधिक है। इस विवेचना से स्पष्ट होता है कि मजदूरी पेशा तथा देहाती नारी चाहे जिस परिवेश तथा परिस्थिति की क्यों न हो उनमें एक 'स्व' की भावना तथा अपने होने का अहसास है। (182)

मैत्रेयी पुष्पा के नारी पात्र अपनी बेचारगी पर टेसुए नही बहाती है। उनकी कहानियाँ नारी जीवन के संघर्ष को रेखांकित करनेवाली जिजीविषा बोध की पात्राएँ है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'भंवर'की विरमा पति के दूसरी शादी करने के बावजूद उसके पास रहती है। सौत तथा पति के हर अत्याचार को सहती है। सौत के बच्चों को अपना बच्चा मानती है। पूरा जीवन पति के लिए होम कर देती है। पति के मारने-पीटने पर वह सोचती है "ब्याहता तो वही ठहरी-रिस-गुस्सा उसी पर तो निकालेगा।"(183) विरमा को आज भी अपने में ही खोट नजर आती है। इस प्रकार हम पाते हैं कि विवेच्य कहानियों में अल्पमात्र में ही सही परन्तु पुरूष के इस सच को लेखिकाएँ लिख रही हैं। यह अलग चिंतन की बात है कि नारी पतिव्रत को स्वीकार करे अथवा मनमानी करे।

मैत्रेयी के नायक में नहीं बल्कि नायिका पर ही पुराने संस्कार ,पति को 'परमेश्वर' मानने का इतना असर है कि वह स्वयं पतिव्रता स्त्री की तरह उसके दरवाजे पर पशुवत पड़ी रहती है। वैसे तो उनकी नारी तर्क करना जानती है, करती भी है परन्तु ग्रामीण व्यवस्था के आगे बेबस है। xxx अंततः हम कह सकते हैं कि नारी जागरण के फलस्वरूप यह मनोवृत्ति पुरूषों में कम हो रही है। वह चाहकर भी इतने बंधन पत्नी पर नही ड़ाल सकता हैं। क्योंकि आज पति-पत्नी दोनों मिलकर घर की गाडी को चलाते हैं। अतः चरित्र पर संदेह करना अथवा अन्य पुरूषों के संपर्क में पत्नी को न आने देना इस कामना को वह पाल नहीं पाते हैं।

मैत्रेयी ने लम्बी कहानियाँ रची हैं जो कही-कही उपन्यास मान ली गयी है। प्रसंगवश मैत्रेयी की सबसे सशक्त पात्र है 'झूलानट' की शीलो। पति से तिरस्कृत, परित्यक्त लेकिन वह बेचारी नहीं है। उसने अपनी देह की दम पर पति और देवर दोनों को ही बेचारा बना रखा है वह अपने पति सुमेर

को न तो तलाक देती है और न ही अपने देवर की बिछिया पहनकर उसकी पत्नी बनती है। वह जानती है कि अगर उसे देवर की बिछिया पहन ली तो पति स्वतंत्र हो जायेगा। और उसकी दूसरी शादी ,जो अब तक गैर कानूनी है वह कानूनन वैद्य हो जायेगी। तथा वह अपनी हिस्से की संपत्ति लेकर मौज उड़ायेगी। दूसरी ओर पति बालकिशन उसे अपनी संपत्ति मानकर उसके अस्तित्व को समाप्त कर देगा, शीलो ऐसा नहीं चाहती अपनी सरकारी नौकरी बचाये रखने के लिए सुमेर और उसके रूप यौवन में अंधे बालकिशन दोनों ही उसकी खुशामद करते है। उसकी छवि परित्यक्ता की नही हैं। रोती,झींकती प्रताड़ित होती बहू की नहीं है बल्कि एक सशक्त महिला की है जिसके इर्द-गिर्द घर के पुरूष घूमते है। शीलो का साहस सारंग से भी दो कदम आगे है और सही अर्थो में स्त्री विमर्श है जहाँ वह अपने अस्तित्व की लड़ाई से सफल है। (184)

सामान्य पाठकों और पुरूष प्रधान जीवों को आश्चर्य होगा कि मैत्रेयी की कहानी 'पगला गयी है भागवती' की भागों पुरूष वर्चस्व का विरोध पत्थर मारकर करती है। वह पत्थर मार-मारकर उस पुरूष सत्ता को लहुलुहान कर देना चाहती है जिसमें स्त्री और पुरूष में इतना गहरा विरोध है कि एक का कृत्य अपराध है और उसकी सजा मौत है तो दूसरे का वही कृत्य स्वीकार्य है। भागो मासूम अनुसुइया के हत्यारे को ही नहीं उस दो मुंहेपन को लहूलुहान कर देना चाहती है जो स्त्री और पुरूष की संवेदना के बीच खाई बनाता है। भागो विवश है, वह अनुसुइया के हत्यारे को छिपकर पत्थर ही मार सकती है। यही विवशता ललमनिया की 'मोहरो' में है। (185) वह अपने ठगे जाने पर आक्रोशित तो होती है किन्तु उसका आक्रोश अपने आपको बेसुध कर देने तक ही है।

वास्तव में मैत्रेयी पुष्पा के ये नारी पात्र स्त्री अस्मिता की तलाश करते नजर आते हैं। यहाँ आक्रोश तो है मगर बेड़ियाँ उसे जकड़े हुए है। यह जकड़न टूटती नहीं,अलबत्ता 'भागो' पागल और 'मोहरो' पागलपन की सीमा में चली जाती है। पाठकों को कहानी का अंत यथार्थ परक ही प्रतीत होगा। (186)

स्त्री अगर आर्थिक रूप में सक्षम है तो पुरूष प्रधान समाज उसे अपने शोषण का शिकार नहीं बना सकता है। प्रसंगवश बदनाम औरत और नामवर आदमी को कौन देखना नही चाहेगा। मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'आक्षेप' की रमिया गाँव में बदनाम है । वह शादीशुदा औरत है। ससुर के घर को संभालती है। रमिया मानव कर्तव्य से परिपूर्ण है। गाँव में बड़े-बूढ़े हर किसी की सेवा करने के लिए उनके घर में रात-रात भर रूक जाती थी। परन्तु लोगों ने उसका गलत अर्थ लिया और उसे व्यभिचारनी मानने लगे। रमिया इन आरोपों से दूर सब कुछ अनसुना कर अपने सामर्थ्य का परिचय देती रहती है। रमिया कहती है-"हमसे जितनी चाकरी बन जात है, कर देते है। कोऊ कछु कहै हमे नहि फरक परत बाबूजी ।"(187) एक पल में ही जी हलका करके सब कुछ भूल गयी थी। कहना न होगा कि रमिया जैसी नारी केवल अपने बल पर अपने जीवन का चयन करती है और कर्म

में विश्वास करती है। 'बहेलिये' की गिरजा तथा 'केतकी' आर्थिक रूप से न सही परन्तु कर्म द्वारा अपनी पहचान बनाती है। वैसे नारी में स्वयं निर्णय की क्षमता अधिकतर व्यक्तिगत रूप में आर्थिक निर्भरता से ही परिलक्षित होती है। (188)

उर्मिला शुक्ला ने "मैत्रेयी की नारी संवेदना अस्मिता से देह तक' के सन्दर्भ में स्वीकारा है कि 'स्त्री विमर्श जिसे आज देह विमर्श का पर्याय मान लिया गया है। ऐसा लगता है कि स्त्री की सामाजिक स्थिति के केन्द्र में उसकी दैहिक संरचना ही है। उसकी दैहिकता को शील,चरित्र और नैतिकता के साथ जोडा गया किन्तु यह नैतिकता एक पक्षीय है। नैतिकता की यह परिभाषा स्त्रियो के लिए है पुरूष के लिए नहीं। पुरूष तंत्र ने उसकी मातृत्व की क्षमता को उसकी दुर्बलता,उसकी यौनिकता को कलंक बनाकर उस पर तमाम वर्जनाएँ लाद दी है। स्त्री देह के प्रति अपनी कामलिप्सा को रोक पाने में असमर्थ पुरूष ने उसके मन में देह सुख के प्रति व्यर्थता बोध जगाया और स्त्री अपने सुख को भूलकर उाके प्रति समर्पित होती रही। मर्यादा के नाम पर, कही चेस्टिटी बैल्ट, तो कही सुन्नत जैसे तरीकों से उसने स्त्री की यौनिकता पर अपना कब्जा जमाया। अपने लिए अनेक स्त्रियों तक पहुँच की राह खुली रख छोड़ी ताकि एक से मन भर जाए तो दूसरे तक आसानी से पहुँचा जा सके किन्तु स्त्री के लिए अनेक आदर्श रचे। (189) पुरूष सापेक्ष विविध भूमिकाओं में ऐसा बांधा कि उसके लिए 'निजता' और 'स्वायत्तता' जैसे सवाल बेमानी हो गये। बहरहाल अस्तित्ववादी चिन्तन जहाँ आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता अभिज्ञापित करता है वहाँ मार्क्सवादी नारी को उसकी अपनी अस्मिता के वरण में श्रेयस्कर मानता है।

3.35 **शिवमूर्ति :** जनवादी प्रवृत्ति के ,दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के प्रसिद्ध कहानीकार है। शिवमूर्ति की ख्याति उसकी प्रसिद्ध कहानी **'कसाईबाड़ा'** (1980) पर कन्द्रित है। यो तो वे सातवे दशक से लिख रहे है। किन्तु कसाईबाड़ा के प्रकाशन के बाद वे एकदम चर्चित हो उठे। इस कहानी का नाट्य रूपांतर भी हुआ है और अनेक संस्थाओं ने इसका मंचन भी किया है। कहानी में चार प्रमुख पात्रों के साथ एक और पात्र अरधंनी है। यह पात्र भारतीय जनता के प्रतीक है। पूरा देश कसाईबाड़ा हो गया है। पूरी व्यवस्था कसाई की निर्मम भूमिका कर रही है। कहानी में सांकेतिकता, व्यंग्य और नाटकीय भंगिमा ने कथा को घनत्व प्रदान किया है। इसके बाद आपकी भरतनाट्यम, सिरी उपमा जोग, तिरिया चरित्तर, केशर कस्तुरी आदि अन्य कहानियाँ भी प्रकाशित हुई है। इन सभी कहानियों का संग्रह **'केशर कस्तूरी'**(1991)नाम से प्रकाशित हो चुका है। (190)

मधुरेश के शब्दों में शिवमूर्ति नौवें दशक में हिन्दी कहानी के मानचित्र पर एकदम उभरकर आये युवतर विशिष्ट कहानीकार है। अपनी दो कहानियों ' तिरिया चरित्तर' तथा 'कसाईबाडा' के कारण आपको प्रसिद्धि

मिली है। कसाईबाड़ा का नाट्य रूपान्तर भी हुआ है तथा इसके दो हजार से अधिक मंचन हो चुके है। **'केसर कस्तूरी', 'सिरी उपमा जोग'** तथा **'भारतनाट्म'** कहानियाँ फिल्म-निर्माण हेतु अनुबंधित हुई है।

वास्तव में कसाईबाड़ा प्रकारान्तर से गाँव में प्रधान , लीडरजी और दरोगा के षड्यंत्र में पिसती शनिचरी का बयान है। सामूहिक आदर्श विवाह की बेदी पर शनिचरी की बेटी को वेश्या बना देने वाले प्रधानजी और इसका विरोध करने के लिए उसे इस्तेमाल करनेवाले लीड़रजी में कोई अंतर नहीं। एक उसकी बेटी को हड़प गया,दूसरा कोरे कागज पर अंगूठे का निशान लेकर जमीन ड़कार गया। अधपगला 'अधरंगी' शनीचरी की मदद भी क्या कर सकता है ? सिवा गाँव के लोगों को प्रधान और लीड़र की करतूते बताने अथवा शनीचरी की लाश ठिकाने लगाने के। यहाँ अन्यायी शक्तियों के आगे व्यक्ति विवश ,असहाय और मूक है। राजनीतिक यथार्थ की इस प्रकार की अभिव्यक्ति मानवीय संघर्ष की सामान्य स्थिति से आकर जुड़ती है। कहानी में अधरंगी भारतीय जनता का प्रतीक है। जो अत्याचारियों को सजा, देने की मांग करता है। (191)

'तिरिया चरित्तर' कहानी में गाँव के भयावह यथार्थ-बोध की अभिव्यंजना हुई है, जो विमली के माध्यम से नारी शोषक के विविध पक्षों को सूक्ष्मता, सहजता और कलात्मक सजगता से उभारती है। पिता की टूटी बाजू के संदर्भ में सेठानी द्वारा हृदयहीनता दिखाने पर उसकी लिपाई का काम छोडकर विमली भट्टे पर काम करने लगती है। तीन व्यक्ति उससे विवाह की इच्छा रखते है। वह सबके साथ मेला देखने जाती है, तो भी प्रेम और संदेह के भाव प्रकट किये जाते है। बचपन की विवाहित विमली का पति कलकत्ता में है। उसे उसका ससुर गाजे-बाजे के साथ ले जाता है। ससुर विसराम देखने में आदर्श पुरूष है, पर देह की कामना उसमें बड़ी उत्कट है। व्रत रखकर शिवाले के प्रसाद द्वारा बेहोश करके पतोहू को भोगता है। (192) होश आने पर विमली कलकत्ता जाने लगती है। पर गाँव के लोग उसे ले आते है। विसराम उसी पर आरोप लगता है कि इसके साथ गाड़ी में भी मर्द बैठा था, झोपडी में भी आता था। इससे उसकी इज्जत खत्म हो गयी है। विमली की कोई नही सुनता। पंच बिठाकर निर्णय होता है कि विमली दोषी है। यह भी तिरिया चरित्तर है।

केवल गाँव मे मनतोरिया की माई से नहीं रहा जाता। वह लपककर पंचायत के बीच में आकर कहती है कि -"ई अंधेर है। दगनी दागता है तो विसराम और बोधन चौधरी के चूतर पर दागना चाहिए। कोई काहे नही पूछता कि बोधन की बेवा भौजाई दस साल पहले काहे कुएँ में कूद कर मर गयी थी। गाँव की औरते मुँह खोलने को तैयार हो जाए तो बिसराम की घटियारी के वह एक छोड़ दस परमान दे सकती है। (193) xxx पतोहू उठकर खडी होती है -'मुझे पंच का फैसला मंजूर नहीं। पंच अंधा है। पंच बहरा है। पंच में भगवान का 'सत' नहीं। मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूँ - आ-क-थू।"(194) xxx लाचार औरत के माथे पर तपती कलधूल दाग दी जाती है।

छन्ना कलधूल खाल से छूते ही पतोहू का चीत्कार कलेजा फाड़ देता है। [xxx] पुजारी जी भारी मन से कहते हैं तिरिया चरित्र समझना आसान नहीं बाबा भरधरी झूठे थोड़े ही कहा है -तिरिया चरित्रम पुरूस्य भाग्यम ...। कहानी जहाँ खत्म होती है, नारी जीवन की दुर्दशा पाठकों के मन में एक कचोट भर देती है।

वीरेन्द्र मोहन ने अभिज्ञापित किया है कि शिवमूर्ति की कहानियों को दलित समाज और नारी जीवन की बदहाली के रूप में देखा जा सकता है। एक ओर जहाँ दलित समाज और नारी जीवन की रक्षा के नाम पर अनेक तरह की योजनाएँ और प्रयास किए जा रहे हैं, वहीं उनका जीवन त्रासद और नारकीय भी उन्हीं योजनाओं और प्रयासों की कोख से पैदा होनेवाले कारकों से किया जा रहा है। [(195)] वास्तव में शिवमूर्ति एक प्रतिबद्ध लेखक हैं जो युगीन यथार्थ की नारी दुर्दशा को बेलॉस रूप में पेश करते हैं।

3.36 **नमिता सिंह** :नमिता सिंह का मूल नाम नमिता पन्त है। इनका जन्म महाकवि सुमित्रानंदन पंत के परिवार में हुआ है। इनके पितामह पं.गंगादत्त पंत कौसानी स्थित हथछीना नामक स्थान में अपने संपन्न परिवार के साथ रहते थे। नमिता के पिताजी पं.गिरीश चंद्र पंत अपने समय के प्राख्यात कवि रहे हैं। नमिता सिंह समकालीन रचनाकारों में सिद्धहस्त कहानीकार के रूप में अपनी पहचान स्थापित कर चुकी हैं। नमिता बचपन से ही कविता लिखा करती थी। आपकी पहली बाल कविता **'मेरी फुलवारी'** तथा **'दीवाली'** है जिसे आपने अपनी माता जी की प्रेरणा से लिखा था। प्रारंभ में लेखन का कार्य कविता से शुरू हुआ, जो हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान ,लहर, धर्मयुग आदि में छपता भी रहा है। कविता के बाद आपका रूझान कहानी की तरफ हुआ। नमिता ने पहली कहानी 'एक निर्णय' सन 1970 में लिखी जो सन 1972 में 'सारिका' में छपकर आई। [(196)] बाद में कविता लिखन बंद कर दिया। आप की लगभग सौ कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं जैसे **'हंस', 'सारिका', 'वर्तमान साहित्य', 'लहर', 'कहानीकर', 'आज', 'वार्षिक कथन', 'युग परिवेश', 'असरी अदब'** तथा **'अमर उजाला'** आदि में छापती रही है।

नमिता सिंह की कहानी 'उबारने वाले हाथ' की चंदो छोटी उम्र में ही दूसरे के घर में बर्तन मांजने,खाना बनाने का काम करके अपने घर को भी संभालती है। लेखिका लिखती हैं-" क्या जिन्दगी है इसकी ? माँ बीमार-बाप शराबी। पूरे परिवार की परवरिश यह बच्ची कर रही थी। इसमें बाल मजदूरो में लड़कियाँ किस कदर घर और बाहर दोनो जगह के काम संभालती है,इसका चित्रण मिलता है। [(197)] इन्हें इसकी आदत इतनी ज्यादा लग जाती है कि पढा-लिखकर अच्छा जीवन अगर प्रदान किया जाए तो इसे स्वीकार नही करती। चंदो की स्थिति भी ऐसी ही है। वह केवल काम करना और माँ के बच्चों को संभालना जानती है। उसके काम में सफाई है। परन्तु कथा नायिका की भाभी द्वारा इसे पढ़ा-लिखाकर अपने घर में सदस्य के रूप में अपनाने की बात को चंदो अस्वीकार कर देती है। इसमें उसकी

मजबूरी और मानसिकता दोनों दिखाई देती है। आत्मनिर्भर नारी में विरोध तथा हक की भावना नमिता की दूसरी कहानी 'गणित' की नारी में है। रामलाल ढ़ाबा चलाने तथा खुद की सेवा करने के लिए उसे लेकर आता है। किन्तु अति कंजूस होने के कारण उससे शादी नहीं करता, क्योंकि खर्चा बढ़ जाएगा। दृष्टव्य है कि दिन-भर चाकरी करने के बाद उसके खाने-पीने पर रामलाल जब आक्रोश दिखाता है तो वह सर्द आवाज में बोलती है " जबान संभाल कर रे। हराम का कुछ भी नहीं। दिन भर हाड़ तोड़ती हूँ ... और यह सब। (198)

वेद प्रकाश अमिताभ ने नमिता सिंह के यथार्थ परक लेखन की अभिशंसा की है कि महिला कहानीकारों को प्रायः औरत-मर्द के रोमानी किस्सों या सम्बन्ध गत तनाव और टूटन को चित्रित करने तक सीमित कर देखा गया है। इस सरलीकरण के लिए महिला कहानीकार भी जिम्मेदार नहीं है। उन्होंने एक सीमित दायरे में लिखकर इस प्रकार की धारणा को बल प्रदान किया है। लेकिन नमिता सिंह का कहानी संग्रह 'खुले आकाश के नीचे' महिला कहानीकार की इस 'इमेज' को तोडता है। हालाँकि इसकी अधिकतर कहानियों में मामूली आदमी उपस्थित नही हैं; इसके बावजूद बहुआयामी कहानियों में जीवन का यथार्थ बहुत विश्वसनीय रूप में व्यक्त हुआ है। कुछ कहानियाँ दलित और शोषित वर्ग की मुश्किलों और अन्तर्विरोधों को चीन्हने की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। (199)

प्रसंगवश **'काले अंधेरे की मौत', 'ठहरा हुआ सबेरा', 'मुक्ति'** आदि में जनसामान्य की नियति यथार्थपरक चित्र है। चमारों पर होने वाले अन्याय और अत्याचार के ब्यौरे 'काले अंधेरे की मौत' में उपलब्ध हैं। नैरेटर आश्चर्य के साथ देखता है कि जिन्हे उसने जीना सिखाना चाहा था वे ही चमार टोली के लोग उसके खिलाफ गवाही देते हैं। 'ठहरा हुआ सबेरा' में भी शोषित ही अपने प्रति अन्याय के प्रतिकार में बाधा बन जाता है। दलितों और श्रमजीवियों के लिए लड़ने वाले भी प्रलोभनों के आगे किस कदर पालतू और सुविधाजीवी हो जाते है,इस अन्तर्विरोध को रेखांकित करना आज के युवा लेखक के लिए बहुत आवश्यक है। नमिता सिंह को इसमें पर्याप्त सफलता मिली है।

कर्ण सिंह चौहान ने उनकी रचना प्रक्रिया के बारे में लिखा है कि "नमिता बाह्य यथार्थ के अन्तर्विरोधों को ही कहानी का विषय नहीं बनाती,बल्कि इससे आगे जाकर क्रान्तिकारी संगठन के बीच मौजूद अनेकों खामियों की ओर इशारा करती है, जो गलत संस्कारों और मध्यवर्गीय पूर्वाग्रहों की वजह से वहाँ घुस आई है।" 'राजा का चौक' कहानियों की धार और प्रखर हुई है। (200) कहना न होगा कि नमिता सिंह के अधिकांश पात्र मध्यवर्ग या निम्न मध्य वर्ग के हैं, जो अपनी मुसीबतों का हल स्वयं तलाशते हैं आत्मनिर्भर हैं परिवेश के प्रति विद्रोह और यथार्थपरक प्रतिरोध रचते हैं। उनके नारी पात्र जिजीविषा और आत्म चेतना से परिपूर्ण हैं।

3.37 **नासिरा शर्मा** : नासिरा शर्मा का रचना संसार उनके अपने परिवेशजन्य अनुभूतियों तथा विदेशी राजाओं का मिला-जुला रूप मानना होगा। यही कारण है कि इसमें यथार्थ ज्यादा है, जो अहसास की भूमि पर भी उतरता है। नासिरा ने सारे धार्मिक तथा पारंपारिक मान्यताओं को तोड़ते हुए डॉ.रामचन्द शर्मा के साथ 'स्पेशल मैरेज ऍक्ट' के तहत अतर्धर्मीय विवाह किया। ब्राम्हण परिवार के शर्मा जी के साथ एक मुस्लिम परिवार की लड़की का विवाह होना ,यह कोई आम बात नही थी। नसिरा के परिवार में इसका काफी विद्रोह हुआ। दो अलग-अलग धर्म को एक साथ निभाते ले चलना अथवा उस पर विश्वास करना एक बहुत बड़ी बात होती हैं। (201)

कहना न होगा कि यह विवाह प्रेम विवाह था। पति रामचन्द्र शर्मा जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में भूगोल के प्रोफेसर है। इस प्रकार लेखिका का यह नाम नासिरा तथा शर्मा दों संस्कृति के मेल का प्रतीक होता है। वे लिखती भी है -"मैं मुसलमान हूँ। पति हिन्दू। मोहब्बत हिन्दी से ,जबकि मादरी जुबान उर्दू हैं। पढाई फारसी (परशियन) में की है। (202) नासिरा अपनी सास को चाची कहती है; जिन्होने बेटे तथा बहू में कोई फर्क नही किया। यही सास 'शाल्मली' के सास की किरदार के रूप में आई है।

नासिरा शर्मा ने ईरान और ईराक की संस्कृति को ,उनके जीवन संघर्ष को करीब से देखा है। इसीलिए विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखी गयी कहानियाँ भी किसी तरह उस देश के सामाजिक-राजनीतिक अन्तर्विरोधों को गहराई से पकड़ सकती हैं, किस तरह सहिष्णु/क्षयिष्णु विचारो और जीवन पद्दति के मुकाबले वे परिवर्तनकामी क्रांतिकारी आकांक्षाओं को वानी दे सकती है; इसका ताजा उदाहरण ईरान की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी नसिरा शर्मा की कहानी है। अन्तर्वस्तु के सघन विस्तार और पात्रों के वैविध्य की दृष्टि से नासिरा शर्मा की
कहानियों की तुलना में 'उषा प्रियंवदा' की सीमित सरोकारों वाली कहानियों की दुनिया बहुत छोटी और संकुचित मालूम होती है। कदाचित अन्तर्वस्तु की इस सहज दुर्बलता को ढ़कने के लिए ही उषा प्रियंवदा अपनी कहानियों में शिल्प और भाषिक संरचना को लेकर शुरू से ही बहुत सजग रही है। शुरू की कहानियों की प्रतीक-बहुलता परवर्तित कहानियों में काव्यात्मक ब्यौरों और वर्णनात्मकता में बदल गयी है। (203)

नासिरा शर्मा ने नारी जीवन के विभिन्न रूपों ,जिन्दगी के प्रति सकारात्मक व नकारात्मक सोच के पहलुओं को सूक्ष्मता से दर्शाया है। नासिरा शर्मा की कहानी 'इच्छा घर' की नीलम अपनी बेटी को नैतिकता का यह नया पाठ सिखाती है -"अगर वह तुझे प्यार कर लेता है तू कौन-सा घिस जाती है। यह तो बहुत अच्छी बात है उसकी कमजोरी से तू फायदा उठा समझी। (204) डॉ.सुमन राजे इसी तथ्य पर प्रकाश ड़ालते हुए कहती है -"स्त्री की नैतिक मान्यताएँ साहित्य में बदल रही हैं। अभी प्रतिशत की बात करना बेमानी है।"(205) विवेच्य कहानियों में उत्तर आधुनिक रूप का स्वीकार

करते हुए नारी 'सैक्स संबंधी नैतिकता' का उलंघन कर रही है। कानूनी प्रवाधान के कारण बच्चा माँ के नाम से भी जाना जा रहा है। नासिरा शर्मा की कहानी 'मिस्त्र की ममी' की थोता विवाहित होकर अपने प्रेमी पुरूष से संतान की चाहत रखती है। वह कहती है -" तुम इन्सानों में अपने को बांटने की बात कहते हो और मैं इन पांच सालों में प्यासी उस आबेनैसां की तलाश में थी, जो सीप में गिरकर मोती बन जाता है ... मेरे घर में उसको किसी बात की कमी न होगी.... मैं वचन देती हूँ।"(206)यहाँ विचार करने की बात यह है कि अपने पति से औलाद का सुख प्राप्त नहीं होने के कारण वह किसी दूसरे पुरूष से उसकी मांग करती है। यहाँ अधिकार की बात दिखाई नहीं देती है बल्कि अपनी आत्मतुष्टि के लिए उठाया गया एक कदम भर दृष्टिगोचर होता है। कहना न होगा कि नारी माँ हो या बेटी, नैतिकता की परिभाषा उसके लिए बदल चुकी है। पाप-पुण्य, उचित-अनुचित, इन सबका आज के बदलते परिप्रेक्ष्य में कोई मायने नहीं होता। इनकी कहानी 'दूसरा चेहरा' की नायिका का प्रेमी प्रेम भी दिमाग से करता है, आपसी रिश्तों में जीवन दर्शन की बातें करता है। वह नायिका के साथ-साथ अन्य स्त्रियों के साथ भी संबंध को सहज स्वीकार करता है,अतः नायिका भी सोचती है -"रोने, गिड़गिड़ाने, खुशामद से यह मर्द झुकनेवाला नहीं था -सुबह उठी तो मेरे प्यार में अक्ल भी शामिल हो चुकी थी। (207)

प्रसंगवश नासिरा शर्मा की कहानी 'अपनी कोख' की साधना एक क्रांतिकारी विचार को लेकर सोचती है। और वैसा वह करती भी हैं "यह समाज तब तक बलवान बना रहेगा जब तक नारी उसके इशारे पर चलती रहेगी। कोख उसकी है... चयनकर्ता वह है, अगर वह मर्दों को पैदा करना बंद कर दे तो इस समाज का क्या होगा ?"(208) यह सही है कि स्त्री जो सोचती है अगर उस पर सचमुच अमल करने लगे तो पुरूष समाज के लिए बड़ा घातक हो सकता है। नारी,बच्चों और पति को लेकर अपना स्वतंत्र विचार रखने लगी है। इसी प्रकार मृदुला गर्ग की कहानी 'बीच का मौसम' की क्षिप्रा पति की शराब की आदी हो जाती है। पति दूसरी स्त्रियों से संबंध रखता है। सहेलियों के बीच पार्टी का दौर जब चलता है तो क्षिप्रा अपना दुख, अपनी पीड़ा सखियों से कहती है -"हाँ, उसने दृढ़ता से कहा ओबोन कौन होता है,मुझे रोकने वाला। बरसों इस घर को बनाया सँवारा है मैंने। मेरा पूरा हक है इस पर। समझले यही मेरी नौकरी हैं। (209) स्त्री के लिए नौकरी का न होना ,पति के अनैतिक संबंध तथा बच्चे की कमी उसे पूरी तरह से तोड़ कर रख देती हैं। ऐसे में लिया गया निर्णय उसकी दृढ़ता का परिचायक होता हैं।

सुधी पठकों को सम्भवतः याद होगा कि नासिरा शर्मा की 'आबे-तौबा' की ससून विवाहित है। जिसे शमशाद पाप-पुण्य समझाकर तथा सेक्स पर बहस कर ,बदन की मांग पूरी करने के लिए मजबूर कर देता है। ससून उसके स्पर्श के आगे हार जाती है। "अजीब खुशबू है तुम्हारे बदन की।" (210) यहाँ मर्द अपनी कामुकता की तृप्ति के लिए विवाहित नारी से

दोस्ताना रिश्ता रखता है। 'दूसरा ताज महल' की नयना आत्मनिर्भर नारी है। वह विवाहित पुरूष रविभूषण के प्रेम में पूरी तरह लीन हो चुकी है। यह आकर्षण दोनों तरफ से हैं। कहना सही होगा कि जीवन में एक मित्र बना लेना आज नारी तथा पुरूष के लिए आसान हो रहा है। जीवन शैली बदलने के कारण भी अथवा व्यक्तिगत जीवन की ऊब और नीरसता के कारण पराये मर्द अथवा पराई स्त्री की तरफ आकर्षण बढ़ रहा है। पुरूष का स्वभाव ऐसा होता है कि नारी के साथ मैत्री का संबंध मात्र दोस्ताना तक सीमित न रहकर शरीर तक बढ़ता है। ऐसा न होने पर उसमें खीज तथा तिलमिलाहट नजर आने लगती है। [xxx] 'संगसार' कहानी में जहाँ पुरूष समाज नारी को परपुरूष से देहसंपर्क कर लेने पर पत्थर मारकर उसकी इहलीला समाप्त कर देता है... क्या वह आधुनिक नारी को आज गवारा होगा।

3.38 **ज्ञानरंजन** : डॉ.इन्द्रनाथ मदान ने आपको आधुनिकता के नये दौर के कहानीकर के रूप में याद किया है। आपकी कहानी 'फेंस के इधर उधर' की चर्चा करते हुए डॉ.मदान कहते है -"ज्ञानरंजन की कहानी फेस के इधर से निकलकर अब फेंस के उधर चली गयी है,पुरातनता से निकलकर आधुनिकता में चली गयी है। जहाँ शहर तेजी से बढ़ रहा है, नगरीकरण की प्रक्रिया तेजी से चल रही है। **'फेंस के इधर उधर'** (1968), **'यात्रा'** (1971), **'क्षणजीवी'** (1977), **'सपना नही'**(1977) आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके है। ज्ञानरंजन मुख्य रूप से मध्यवर्गीय जीवन की कुरूपताओं, विसंगतियों और खोखलेपन को निस्संग भाव से बेनकाब करनेवाले यथार्थधर्मी कहानीकार है। नये-पुराने मूल्यों और संस्कारों की टकराहट का बड़ा ही सूक्ष्म अंकन और विश्लेषण आपकी कहानियों में मिलता है। आपकी परवर्ती कहानियों में **घण्टा, बहिर्गमन,** अनुभव को सराहा गया है। (211)

ज्ञानरंजन ने भारतीय परिवारों में स्त्री-पुरूष के बीच जो अनचाहा संदेह, ईष्यालू भाव और 'कलह' का वातावरण रहता है। उसका कलात्मक चित्रण 'कलह' कहानी में रचा है। कहानी में परिवार के मालिक(पिता)के एक अवांछनीय संबंध का अहसास शेष सारे संबंधो को झकझोर कर कलह को ऊब में डुबो देता है। बच्चे सहमें रहते है। मालकिन(पत्नी) टालती-छिपाती और स्वयं झेलती रहती है। युवती और शिक्षिका स्वाति (पुत्री) चाहती है कि माँ इस पोशीदा औरत को दिन के उजाले में हम सबके सामने खोल दे जिसने परिवार को मथ दिया है। स्वाति घुटन भरी स्थितियों से उबरने के लिए अपने प्रेमी राजे को याद करती है। कहानीकार जीवन ढ़ोनेवालों से अधिक उनकी पीड़ा से व्यथित है जो जीवन की खोज में है। (212)

ज्ञानरंजन ने व्यवस्था को सम्बन्धों से समान्तर किया है और उन्हें उसीके अन्तर्गत अवधारित किया है। सम्बन्धों की बीम पर इधर नए लोगों ने जो कहानियाँ दीं हैं, उनमें ज्ञानरंजन का नाम कई कारणों से उल्लेखनीय है। उनमें सम्बन्धों की ऊपरी सतह के नीचे की स्थितियों का

निहायत तटस्थ बोध है और इसलिए वे उसके व्यंग्य को भी उभार सके हैं। (213)

कथाकारों की इस पीढ़ी ने बहुत निर्ममता के साथ नर-नारी दोनों को नंग किया है। उसके तमाम शास्त्र-वंचना, नैतिकताओं और हरिद्वारी पवित्रतावाद के मूल्यों के सांस्कृतिक जाल को फाड़कर ऐसे आदिम मूल को खोजा है जो ईश्वर, धर्म, मानवता, सेवा, त्याग, और नाना जीवनादर्शो के चुक जाने के बाद भी जीने की चाह बनी रहने देता है।(214)

ज्ञानरंजन की बहुचर्चित कहानियाँ है -**'फेंस के इधर उधर', 'पिता', 'घण्टा',** और **'बहिर्गमन'**। 'फेंस के इधर उधर' में पारम्पारिक जीवन दृष्टि और आधुनिकता बोध की टकराहट है जो एक युवती पड़ोसन को केन्द्र में रखकर रची गयी है। पिता में दो पीढ़ियों की सोच के अन्तर को रेखांकित किया है। पर 'घण्टा' और 'बहिर्गमन' ज्ञान के अपने खास रंग से अलग हटकर उस बोध की कहानियाँ हैं जो मोटे तौर पर सामाजिक बोध या समाज बोध की कहानियाँ नही हैं,या वे असामाजिक है या कि वे व्यवस्था की अंग नही हैं आखिर तो रिश्ते भी व्यवस्था की ही देन होते हैं। उनके सम्बन्ध में हमारी प्रतिक्रिया और हमारा प्रतिवाद भी तो उस मूल्यपद्धति और व्यवस्था के खिलाफ होता है, जिसकी वे देन है।

कथाकार विजय मोहन ने भी अभिज्ञापित किया है कि शराबघर और रेस्तराँ जो साठोत्तरी कहानी में बतौर 'जलसाधर' इस्तेमाल होते रहे है और जिनसे पाठक वर्ग एलर्जी की हद तक विरक्त हो चुका था,वही 'रेस्तराँ' जब 'घंटा' मे नजर आता है तो लगता है, गोया कोई रचनाकार उनमें पहली बार घुसा हो। 'घण्टा' का पात्र उस 'रेस्तराँ' के माध्यम से एक पूरे वर्ग के 'शीश महल'को तोड़ता है। कहानी में आमने-सामने दो वर्ग है,एक छोर पर 'पेट्रौला' है, "जहाँ के लोग संत मलूकदास है। जो जगह एक राहत में बदल गयी थी। मेरे साथियों को बीबी-बच्चों, समाज, देश, दुनिया से शायद ही कोई ताल्लुक रह गया था। ये लोग एंटी नही, घोर स्वाभाविक थे। अपने साथियों में ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति था जिसका फैसला जिन्दगी ने अभी नही किया था और जो लालचों के बीच अभी गौर और सूझबूझ का तरीका इस्तेमाल कर रहा था। xxx (215)यही वह बीच का आदमी है, जो आजादी के बाद 'निर्णयों' में बुद्धिजीवी की भूमिका अदा कर रहा था। दूसरे छोर पर वह आमोदगृह रेस्तराँ है -"जिसका असल संसार से कोई वस्ता नही लगता था। यहाँ कोई व्यक्ति गुस्सैल,गम्भीर, और दुखी नजर नही आ रहा था। सब स्वस्थ, तर और चिकने चेहरे थे। और जहाँ पुरूष समझ रहे थे गाती हुई लड़की वेश्या के बराबर है और उनकी औरते वेश्या नहीं है। (216)

शायद असली दुनिया दोनों में कोई नहीं है, पर 'पेट्रोल' के संत मलूकदास की दुनिया के जिम्मेदार उस 'शीशमहल' के लोग हैं जो अपने 'इक्वेरियम' में चारा चबाते हुए कसाइयों की तरह दिखाये जाते है। कहानी के अंत में सहसा यह 'बीच का आदमी' एक सिनिकल निर्णय लेता है और

इस 'इक्वेरियम' को तोड़ता हुआ अपनी 'पेट्रोल' की दुनिया में वापस आ जाता है। इस तरह कहानी एक प्रतीकात्मक वर्ग संघर्ष में बुद्धिजीवी की हैसियत को उसकी दीनता तथा प्रतिरोधात्मकता, दोनों को एक साथ व्यक्त करती हैं।

'घण्टा' कहानी किसी का अनुकर्ता, अंधानुसरण और पिछलग्गू बने रहने की मानसिकता से छुटकारा पाने का प्रयत्न है। 'घण्टा' सामाजिक वर्गो के बोध और उनमें संवादहीनता की समस्या लेकर चलती है और वर्गावरोहण या वर्गविच्युति की हास्यास्पदता को उजागर करती है और इस बात को रेखांकित करती लगती है कि वर्गचेतना के बिना व्यवस्था से कोई भी लड़ाई असम्भव है। घण्टा' का अपना लोकभाषायी अर्थ संदर्भ उस हास्यास्पदता को तीखे व्यंग का शिकार बनाता है। (217) कहना न होगा कि निम्न मध्य वर्ग की मानसिकता को भी ज्ञानरंजन बड़ी कलात्मकता के साथ उजागर करते हैं कि उनकी पत्नी तो सती-सावित्री सीता या मरियम है पर होटल रेस्टराँ, क्लबगृह और डिस्को येम में काम करनेवाली स्त्री वेश्या है।

3.39 **काशीनाथ सिंह :** काशीनाथ सिंह प्रगतिशील चेतना ,जनवादी प्रतिबद्धता से स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में जो मानवीय अपेक्षा है, आदिम, प्राकृत पशुवत भूख और परम्परागत सोच, उसे कलात्मक रूप से अपनी कहानियों में दर्शाते है। जिसका प्रमाण 'लोग बिस्तरों पर' कहानी है। वैसे उन्होने राजनैतिक चेतना,प्रतिबद्धता ओर वर्गान्तरण की रचनाएँ कथा स्तर व संस्मरण बोध से लिखी है। बकौल रामचन्द तिवारी के वे अपने लेखन के प्रत्येक दौर में वे सामान्य आदमी के पक्षधर रहे है। नगरीय जीवन के छल-छंद से परे उनका ,सहज ग्रामीण मन अपने खरे स्वभाव के साथ निरन्तर उनके साथ रहा है।(218)

'लोग बिस्तरों पर' संग्रह की पहली कहानी 'संकट' का नायक राधो एक मिलिटरी मैन है। उसका संकट छुट्टी के दिनों में गाँव आकर अपने पत्नी से 'सेक्स' न कर पाने का संकट है। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में यह परिवेशजन्य और वास्तविकता के सीधे साक्षात्कार का संकट है। (219) 'संकट' का राधो एक मिलिटरी मैन है। उसका संकट वास्तव में सेक्स संकट है तथा वास्तविकता के सीधे साक्षात्कार का संकट है। एक छुट्टी में जब वह घर आता है तो घर बच्चा हुआ है और उसकी स्त्री सौरी में है। इसे लेकर उसकी एक अपरिभाषित और अबूझ बेचैनी न केवल उसके परिवार की अपितु उसके दोस्त मित्रों की भी बेचैनी हो जाती है। वह इतना कुंठित हो गया है कि जरा सी छींक या तनिक सी हँसी पर झुँझलाकर औरत को पीटने लगता है। वह कहता है -"अगर इस साले बच्चे को होना ही था तो क्या यह दो-चार महीना आगे-पीछे नहीं हो सकता था ? यानि उसने आकर इसकी छुट्टी खराब कर दी।

एक ओर पुरातन बोध है जो समाज की स्वीकृत व्यवस्था की ओर से आता है ओर दूसरी ओर शरीर की तात्कालिक भूख है और दोनों का

आंतरिक संघर्ष इस पर होता है कि औरत के लिए ही तो वह छुट्टियों में घर आता है। उस हाईस्कूल फेल मिलिटरी मैन के लिए 'औरत संसार का आर्नामेंट' अथवा 'फीगर ऑफ स्पीच' है।(220)

काशीनाथ सिंह की स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बीच वैचारिक अन्तराल,क्षणों की अलगाव भरी प्रतीति की कहानी 'आखिरी रात' हैं। वित्तीय आर्थिक संकटों की कटु स्थिति यहाँ पृष्ठभूमि में सक्रिय है। 'प्रेम यहाँ भी-पति-पत्नी के बीच है।(221) नैरेटर नागरिक है जिसकी पत्नी दूसरे दिन अपने गाँव (नैहर) जानेवाली है। रात गये वह शैया पर आती है जहाँ नैरेटर आकुलता से उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। पैर दबाता है, मीठी बातें करता है, पास सो जाता है लेकिन दोनों के मूड दो छोर पर है।

उसके शरीर की भूख 'जहाँ तरंग पर है वहाँ आर्थिक मामले, मजबूरियाँ, लोग क्या कहेंगे' के चक्कर और दिखावे में अपना सर्वनाश आदि का खरोच ऐसी बेजगह लगता है कि उसका मूड़ ऑफ हो जाता है। फिर गहरी खामोशी, तनाव, जागरण और सिसकी के आयाम क्रमशः उभरते है। नैरेटर में एक पश्चाताप, 'मैं पत्नी को पूरी तरह प्यार कर सका होता।' इस पश्चातांप से संदर्भित यथार्थ अपनी अनकही पेचीदगियों के साथ पाठकों के भीतर मुखर हो उठता है।(222)

शोध प्रबंध की अपनी सीमा है अतः हम उदय प्रकाश, स्वयंप्रकाश ,संजीव सृंजय, मणिका मोहिनी, जया जादवानी और चित्रा मुदगल आदि की रचनाओं के साक्ष्य विस्तृत रूप से पेश नही कर पायेंगे। आगामी अध्यायों में उनका प्रसंगानुसार विवेचन होगा। कहना न होगा पर चित्रा मुदगल की कहानी 'चेहरे'एक ऐसी भिखारन को रेखांकित करती है जो टिकट घर के पास लाइन में खड़े लोगों से बार-बार भीख मांगती है। वहाँ किसी की जेब कट जाने पर उस भिखारिन पर ही इल्जाम लगाया जाता है। बार-बार अपने बच्चे की सौगंध खाने पर भी ,पुलिस वाले उसे दूर भगा देते है। वह फिर भाग आती है और दौड़ कर उसी जगह भीख मांगने के लिए बच्चे को लेकर बैठ जाती है। बडी धृष्टता से वह भीड़ को ललकारती हुई कहती है -"दम है तो लगा हाथ ,बुला उसे बड़े बाबू को देखती हूँ कौन हिलाता है मुझको.... वह जो बबू बैठते आत मध्ये (भीतर) हफ्ता लेते है मेरे से ...और ये भड़वे पुलिसवाले क्या पकड़ेंगे मेरे को रात भर यारड़ में लें जाके ।(223) स्पष्ट है कि उस भिखारिन से रेल के बाबू लोग हफ्ता लेते है और पुलिस वाले इज्जत।

भिखारिन का यह जो नया रूप हमारे सामने चित्रा मुदगल ने रखा है उससे स्पष्ट होता है कि दया या भीख के नाम पर आज व्यवसाय हो रहा है। व्यवसाय कुछ ऐसी भ्रष्ट हो गयी है कि भिखारियों से भी हफ्ते लेने के लिए संबंधित लोग नही हिचकते है।

कथाकार मणिका मोहिनी ने अपनी रचनाओं में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों को विविध रूपों व कोणों से रूपायित किया है। इनकी अधिकांश कहानियों में नारी की समस्या का वह रूप मुखरित हुआ है जो मौन और रोमांटिक

है। इन कहानियों में नारी के अपमान, वेदना और पीड़ा के जो चित्र उभरे है,वे मार्मिक है। कहना न होगा माणिका मोहिनी की कहानियाँ 'बोल्डनेस' की कहानियाँ है। इनकी नारी पात्रों की यह बोल्डनेस-पति के साथ अविश्वास, ऊब, झुँझलाहट और एकरसता की जिन्दगी बिताने की नियति को नकारने,पर पुरूषों की प्राप्ति के लिए भटकने, पत्नी नही दोस्त बनकर जीने, शारीरिक सम्बन्धों से विरक्त होने,नयी-नयी दोस्तियाँ करने,अनेक प्रकार से पति को झुठलाने,पति के साथ समान धरातल पर प्रतिष्ठित होने का अहं पालने तथा सभी प्रकार की भावनाओं से मुक्त होकर ठोस धरातल पर व्यावहारिक निर्णय लेने में व्यक्त हुई हैं। 'इनोंसेंट लवर' कहानी में किशोर काम- सम्बन्धों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है। एक विवाहित स्त्री जो एक पुत्र की माँ भी है, एक युवक से संपर्क करती है और दोनों प्रेम करने लगते हैं। किन्तु जब लड़के को ज्ञात होता है कि लड़की उससे पाँच वर्ष बड़ी है, तो उसमें ठण्ड़ापन आ जाता है। उसमे प्रेम की भावना समाप्त होने लगती है। यह कहानी व्यक्ति-चरित्र के धरातल से निर्मित होकर मनोवैज्ञानिकता की दिशा में विकसित हुई है।

समकालीन कहानी के वामपंथी-जनवादी परिदृश्य में सृंजय कृत **'कामरेड का कोट'** का हम विस्मृत नहीं कर पायेंगे और न ही स्वयं प्रकाश, उदय प्रकाश, अखिलेश, रोहिताश्व, जया जादवानी आदि की रचनाओं को। पर अधिकांश रचनाकार जब राजनैतिक चेतना और परिवर्तित समाज की रचनाएँ लिख रहे है तब हमे स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में परिवर्तन की अन्तर्जटिलता को रेखांकित करने के लिए प्रासंगिक कहानियों की विवेचना अवश्यम्भावी है।

आगामी अध्याय 'स्त्री-पुरूष सम्बन्ध :परिवर्तित समाज और विश्लेषण में हम समकालीन कहानियों में वर्णित संयुक्त परिवार, एकल परिवार, विवाह पूर्व और विवाहेत्तर सम्बन्ध नारी जीवन की अस्मिता और स्वतंत्रता के सन्दर्भ अभिज्ञापित करना चाहेंगे।

संदर्भ सूची : तृतीय अध्याय

1. धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र	पृ.97
2 धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र	पृ.99
3 देवी शंकर अवस्थी	: नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति	पृ.76
4 उपेन्द्रनाथ अश्क	: द्वारा नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति	पृ.106
5 धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र	पृ.88
6 राजेन्द्र यादव	: कहानी :स्वरूप और संवेदना	पृ.41
7 धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का सफरनामा	पृ.22
8 रोहिताश्व	: समकालीनता और शाश्वतता	पृ.54
9 रामचन्द्र तिवारी	: हिन्दी का गद्य साहित्य	पृ.310
10 घनश्यामदास भुतडा	: समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप	पृ.91
11 राजेन्द्र यादव	: जहाँ लक्ष्मी कैद है	पृ.195
12 राजेन्द्र यादव	: जहाँ लक्ष्मी कैद है	पृ.211
13 देवी शंकर अवस्थी	: नयी कहानी :संदर्भ और प्रकृति	पृ.27
14 धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का सफरनामा	पृ.226
15 रामचन्द्र तिवारी	: हिन्दी का गद्य साहित्य	पृ.311
16 घनश्यामदास भुतडा	: समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप	पृ.144
17 मोहन राकेश	: मिस पाल :श्रेष्ठ कहानियाँ	पृ.131
18 मोहन राकेश	: मिस पाल :श्रेष्ठ कहानियाँ	पृ.132
19 धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का सफरनामा	पृ.45
20 रामचन्द्र तिवारी	: हिन्दी का गद्य साहित्य	पृ.311
21 रघुवीर सिन्हा	: आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यों से प्रेरणा	पृ.34
22 कमलेश्वर	: राज निरबंसिया	पृ.78
23 मधुरेश	: हिन्दी कहानी का विकास	पृ.82
24 कमलेश्वर	: राजा निरबंसिया	पृ.81
25 रोहिताश्व	: वर्तमान साहित्य सितम्बर २००७	पृ.74
29. कमलेश्वर	: मांस का दरियाः मेरी प्रिय कहानियाँ	पृ.8
27. कमलेश्वर	: मांस का दरियाः मेरी प्रिय कहानियाँ	पृ.89

27. कमलेश्वर : मांस का दरियाः मेरी प्रिय कहानियाँ पृ.89

28. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.95

29. कमलेश्वर : मेरी प्रिय कहानियाँ पृ.89

30 कमलेश्वर : मेरी प्रिय कहानियाँ पृ.91

31. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.96

32. कमलेश्वर : नयी कहानी की भूमिका पृ.19

33. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.84

34. नामवर सिंह : नयी कहानी पृ.60

35. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.311

36. निर्मल वर्मा : कला को जोखिम पृ.32

37. वीर भारत तलवार : आलेचना,जुलई-सितंबर 1989 पृ.46

38. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.137

39. निर्मल वर्मा : परिन्दे पृ.146

40. निर्मल वर्मा : परिन्दे पृ.172

41. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.37

42. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.58

43. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 27 मई 2009

44. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.335

45. मधुरेश : हिन्दी कहानीः पुनर्विचार पृ.256

46. गुरूचरण सिंह : नरेन्द्र मोहन रचनावली पृ.69

47. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 27 मई 2009

48. मन्नू भण्डारी : प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.31

49. मन्नू भण्डारी : प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.36

50. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों मे नारी के विविध रूप पृ.18

51. मन्नू भण्डारी : एक प्लेट सैलाब पृ.18

52. मन्नू भण्डारी : एक कमजोर लडकी की कहानी पृ.63

53. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.127

54. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.335

55. कृष्णा सोबती : बादलों के घेरे पृ.29

56. मधुरेश : हिन्दी कहानीः पुनर्विचार पृ.236
57. कृष्णा सोबती : मित्रो मरजानी पृ.20
58. कृष्णा सोबती : मित्रो मरजानी पृ.71
59. मधुरेश : हिन्दी कहानीः पुनर्विचार पृ.237
60. कृष्णा सोबती : मित्रो मरजानी पृ.117
61. मधुरेश : हिन्दी कहानीः पुनर्विचार पृ.
62. कृष्णा सोबती : मित्रो मरजानी पृ.84
63. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.107
64. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.74
65. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.120
66. उषा प्रियंवदा : जिन्दगी और गुलाब के फूल पृ.134
67. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.107
68. उषा प्रियंवद : जिन्दगी और गुलाब के फूल पृ.103
69. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.313
70. नरेन्द्र मोहन : नरेन्द्र मोहन रचनावली पृ.77
71. मधुरेश : हिन्दी कहानीः पुनर्विचार पृ.104
72. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 14 एप्रिल2009
73. मधुरेश : हिन्दी कहानीः पुनर्विचार पृ.104
74. फणीश्वरनाथ रेणु : ठुमरी पृ.136
75. फणीश्वरनाथ रेणु : ठुमरी पृ.162
76. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.29
77. उषा झा : हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श पृ.102
78. यादवेन्द्र शर्मा : मिनरव खोरी पृ.81
79.धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.237
80.फणीश्वरनाथ रेणु : आदिम रात्रि की महक पृ.180
81. मधुरेश : हिन्दी कहानीः पुनर्विचार पृ.110
82. निर्मल वर्मा : ऋण जल धनजल में संकलित पृ.18
83. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.314
84.मार्कण्डेय : कहानी फरवरी 1959 पृ.70
85. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 18 अगस्त 2008
86. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.161
87. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.33
88.धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.244
89. प्रमिला कपूर : भारत के विवाद और कामकाजी महिलाएँ पृ.83
90. ममता कालिया : एक अदद औरत पृ.13
91. जी.पुष्पलता : समकालीन कहानी हिन्दी कविता के

92. अशोक भाटिया : समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास पृ.138
93. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 2 जनवरी 2009
94. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र पृ.138
95. शशिकला राय : कथा समयः सृजन और विमर्श पृ.183
96. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वाता_ 2 जनवरी 2009
97. विजय मोहन सिंह : आज की कहानी पृ.99-100
98. अशोक भाटिया : समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास पृ.118
99. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 3 जनवरी 2009
100. कीर्ति केसर : जगदीश चतुर्वेदी : विवादास्पद रचनाकार पृ.432
101. कीर्ति केसर : स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की कहानियाँ पृ.433
102. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.129
103. मन्मथलाल गुप्ता : यौन मनोविज्ञान पृ.65
104. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.130
105. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.130
106. दूधनाथ सिंह : सुखांत पृ.156
107. दूधनाथ सिंह : सपाट चेहरेवला आदमी
108. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.147
109. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.315
110. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 4 जनवरी 2008
111. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.125
112. गंगाप्रसाद विमल : समकालीन कहानी का रचना विधान पृ.103
113. गंगाप्रसाद विमल : हिन्दी कहानी और परका पृ.106
114. विजय मोहन सिंह : आज की कहानी पृ.101
115. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.126
116. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.127
117. विजय मोहन सिंह : आज की कहानी पृ.100
118. अशोक भाटिया : समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास पृ.28
119. विजय मोहन सिंह : आज की कहानी पृ.115
120. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.315
121. रमेश बक्षी : बाहर आये हुए लोग पृ.55
122. रमेश बक्षी : बाहर आये हुए लोग पृ.61
123. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वाता_ 20 जनवरी 2009
124. रमेश बक्षी : मेजपर टिकी हुई कहानियाँ पृ.41
125. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.35

125. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.35
126. गुरूचरण सिंह : नरेन्द्र मोहन रचनावली पृ.71
127. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वाता_ 11 जनवरी 2009
128. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.79
129. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.340
130. सुधा अरोडा : बगैर तराशे हुए पृ.27
131. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों मे नारी के विविध रूप पृ.136
132. सुधा अरोडा : महानगर की मैथिली :कथा वर्ष 78 पृ.190
133. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ. 149
134. .रोहिताश्व : निजी वार्ता : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 15 जनवरी 2009
135. निरूपमा सेवती : भीड में तुम कहानी जून 1970 पृ.33
136. निरूपमा सेवती : खामोशी को पीते हुए पृ.31
137. निरूपमा सेवती : आतंक बीज पृ.89
138. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों मे नारी के विविध रूप पृ.119
139. निरूपमा सेवती : खामोशी को पीते हुए पृ.46
140. निरूपमा सेवती : खामोशी को पीते हुए पृ.47
141. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.148
142. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.336
143. उपेन्द्रनाथ अश्क : वर्तमान साहित्य :कहानी महाविशेषांक पृ.335
144. दीप्ति खण्डेलवाल : अर्थ : नारी मन पृ.4
145. दीप्ति खण्डेलवाल : अर्थ : नारी मन पृ.14
146. दीप्ति खण्डेलवाल : तपिश के बाद पृ.66
147. दीप्ति खण्डेलवाल : तपिश के बाद पृ.68
148. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों मे नारी के विविध रूप पृ.140
149. दीप्ति खण्डेलवाल : हव्वा :धूप के अहसास पृ. 46
150. सुनंत कौर : समकालीन हिन्दी कहानी : स्त्री-पुरूष सम्बन्ध पृ. 117
151. विवेकी राय : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ. 316
152. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.129

153. रवीन्द्र कालिया : काला रजिस्टर पृ. 129
154. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 18 जनवरी 2009
155. सुरेन्द्र चौधरी : वर्तमान साहित्य : कहानी महाविशेषांक पृ. 238
156. नामवर सिंह : नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति पृ.235
157. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 20 एप्रिल 2009
158. रोहिताश्व : समकालीनता और शाश्वतता पृ.177
159. उमिर्ला शुक्ल : मैत्रेयी की नारी संवेदना,चाणक्य विचार अंक 12 मई 2009 पृ.43
160. काशीनाथ सिंह : प्रगतिशील वसुधा पृ.325
161. मृदुला गर्ग : उर्फ सैम पृ. 89
162. गुरूचरण सिंह : नरेन्द्र मोहन रचनावली खंड-7 पृ.56
163. मृदुला गर्ग : कितनै कैद में पृ. 61
164. मृदुला गर्ग : चर्चित कहानियाँ पृ. 14

165 मृदुला गर्ग , : चर्चित कहानियाँ पृ. 25
166. शोभा निंबालकर : हिन्दी कहानी और नारी विमर्श पृ. 217
167. मृदुला गर्ग : ग्लेशियर पृ. 83
168. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.130
169. रोहिताश्व : शोध कर्त्री की निजी वार्ता 21 एप्रिल 2009
170. इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ. 314
171. गुरूचरण सिंह : नरेन्द्र मोहन रचनावली खंड-7 पृ.30
172. दूधनाथ सिंह : नरेन्द्र मोहन रचनावली खंड-7 पृ.215
173. कृष्ण बलदेव वैद्य : शिनाख्त पृ.81
174. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.342
175. कृष्णा अग्निहोत्री : टीन के घेरे पृ.41
176. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.128
177. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.343
178. मैत्रेयी पुष्पा : गोमा हँसती है पृ.16

179. पुष्पालता सिंह : महिला कहानीकार :प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.198
180. चित्रा मृद्गल : 'लपटे' पृ.54

181. मैत्रेयी पुष्पा : ललमनियाँ पृ.18
182. शोभा निंबालकर : हिन्दी कहानी और नारी विमर्श पृ.162
183. मैत्रेयी पुष्पा : चिन्हार पृ.203
184. उमिर्ला शुक्ल : मैत्रेयी की नारी संवेदना,चाणक्य विचार अंक 12 मई 2009 पृ.44
185. मैत्रेयी पुष्पा : ललमनियाँ पृ.118
186. उमिर्ला शुक्ल : मैत्रेयी की नारी संवेदना,चाणक्य विचार अंक 12 मई 2009 पृ.44
187. मैत्रेयी पुष्पा : चिन्हार पृ.77
188. शोभा निंबालकर : हिन्दी कहानी और नारी विमर्श पृ.144
189. उमिर्ला शुक्ल : मैत्रेयी की नारी संवेदना,चाणक्य विचार अंक 12 मई 2009 पृ.163
190. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.328
191. मधुरेश : समकालीन हिन्दी कहानी का विकास पृ.118
192. मधुरेश : समकालीन हिन्दी कहानी का विकास पृ.119
193. शिवमूर्ति : केशर-कस्तुरी पृ.127
194. शिवमूर्ति : केशर-कस्तुरी पृ.129
195. विरेन्द्र मोहन : पहल पुस्तिका-कथा समय दो पृ.88
196. शोभा निंबालकर : हिन्दी कहानी और नारी विमर्श पृ.28
197. नमिता सिंह : जंगल गाथा पृ. 81
198. नमिता सिंह : जंगल गाथा पृ.102
199. वेदप्रकाश अमिताभ : हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य पृ. 28
200. कर्ण सिंह चौहान : लहर दिसंबर 78 पृ. 63
201. शोभा निंबालकर : हिन्दी कहानी और नारी विमर्श पृ.26
202. नसिरा शर्मा : औरत के लिए औरत पृ.181
203. मधुरेश : हिन्दी कहानीः पुनर्विचार पृ.273
204. नसिरा शर्मा : बुतरखाना पृ.103
205. सुमन राजे : हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास पृ.317
206. नसिरा शर्मा : मिस्त्री की ममी पृ.97
207. नसिरा शर्मा : बुतरखाना पृ.97
208. शोभा निंबालकर : हिन्दी कहानी और नारी विमर्श पृ.122
209. मृदुला गर्ग : समागम पृ.114
210. नसिरा शर्मा : शामी कागज पृ.127
211. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.150

212. विवेकी राय : हिन्दी कहानी :समीक्षा और संदर्भ पृ. 112
213. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.150
214. विवेकी राय : हिन्दी कहानी :समीक्षा और संदर्भ पृ. 113
215. विजय मोहन सिंह : आज की कहानी पृ.150
216. ज्ञानरंजन : सपना नहीं पृ. 87
217. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.152
218. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.317
219. काशीनाथ सिंह : लोग बिस्तरों पर
220. विवेकी राय : हिन्दी कहानी :समीक्षा और संदर्भ पृ. 94
221. विवेकी राय : हिन्दी कहानी :समीक्षा और संदर्भ पृ. 96-97
222. काशीनाथ सिंह : लोग बिस्तरों पर
223. चित्रा मृद्गल : चेहरे सारिका अंक 344 पृ.24
224. अशोक भाटिया : समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास पृ.88

4. स्त्री-पुरूष सम्बन्ध : परिवर्तित समाज और विश्लेषण

प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय समाज धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष के मूल्यसिद्धांतो पर आधारित रहा है। आधुनिक काल में स्त्री-पुरूष के पारस्परिक सम्बन्ध 'धर्म' और 'काम' के पारम्परिक मूल्यों से हटकर आत्मनिर्भरता,स्वातंत्र्य और मुक्ति कामना और देह स्वतंत्रता के पर्याय बने हैं। पुरूष धनुष है और स्त्री प्रत्यंचा ,पुरूष साध्य है और स्त्री साधना अथवा माध्यम, पुरूष देवता है और स्त्री उसकी अनुगमन कर्ता। ऐसी मान्यताओं को पुराना मान लिया गया है। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नामक ग्रंथ में महादेवी वर्मा ने नारी के पुरातन और नव्यरूप की मीमांसा की है। महादेवी वर्मा के विचार से 'पुरूष समाज का न्याय है,स्त्री दया, पुरूष प्रतिशोधमय क्रोध है,स्त्री क्षमा; पुरूष शुष्क कर्तव्य है, स्त्री हृदय की प्रेरणा ऐसा एक भी सामाजिक प्राणी नहीं मिलेगा जिसका जीवन माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री आदि स्त्री के किसी-न-किसी रूप से प्रभावित न हुआ हो।" (1) सामान्यतः सौन्दर्य एवं रूप का भण्ड़ार नारी,आदिकाल से ही मानव हृदय की रागात्मक वृत्तियों की प्रेरणा स्त्रोत रही है। प्रेम की परिपूत प्रतिभा तथा चिर आकर्षणमयी नारी अपने अलौकिक सौन्दर्य तथा असीम मानवीय गुणों के कारण ही प्रत्येक देश में सदा से विद्वानों, कलाकारों, तथा कवियों का आकर्षण एवं साहित्य का प्राण रही है। पर मध्य युगीन दौर में पूर्व सामन्ती काल से स्त्री उपभोग, ऐश्वर्य, श्रीवृद्धि और यौनाकांक्षा का माध्यम रही है।

एक पुरूष के लिए विवाहिता महिला के साथ-साथ अन्य महिलाओं का प्रावधान सामन्ती और मध्य युगीन दौर की देन है।

पुरूष वर्ग ने अपने लिए अलग नैतिकता, और यौन सम्पर्कों के नियम बनाये और स्त्रियों के लिए देवदासी, नगरवधू, गायिका, गणिका आदि के अनेक प्रावधान रचे हैं। देवी शंकर अवस्थी ने भी कहा है कि मध्य युगीन दौर में नैतिक मूल्यों का विघटन होने लगा। मध्य युगीन सामन्तवादी नैतिकता हमारे काम की चीज नहीं रह गई। हमारे आदर्श, जीवन-पद्धति, समाज और परिवार नीति, सब में युगानुकूल नये मूल्यों की प्रतिष्ठा की माँग की। शासन वर्ग ने समाज से फासला बना लिया जो बढ़ता ही गया। चारित्रिक असंयम, भ्रष्टाचार, दायित्व हीनता और बेईमानी का नया नाच होने लगा। इसी समय यूरोप के साहित्य के द्वितीय महायुद्ध के पश्चात आशंका, भय, अनिश्चितता, मूल्यों का विघटन, पतनशील प्रवृत्तियों का उदय, जीवन के प्रति अनास्था, मृत्यु और वेदना की जीवन पर प्रतिष्ठा आदि ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियाँ ही एक सिरे से प्रगट होने लगीं। (2)

पाठक वर्ग अपनी रूचि, प्रवृत्ति और प्रशिक्षण के अनुरूप रचनाकार की कृतियों में स्त्री-पुरूष के पारम्परिक स्वरूप, परिवर्तित स्वरूप, युगानुरूप अभिशंसा से तलाश कर लेता है। पाठक और कहानीकार संयुक्त परिवार एकल परिवार, विवाह पूर्व और विवाहेत्तर संबंधों के बारे में अच्छी तरह जानता है। राजेन्द्र यादव ने जिसकी ओर संकेत करते हुए कहा है कि हर कहानीकार अपने लेखन-काल में सभी तरह की कहानियाँ लिखता है, और परम्परा तलाश करने वाले अपने आपको किसी भी कहानी से आसानी से जोड़ सकते हैं। लेकिन एक विशेष प्रकार की कहानी का प्रारम्भ हिन्दी में 'कफन', 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी', और 'रोज' जैसी कहानियों से हुआ था। इसमें किसी भी कहानी को उसके अपने आदि, अन्त, कथानक या आइडिया के कोण से नहीं समझा जा सकता, उन्हें सम्पूर्ण संस्कृति, विघटन और संक्रमण की सापेक्ष स्थिति में रखकर ही समझा जा सकता है कि क्यों बाप-बेटे कफन बेचकर शराब पी गए, या क्यों दो नवाबजादे असली बादशाह के लिए लड़की के शाहवजीरों के लिए लड़ मरे ? वरना अलग से देखे तो इन लोगों के कार्यकलाप में कहीं कोई तुक या अन्विति है ? (3)

इसी प्रकार उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी में संयुक्त परिवार के कर्ता-धर्ता गजाधर बाबू की टूटन का अहसास देखा जा सकता है और महेन्द्र भल्ला,रमेश बक्षी की कहानियों में विवाहपूर्व सम्बन्धों का रेखांकन उपलब्ध है। कृष्णा अग्निहोत्री, मृदुला गर्ग अगर विवाहेत्तर सम्बन्धों का चित्रांकन रचती हैं तो मैत्रेयी पुष्पा, नमिता सिंह नारी जीवन की अस्मिता और स्वतंत्रता की पक्षधर बनकर हमारे सामने आती हैं।

4.1 संयुक्त परिवार बनाम एकल परिवार : शहरी और ग्रामीण जीवन

स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बारे में जब हम विचार करते हैं तो परिवार संस्था का ध्यान आता है। परिवार अर्थात विवाह संस्था जिस पर सामूहिक सहमति की मुहर लगी हो। इसका जन्म स्त्री-पुरूष की जैविक जरूरतों को ध्यान में रखकर हुआ होगा। XXX 'दाम्पत्य-सम्बन्ध स्त्री-पुरूष के मिलन को चरण संगति है। इन सम्बन्धों का मुख्य आधार प्रेम है। दोनों के प्रेम से ही परिवार, संस्था मजबूत होती है। समाज व देश इससे आगे बढ़ता है। (4)

ग्रामीण परिवेश और मध्यवर्गीय शहरी परिवारों में पहले संयुक्त परिवार की परम्परा कायम रही है। पर विगत पचास वर्षो में महानगरों की ओर प्रयाण से, रोजी-रोटी की समस्या से, शिक्षा के प्रचार-प्रसार से टेक्नोक्रेट, वकील, डॉक्टर और एक्जीक्यूटीव वर्ग में एकल परिवारों की बढ़ोत्तरी हुयी है। जिससे स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में अभूतपूर्व बदलाव परिलक्षित होता है।

कहना न होगा कि आधुनिक जीवन में नवीन एवं परिवर्तनशील दृष्टि से मुक्त हर स्त्री धर्म, विवाह, परिवार, दाम्पत्य, पीढ़ी अन्तराल, परंपरागत संस्कार, रीति-रिवाज, शिक्षा एवं स्वातंत्र्य सभी पहलुओं में अपने आपको बदला हुआ पाती है। अब अपने प्राचीन संस्कारों को अपनाकर भी नवीन आयमों को लेकर चल रही है एवं इस कोशिश में कहीं तो अपने आपको सधा हुआ महसूस करती है; तो कहीं दोनों संस्कारों का मूल्यांकन करती हुई 'अनएडजस्टमेन्ट' की स्थिति में पाती है। सब कुछ मिलाकर उसका परिवेश उसके परिवार, माता-पिता एवं जातिगत संस्कार, शिक्षा तत्पश्चात आवश्यकता, परिस्थितियों एवं विवाह पश्चात पति एवं उसके परिवार से सामंजस्य करने की स्थितियों एवं महत्वाकांक्षाओं या आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए अपनाये गये कैरियर एवं उसकी मांगों के अनुसार ,वह एक मिलेजुले सांस्कृतिक माहौल में जी रही हो,जिसे किसी परिभाषा में आबद्ध नहीं किया जा सकता है और यही आज के समय की माँग है। (5)शहरी जीवन की विसंगतियों पर, स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की विलक्षणता पर मिसपाल, सुहागिनें, जहाँ लक्ष्मी कैद है, परिन्दे, ऐ लड़की आदि की चर्चा पिछले अध्याय में की गयी है।

भारतीय जन जीवन में ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में सामन्तवादी प्रवृत्ति अभी भी कायम है। ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में यह सामान्य मान्यता तो थी ही कि लड़के वालों का पक्ष सदा ऊँचा और लड़कीवालों का पक्ष नीचा। इसके साथ ऐंठ,भी प्रायः रहती थी कि बात का मजा तो चखा दिया। कमलेश्वर कृत 'राजा निरबंसिया' कहानी के पात्र जगपती का परिवेश ऐसा ही समाज है और उसकी संपूर्ण नियति उसे भोगनी है। XXX बात चाहे इतनी सी हो कि शादी के बाद ही लड़की की बिदाई हो गयी हो, जब कि लड़की वालों को कुछ विश्वास रहा हो कि

शादी के बाद लड़की की बिदाई नहीं होगी। ब्याह हो जाएगा और सातवीं भावर तब पड़ेगी जब पहली बिदाई की सायत होगी और तभी लड़की अपनी ससुराल जाएगी। यद्यपि जगपती की पत्नी थोड़ी बहुत पढ़ी-लिखी थी। पर घर की लीक को कौन मेटे। XXX बारात बिना बहू के वापस आ गयी और लड़के वालों ने तय कर लिया कि जगपती की शादी कहीं और कर दी जाएगी फिर चाहे यह लड़की काली-लूली हो, पर आन तो रह जाएगी। लड़के वालों की ... और लड़की वालों को कम से कम नीचा तो दिखा दिया जाएगा। (6)

लड़के वालों की चुनौती का स्वाभाविक असर यह हुआ कि लड़की वालों ने साल खत्म होते होते माफी मांग ली और जगपती की पत्नी अपनी ससुराल आ गयी। XXX बहू के आगमन पर पारिवारिक भूमिकाएँ भारतीय सांस्कृतिक समाज में किस प्रकार बदलती हैं और पारिवारिक संरचना में नई स्थिति पैदा हो जाती है, यह समाजशास्त्रीय शोध का विषय हो सकता है।

वर्तमान दौर में चाहे शहरी जीवन हो या ग्रामीण क्षेत्र। कामकाजी महिलाओं का आर्थिक शोषण परिवार के लोग ही करते हैं, उनकी दैहिक-मानसिक इच्छाओं की तृप्ति के बारे में कोई नहीं सोचता है। प्रसंगवश मन्नू भण्डारी की 'एखाने आकाश नेई' की सुषमा सोचती है, "पिछले तीन साल से मैं केवल घरवालों के लिए ही मर खप रही हूँ। नौकरी के साथ-साथ दो-दो ट्यूशनें करके मैंने घर का सारा खर्च चलाया। अब पिंकी ने बी.ए,पास कर लिया ,तो अपनी बात सोचना शुरू किया। पर इन लोगों से इतना भी नहीं होता कि मेरी हँसी-खुशी में भी साथ दें। इन लोगों के खयाल से मैं बहुत सुन्दर हूँ। पढ़ी-लिखी तो हूँ ही, सो ये सोचते हैं कि इस आधार पर तो ये मुझे बड़ी आसानी से किसी सम्पन्न परिवार में ब्याह सकते हैं -ऐसे परिवार में जहाँ जाकर मैं छोटी बहन का बोझ अपने ऊपर ले सकूँ। (7)

बीमारी (ममता कालिया), क्षय (मन्नू भण्डारी), घर (सुधा अरोड़ा) आदि कहानियों में अविवाहित नौकरी पेशा नारी की इसी समस्या का दिग्दर्शन है। महत्वाकांक्षा और पुरूषों के बराबर क्षेत्र में सफलता पाने की प्रतियोगिता में ऊँचे चढ़ने की चाह वाली 'कैरियन वुमैन' बनने की लालसा भी स्त्री को सहज न बनने एवं परिवार की मान्यता बदलने के लिए जिम्मेदार है। जिसका विवेचन नई कहानी आन्दोलन, अकहानी आन्दोलन के साथ-साथ जनवादी प्रवृत्ति के रचनाकारों ने भी किया है।

नारी जीवन के अनछुए पहलुओं पर लिखी गयी रेणु, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, शिवप्रसाद सिंह की कहानियों का जिक्र विगत अध्याय में किया गया है। प्रसंगवश रेणु के आंचलिक कथा-शिल्प की एक सबसे बड़ी विशेषता है अनुरंजनकारी, विनोदपूर्ण, हास्य-व्यंग्यमूलक,उत्फुल्ल स्थितियों, चित्रों अथवा रेखाचित्रों का अंकन। 'जलवा', 'अतिथिसत्कार', 'काक चरित', 'आजाद परिन्दे', 'जड़ाऊ मुखड़ा', कहानियाँ ऐसी ही रेणु की मूलभूत विशेषताओं से परिपूर्ण हैं किन्तु इस संग्रह के शीर्षक वाली कहानी 'आदिम

रात्रि की महक', का वातावरण कुछ और ढंग का है। इसे पढ़कर अमरकान्त की कहानी 'जिन्दगी और जोंक' का स्मरण आ जाता है। वास्तव में एक लावारिस मनःस्थिति को इसमें चित्रांकित किया गया है। गाँव और नगर के बीच में सम्पर्क सूत्र जैसा एक स्टेशन है और गँवई की परम्परागत मनःस्थिति से नियंत्रित करमा को आंतरिक स्तर का नगरबोध यहाँ व्यथित कर रहा है। यह व्यथा 'आदिम रात्रि की महक' (सेक्स) की होती है। (8)

कहना न होगा कि रेणु ने 'तीसरी कसम' कहानी में जहाँ हीरामन और हिराबाई के प्लेटोनिक प्रेम का चित्रण किया है वहाँ 'आदिम रात्रि की महक' में सहज यौनेच्छा को रेखांकित किया है। यही बात हम कृष्णा सोबती की लम्बी कहानी 'यारों के यार' और 'तीन तहाड़' में देखते हैं। महीप सिंह की 'कील' कहानी हो या नासिरा शर्मा की 'प्रोफेशिएनल वाईफ' कहानी; वे हमारे दौर की हकीकत हैं। (9)

सुधी पाठक जानते हैं कि मालती जोशी की कहानियों में घर और बाहर के दोहरे संघर्ष और तज्जनित मानसिक तनाव का सूक्ष्म चित्रण है। 'मध्यान्तर'कहानी दिल्ली जैसी महानगरी में कार्यरत महिला की समस्या के समस्त आयामों को प्रदार्शित करती है। महानगरों में बस का इंतजार करना एक बहुत बड़ी समस्या है,मिसेज पण्डित एक तरफ बस का इंतजार करती है, दूसरी ओर मन में घर देर से लौटने की चिंता है, घर देर से लौटने का आज तीसरा दिन है। दो दिन ऑडिट चलता रहा और आज यह पार्टी रोज-रोज देर से लौटने पर कैसा संकोच सा होता है, जैसे किसी की चोरी की है। जल्दी वह घर पहुँच सकती नहीं, क्योंकि पास में बस लायक ही पैसे हैं। "वह भी फोर सीटर स्कूटर करके घर जल्दी पहुँचना चाहती है, किन्तु तीन दिन मन से यह काँटा न निकल पाता कि तीन दिन की सब्जी के पैसे यूँ ही चले गये। (10)

परिवार नियोजन का विज्ञापन पढ़ते हुए यह दर्द उसे और भी कचोटता है कि प्रीति के 6 वर्ष के हो जाने पर भी वह दूसरे बच्चे के आगमन की तैयारी नहीं करपाई। यह कचोट बड़े ही निर्भय शब्दों में अभिव्यक्त होती है। "मुझमें कुछ बाकी भी रहने दिया है तुमने। सब तो निचोड़ लिया है। पैसे कमाने की मशीन भर रह गयी हूँ मैं। इसलिए तो मेरा रोना कलपना भी सबकी आँखों में आता है। मशीन हूँ न, रोने का हक थोड़े ही है मुझे।" उसकी पीड़ा नौकरी करने की विवशता के रूप में पाठकों के सामने आती है।

भारतीय जन समाज में नारी से ही अधिक अपेक्षाएँ पाली जाती हैं चाहे वह मातृत्व हो या संतान का पालन-पोषण। कहा जाता है कि नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व में है। नारी के सभी परम्परागत रूपों पर आधुनिक परिस्थितियों ने प्रभाव ड़ाला, उसकी भूमिकाओं में बदलाव आया, किन्तु उसका मातृत्व रूप शाश्वत है। माँ बनने की ललक और उसके द्वारा जीवन की पूर्णता की उपलब्धि से नारी को वंचित किया जा सकता। वह

शिक्षित हो आधुनिक हो फिर भी ममता के बन्धन में बंधना चाहती है, वरन संघर्ष भी करती है। (11)

मृदुला गर्ग की कहानी 'मेरा' में नारी के इसी ममत्व, कर्तव्य, परिस्थिति, अधिकारों एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति का परस्पर द्वंद्व चित्रित है। पति अपनी अपूर्ण महात्वकांक्षाओं के कारण अपने ही संतति बीज को नष्ट करना चाहता है, जबकि मीना उस अनुपम निधि को सहेजे रखना चाहती है। पुरूष तो अपने निर्णय थोप सकता है अपने कारणों या मजबूरियों से पर क्या गर्भ धारण करने वाली अपने शरीर के रक्त माँस से जीवन रचना करने वाली नारी, उतनी निर्वैक्तिकता से उससे अपना पीछा छुड़ा सकती है उससे अपने आपको सर्वथा मुक्त कर लेने की स्थिति में स्वीकार कर पाती है ?(12) पुरूष से छुटकारा पाने की स्थिति में मीना भी यही सोचती है "महेन्द्र के दिल में सिर्फ तर्क ही तर्क है, भावना वहाँ है ही नहीं। अगर ऐसा है, तब तुम जीवित ही नहीं हो। वह मेरा है, सिर्फ मेरा।" (13) यहाँ आधुनिक नारी के स्वैच्छिक निर्णय के प्रति कोई संवेदनशील अपना समर्थन देना चाहेगा। नौकरी पेशा नारी अपने गर्भ में पलते शिशु को त्यागना नहीं चाहती है बल्कि उस पर अपना ही स्वत्व मानती है।

ग्रामीण और आंचलिक जीवन में नारी स्वैच्छिक निर्णय अपने देह-सम्बन्धों के मामले में ले सकती है। पर मर्यादाएँ उसे जगजाहिर करने से रोकती है। प्रसंगवश यहाँ मार्कण्डेय सिंह की 'कजरी की वापसी' में कजरी की वापसी इसी विवशता की सूचक है, जो कजरी अपने देवर रामरतन को अपने पति से वह स्वयं ही उत्तेजित होकर उससे अपने सम्बन्धों का रहस्य खोलती है, किन्तु रामरतन की नयी नवेली दुल्हन जाते ही वह एकदम शांत होकर अपनी सारी अमानत उसे सौंप जाती है और वहाँ से गाँव लौट जाती है। वह मजबूर थी लौटने के लिए, इसलिए वह कहती है "लौटी हूँ जरूर लेकिन उसके पास नहीं जाऊँगी लौटना तो मेरी लाचारी है। एक तो भगवान ने गरीब बनाया, दूसरी बड़ी जाति के घर जन्म दे दिया, जिससे गाँव में रहकर मजदूरी भी नहीं की जा सकती और सूखा,बाढ़ तो इन दिनों हरेक साल का पाहुना हो गया है। किसी तरह से जीना तो पड़ेगा ही भाई साहब।" (14)

वास्तव में कजरी ने जिन्दगी को खेल समझकर नहीं खेला था, बल्कि चुनौती समझकर स्वीकार किया था, पर जिन्दगी शायद कुछ और सोच रही थी और कजरी उन राहों पर लौटने को बाध्य हो रही थी, जिन पर चलना उसे स्वीकार्य नहीं था।

महानगरीय जीवन हो या कस्बाई शिक्षित वर्ग हो सामान्य मध्यवर्गीय परिवार। अब दिन-ब-दिन अपने अपने प्रोफेशन अभिरूचि व प्रवृत्ति के कारण स्त्री-पुरूष के जीवन में एक ठहराव, ऊब और वितृष्णा की स्थिति पनप गयी है। पति-पत्नी के बीच आये ठहराव का बड़ा सार्थक निरूपण मृदुला गर्ग ने अपनी कहानी 'वितृष्णा' के माध्यम से किया है। xxx

बहुत कुछ कहने सुनने का जब समय था, अरमान थे, तब पति

दिनेश को अपने काम से फुरसत न थी। बात करने के लिए बेताब- पत्नी 'शालिनी'से वह कहता है-"अगर तुम घर को पूरे सलीके से चलाओ, तो तुम्हारे पास भी चख-चख करने को वक्त न बचे। XXX घर को सजाने-सँवारने में ही शालिनी अपना जीवन होम करती है। "खाने की मेज पर करीने से खाना लगा,होगा, एक थाली, न ज्यादा बड़ी न छोटी। उस में दो कटोरियाँ, एक चम्मच- कपड़े से ढ़की चार रोटियाँ।" (15)

वक्त बीतते न बीतते दिनेश और शालिनी के जीवन में रिक्तता बोध और वितृष्णा का भावबोध बढ़ता ही जाता है। XXX शालिनी कभी पति के साथ बैठ कर न खाती है न उसे खाना परोसती है। पांच बजे वह चाय बनाकर पति के लिए रख देती है। दिनेश अगर उसके पास आकर खड़ा होता है तो वह बैठक में पत्रिका खोल कर पढ़ने लगती है। दिनेश प्रतिदिन यह कोशिश करता है कि दरवाजे को नये-नये ढंग से खोले, ताकि शालिनी अपना सिर ऊपर उठाकर,चौक कर और एक भरपूर नजर से उसे देख ले। शालिनी जब ऐसा नहीं करती, तब दिनेश कहना चाहता है -"शालिनी ,मैं रिटायर हो चुका हूँ। अब मेरे पास कोई काम नही है। अब मेरे पास फुरसत ही फुरसत है। हम घंटो बैठकर बातें कर सकते हैं।"(16) किन्तु शालिनी की सारी बातचीत समाप्त हो गयी है। जब उसके पास बहुत कुछ कहने सुनने के लिए था, तब दिनेश फाईलों में डूबा रहता। अब तो शालिनी की यह हालत है कि दिनेश के सामने उसका चेहरा ठीक पीठ बन जाता है। शालिनी अब केवल सुनने का काम करती है। कारण सेक्स का भी नहीं है। एक बेटा है जो विदेश में बस गया है।

दिनेश उसकी चुप्पी तोड़ने के लिए वहशी बनना चाहता है, ताकि वह चीखे। सारी जिन्दगी में उसने वहशियाना हरकत नहीं की थी तो अब क्या करेगा ? क्या वह शालिनी की आँखों की वितृष्णा को झेल पाता ? XXX स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की विलक्षणा में आधुनिक बोध के तहत अब शालिनी आधुनिक गांधारी है। वह अपने ढंग से उसका बदला ले रही है। जिस सजे संवरे घर की उसे चाहत थी,वह तो उसे मिला, किन्तु अब सारी चाहतें ही समाप्त हो गईं हैं। दिनेश चाहता है कि इस बुढ़ापे में उसे अपनापन मिले। शालिनी की पीठ से ही बातें कर ले, पर यह भी संभव नही है। शालिनी ने भी कम यंत्रणा नहीं भोगी "उफ! कितने बरस हो गये,धूप में बाहर नहीं निकली जरूरत ही नहीं पड़ती।" (17)

प्रसंगवश धूप में अपनी मोटर साइकिल ला रहे अपने पति को शालिनी पहचानती तक नहीं। उसे लगता है कि शायद वह कोई मजदूर होगा, इसलिए फ्रिज में से ठण्डे पानी की बोतल ला कर उसे पिलाना चाहती है। पर जैसे ही उसे पता चलता है कि वह अजनबी उसका पति है तब उसकी आँखेबन्द हो जाती हैं और उदास भाव से वह पानी की बोतल उठाकर वापस फ्रिज में रख देती है। जरूरत होगी तो निकाल लेगा पति खुद ही। शालिनी का मन अब पूरी तरह वितृष्णा से भर गया है। (18) यह

संवेदनहीनता स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में मशीनवत जिन्दगी व्यतीत करने से ही पनपती है चाहे वह शहर हो या कस्बा।

मन्नू भण्डारी जहाँ रोमांटिक अवसाद और अनिर्णय की कहानी 'यही सच है' लिखती है वहाँ स्त्री-पुरूष के व्यावसायिक संबंधों का कच्चा रेखांकन नासिरा शर्मा की 'प्रोफेशिएनल वाईफ' और 'दूसरा ताज महल' कहानी में उभरा है। पर मैत्रेयी पुष्पा संवेदन शील सन्दर्भो को, परिवेश को उजागर करने में सर्वथा सिद्धहस्त है। मैत्रेयी पुष्पा के नारी पात्र त्याग समर्पण जैसे संस्कारों को त्यागकर अपनी कथा स्वयं लिखती नजर आती है। वे किसी और से संचालित नहीं होती। मैत्रेयी की स्त्रियाँ बलात्कार पर टेसुए नहीं बहाती, पीड़ित नहीं होती बल्कि उसे दुर्घटना मानकर भुला देती है। वे दाम्पत्य से इतर सैक्स संबंध को व्यभिचार नहीं मानती। नासिरा शर्मा की 'संगसार' की आसिया की तरह मैत्रेयी की स्त्रियाँ इस संबंध को जन्नत की तरह सुखद तो मानती है किन्तु उसकी तरह सामाजिक दुष्परिणामों पर आशंकित और चिन्तित नहीं होती। मैत्रेयी की लेखकीय आक्रामकता और जस्टिफिकेशन लेकर ये अपने संबंधों को जायज ही नही,पूर्ण पवित्र ठहराती है। (19)

4.2 विवाह पूर्व और विवाहेत्तर सम्बन्ध

पाश्चात्य देशों में विवाहपूर्व सैक्स संबंध और अलगावबोध सामान्य बात है। वहाँ नारियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता और स्वैच्छिक निर्णय की स्वतंत्रता कायम है। भारतीय जन जीवन में विवाहपूर्व संबंध नैतिकता की दृष्टि से जगजाहिर नहीं किये जाते हैं पर महानगरीय जीवन में शैक्षणिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अन्तराल के कारण स्त्री-पुरूष विवाहेत्तर सम्बन्ध कायम कर लेते हैं पर इस तरह कि परिवार भी न टूटने पाये और यौनेच्छा की पूर्ति भी हो जाये। पति, पत्नी और 'वह' के सम्बन्ध न केवल समकालीन कहानियों के केन्द्र में है बल्कि सीरियल और फिल्म-लेखन और निर्माण के संदर्भ भी उनके बिना अधूरे हैं।

वास्तव में काम सम्बन्धों की चर्चा बिना प्रेम तथा विवाह के नहीं की जा सकती। तीनों शब्दों के अर्थगत अन्तर के बावजूद इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। स्त्री तथा पुरूष दोनों के लिए 'काम' भावना अनिवार्य आवश्यकता है। प्रेम अगर आत्मिक भाव है, तो काम दैहिक। फिर भी स्त्री-पुरूष प्रेम सहित काम सम्बन्ध रखते हैं तो प्रेम सहित काम सम्बन्धों को भी जीते हैं। रति का रिश्ता शरीर से होता है तो प्रेम का रिश्ता हृदय से। भारतीय ऋषियों ने काम को शक्ति माना है तथा यह स्वीकार किया है कि काम सृष्टि बीज है।

गीता में कामोपभोग निषिद्ध नहीं है। भगवान कृष्ण ने गीता में स्वयं के स्वरूप को 'काम' बताया है। "मैं" सब भूतों में धर्म के विरूद्ध काम हूँ। (20) गीता में भोग निषिद्ध है। दमन के स्थान पर निग्रह और काम के स्वेच्छापूर्वक उदात्तीकरण पर गीता बल देती है इससे स्पष्ट है कि गीता का

प्रतिपाद्य आध्यात्मिक होते हुए भी उसका काम विषयक दृष्टिकोण व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक है। प्रसंगवश बर्ट्रेंड रसेल का भी कहना है कि "प्रेम के बिना सेक्स सम्भोग का कोई मूल्य नहीं है और इसे मुख्य प्रेम करने के उद्देश्य से किया जानेवाला प्रयोग ही समझा जाना चाहिए।" (21) आगे चलकर बर्ट्रेंड रसेल का प्रेम की भावना के विषय में यह कहना है –"यह एक ऐसे पेड़ की तरह है जिसकी जड़ जमीन में गहराई तक गई है और टहनियाँ ऊपर आसमान की ओर फैली हुई हैं।" (22) रसेल ने यह भी कहा है कि प्रेम का सम्बन्ध मानसिक और शारीरिक भी है। स्त्री-पुरूष तीव्रता के साथ किसी एक से प्रेम कर सकते हैं। तीव्रता किसी भी हद तक हो सकती है। पुरूष आजीवन स्त्री से पूर्ण समर्पण की चाह रखता है।

प्राचीन काल में वात्सायन ने 'कामसूत्र' नामक शास्त्रीय ग्रंथ की रचना की है। जिसका रचना काल ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी का आधार ग्रंथ माना जाता है। प्रसंगवश दसवीं शताब्दी में कश्मीर में 'कुट्टनी मतम' ग्रंथ भी स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के अभिनव पहलू खोलता है। प्रसंगवश वात्सायन ने कहा है, 'काम जो कि जीवन का अनिवार्य अंग हैं, मनुष्य की सद्गति और दुर्गति दोनों का सहज कारण भी है। मनुष्य के लिए काम सेवन स्वाभाविक और प्रकृत है। किन्तु उसका अति सेवन अहितकर है। (23)

आज के भारतीय परिवेश में काम सम्बन्धों के तीन प्रकार दिखलाई पड़ते है- १) विवाहपूर्व काम सम्बन्ध २) वैवाहिक काम सम्बन्ध ३) विवाहेत्तर काम सम्बन्ध। उपर्युक्त तीनों प्रकारों में सर्वाधिक विवाहेतर काम सम्बन्ध दिखलाई पड़ते हैं। स्त्री माँ बनकर काम सम्बन्धों में रूचि कम कर लेती है। जिस भावनात्मक मिलन की चाहत स्त्री को पुरूष से होती है वह उसे जीवन भर नहीं मिलती। वह मातृत्व से ही तुष्ट हो जाती है। बच्चे बड़े होने पर उसे फिर से काम सम्बन्ध की ललक उठती है। इस तरह पुरूष को जब स्त्री चाहिए थी तब उसे नहीं मिलती। ऐसे में विवाहेत्तर काम सम्बन्ध बनाता है तथा स्त्री को जब प्रौढ़ावस्था में पुरूष चाहिए तब पुरूष की कामेच्छा कम हो चुकी होती है। ऐसे में स्त्री संभवतः घर के बाहर काम सम्बन्धों को खोजती है।

अभिजात्य और उच्च वर्ग की स्त्रियाँ इस दौड़ में सबसे आगे हैं। महानगरों में गाड़ीं की चाबियों को बदलकर साथी चुनना होटल व क्लब संस्कृति में शामिल है। मध्यम वर्ग इन मान्यताओं में शामिल होने से डरता है और संभवतः आर्थिक अक्षमता के कारण भोग संस्कृति का अंग बन नहीं पाता है।

राधाकृष्ण ने धर्म और समाज ग्रंथ में विलक्षण सत्य उद्घाटित किया है कि प्रेम केवल काम तृप्ति के लिए नहीं किया जाता है क्योंकि वह कोई प्यास नहीं है कि पीकर बुझाई जा सके। दो व्यक्ति प्रेम करते हैं तो उनके बीच आत्मीय भाव की स्मृतियाँ बराबर बनी रहती हैं। प्रेमी के साथ किया गया काम सम्बन्ध स्त्री-पुरूष को मित्र बना देता है। ऋग्वेद में स्त्री को पुरूष की साथिन कहा गया है। आज यदि स्त्री-पुरूष अच्छे साथी साबित

हो सकते हैं तो डिमौस्थनीज ने जो खुले न्यायालय में कहा था -"प्रत्येक पुरूष के पास अपनी पत्नी के अतिरिक्त कम से कम दो रखैले होनी चाहिए।" (24) को चुनौती दी जा सकती है। यह भी सच है कि विवाह के बाद या प्रेम सम्बन्धों में कुछ समय पश्चात प्रेम कम हो जाता है क्योंकि प्रेम स्थायी भाव है ही नहीं। पर वह पूरी तरह मरता नहीं, उसे जगाने के लिए तथा रंगीन बनाने के प्रयास स्त्री-पुरूष दोनों को करने होंगे। बिना प्रतिदान मांगे दिल पर बोझ न रखकर स्त्री-पुरूष बिना अहं के सच्चे प्रेमी, साथी बन सकते हैं। भावों की कठोरता प्रेम की दुश्मन है।

इतिहास गवाह है कि पुरूषों की बड़ी सफलताओं की प्रेरणादायिनी स्त्री विशेष ही रही है। पुरूष का जरा सा प्रेम पाकर स्त्री निहाल हो जाती है। वह प्रेम को सेक्स से अधिक महत्व देती है। पुरूष सेक्स का आनन्द प्रेम के बिना भी उठा सकता है जबकि स्त्री प्रेम के स्पर्श की प्रतीक्षा में बूढ़ी हो जाती है। भारतीय शास्त्रों में प्रेम तथा काम सम्बन्धों को महत्व दिया है। बिना प्रेम के काम सम्बन्ध पशुवत माना गया है।

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार, "प्रेम न तो कोई रहस्य पूर्ण उपासना है और नही पशु तुल्य उपभोग। यह उच्चतम भावों की प्रेरणा के अधीन एक मानव प्राणी का दूसरे मानव प्राणी के प्रति आकर्षण है।" (25) XXX प्रसंगवश यह आकर्षण विवाह से पहले तथा बाद में भी विकसित हो सकता है। विवाह की परम्परा आज असफल हो गयी है। परन्तु स्त्री-पुरूष के मध्य प्रेम परिवार में ही अधिक सम्भव है। काम तथा प्रेम से ही स्त्री-पुरूष का सही विकास होता है।

मनोविश्लेषण की तह में दमित वासना और प्रेम भावना ही रचनाकार, पेण्टर, कलाकार, संगीतकार को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। वैसे भी प्रेम के बारे में मनोविश्लेषणवादी फ्रायड का कहना है, "प्रेम न तो यौन भावना का पर्याय है और न यौन भावना मात्र सम्पूर्ण जीवन का केन्द्र है। बल्कि प्रेम के रत दो प्राणियों की अपने अहं (इगो) के विसर्जन द्वारा प्राप्त पूर्ण एकात्मकता का पर्याय है।" (26)

फ्रायड प्रेम को कठिन प्रक्रिया मानते हैं। प्रेम स्त्री-पुरूष के मानसिक विकास का परिचायक है। अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से मनुष्य के बारे में विचार किया जाता है। कई बार जीवन भर साथ-साथ रहते स्त्री-पुरूष एक दूसरे को सम्भाल नहीं सकते। क्योंकि आपसी सम्बन्धों में ईमानदारी का प्रायः अभाव रहता है। जीवन के दुखद पहलू में स्त्री-पुरूष मिथ्या का आचरण करते हैं। वे एक दूसरे के पूरक हैं इसलिए साथ रहने के लिए मजबूर हैं। भारतीय समाज में परिवार का महत्व आज तक कायम है। विदेशों में परिवार की चाहना स्त्री-पुरूष के बीच कम नहीं हुई। एडलर के अनुसार " प्रेम एक लक्ष्य तक पहुँचने के लिए माध्यम मात्र है।"(27) वह लक्ष्य परिवार के साथ-साथ वह काम तुष्टि का भी माध्यम होता है।

अक्सर नयी कहानी के रचनाकारों राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा आदि पर स्त्री-पुरूष सम्बन्धों का नया रचनाकार

अभिज्ञापित किया गया है। धनंजय वर्मा ने कहा भी है कि राजेन्द्र यादव की दस प्रिय कहानियों में से छह ऐसे ही स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के आसपास घूमती हैं। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की इस संक्रान्ति में भी उनका बुनियादी सरोकार एक-दूसरे के अतीत में झाँकना या एक-दूसरे की जासूसी करना है या फिर विद्यमान सम्बन्धों में किसी तीसरे की लगातार उपस्थिति, अतीत से लेकर वर्तमान और भविष्य तक फैली व्यर्थता, आशंका, संकट और एक अमूर्त आतंक, टूट जाने की हद तक पारस्परिक तनाव, अस्मिता के खोने का दर्द, विश्वासघात और मोहभंग, अनमेल विवाह से उपजा असमंज और आत्म-करूणा या आत्म-भर्त्सना की मनःस्थितियाँ। इनमें भी बावजूद सारी तटस्थता और वस्तुपरक मुद्रा के यादव का बुनियादी धरातल रोमांटिक ही अधिक लगता है। इसीलिए अपने अन्तिम बिन्दु पर पहुँचकर उनकी कहानियाँ, अपने पात्रों के लिए करूणा भले न बटोरें, सहानुभूति की अपेक्षा जरूर करती हैं। (28)

राजेन्द्र यादव की 'छोटे-छोटे ताज महल' और 'खेल-खिलौने' कहानी में विवाह पूर्व प्रेम सम्बन्धों की चर्चा है। वैसे 'खेल-खिलौने' में ही उनसे पूछा जा सकता है कि आपस में बात करते हुए भी क्या आदमी इतने सारे विस्तार और सूक्ष्मतम ब्यौरों में जाता है ? इधर तो उनकी कहानियों में 'दीखनेवाली वास्तविकता के पार मंतव्यों की वास्तविकता' पकड़ने का जो प्रयोगवादी प्राणायाम नजर आने लगा है, उससे 'दीखनेवाली वास्तविकता तो गायब हुई ही है, मंतव्यों की वास्तविकता भी हाथ से छूटती लगती है। राजेन्द्र यादव की परवर्ती कहानियों और उपन्यास सृजना में रोमांटिक भावों के अवसाद की छाया देखी जा सकती है।

कमलेश्वर ने 'राजा निरबंसिया' और 'माँस का दरिया' में विवाहेत्तर सम्बन्धों का कार्य-कारण आर्थिक विवशता बतलाया है। वैसे कमलेश्वर ने बहुत ही सूक्ष्मता से बीसवीं स्दी के मध्य में उभर रहे मूल्यों के प्रति द्वंद्व भाव को निरूपित किया है। जगपती के द्वंद्व का एक उदाहरण, "चन्दा जब आई तो जगपती के चेहरे पर मानसिक पीड़ा की असंख्य रेखाएँ उभरी थी जैसे वह अपनी बीमारी से लड़ने के अलावा अब अपनी आत्मा से भी लड़ रहा हो'... चन्दा की नादानी और स्नेह से भी उलझ रहा हो और सबसे ऊपर सहायता करनेवाले की दया से जूझ रहा हो। जिस परम्परागत मूल्य संसार से वह इस कदर जुड़ा हुआ था, वह उसे पूरी तरह आश्वस्त नहीं कर पाता। (29)

विगत अध्याय में हमने 'राजा निरबंसिया' के कथ्य-प्रसंग और विवाहेत्तर सम्बन्ध का खुलासा रचा है। बीमार जगपती अपनी पत्नी चन्दा की आर्थिक विवशता और कम्पाउण्डर की यौन लोलुपता को जानता है। पर वह जानकर भी अनजान है कारण बचन सिंह, कस्बे के अस्पताल का कम्पाउंडर है, उसकी चन्दा में बढ़ती हुई रूचि से चन्दा और जगपती के जीवन में एक असंगति की शुरूआत होती है जहाँ से जगपती अपने को टूटा हुआ और अकेला अनुभव करने लगता है, और चन्दा एक अयाचित

स्थिति के हाथ समर्पित होती जाती है। जगपती के इलाज के लिए दवादारू की जरूरत होती है और दवादारू के लिए रूपये की। बचन सिंह चन्दा की आर्थिक मजबूरी जानते हुए दया और करूणा के नाम पर अपना हाथ बढ़ाता है और आर्थिक आभार से चन्दा को भरपूर ग्रस लेता है। (30)

वास्तव में चन्दा अपनी अपरिपक्व उम्र व अबोधता के कारण उसे जान नहीं पाती है। जब उसे अनुभव होता है कि वह एक अयाचित स्थिति के बीच आ पहुँची है तो उसका बलपूर्वक विरोध नहीं कर पाती शायद अपने सुहाग को बनाए रखने की कामना कहीं गहराई में समाई हुई है। वह निश्चय करती है कि सोने का कड़ा बेचकर जगपती की दवाईयाँ लूँगी। पर बचन सिंह महंगी दवाइयाँ लाकर दे देता है ओर उससे कड़ा नहीं लेता है। जगपती के पूछने पर, दवाइयाँ कहाँ से आई वह एक द्वंद्व में घिर जाती है। शायद आत्म सम्मान की रक्षा में आर्थिकं संरचना का यह मायावी दृश्य है और विवाहेत्तर यौन सम्बन्धों का कार्य-कारण भी।

कमलेश्वर ने जहाँ 'माँस का दरिया' में वेश्या जीवन की बेबसी और ग्राहकों की अमानवीय नियत को उभारा है। वहाँ 'तलाश' कहानी में एक विधवा नारी के विवाहेत्तर यौन सम्बन्धों को चित्रित किया गया है। इस कहानी में इस विधवा नारी की एक युवा पुत्री भी है जो अपनी माँ के प्रेम-सम्बन्धों से ईर्ष्या नहीं करती है, अपितु माँ को इस कार्य में अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करती है। इसमें विवाहेत्तर यौन- सम्बन्धों का चित्रण प्रतीकों एवं संकेतों के माध्यम से किया गया है। यह चित्रण बड़ा ही प्रभाव पूर्ण और कलापूर्ण है। "ममी शायद थक गई थी। वह पलंग पर बेखबर सो रही थी। जूड़े के पिन सिरहाने रखे हुंए थे। दाहिनी तरफ वाले तकिए पर एक हल्का-सा गड्ढ़ा था। पलंग की सिरहाने वाली पाटी पर एक सिगरेट दबाकर बुझाई गई थी।" (31)

महानगरीय जीवन में आर्थिक विवशता को झेलती हुई यह वह अशोभनीय स्थिति है जिसकी हकीकत को जानकर सम्भ्रान्त बाबूवर्ग और अभिजात्य वर्ग अनजाना बना रहता है। रमेश बक्षी, महेन्द्र भल्ला, जगदीश चतुर्वेदी और गंगा प्रसाद विमल ने तो अकहानी आन्दोलन में इनकी विवेचना बेबाकी से की है। जिसका अनुगमन कृष्णा अग्निहोत्री, दीप्ति खण्डेलवाल और मृदुला गर्ग ने अपनी रचनाओं में किया है। जिनका संकेत विवेचन पिछले अध्याय में वर्णित है।

धर्मवीर भारती ने 'गुल की बन्नो 'में एक विवाहित नारी के निराश्रित भावों का चित्रण किया है। पाठक यह जानते है कि गुल की बन्नो कहानी के भावबोध में मार्मिक कचोट है। शोषित नारी का व्यक्तित्व ही ऐसा है कि वह सहने के लिए सदैव तैयार है। भूख से पीड़ित होने पर भी अपने संस्कारित नरक में निवास करना और चोट-पर-चोट खाना उसकी नियति है। संस्कार पीड़ित व्यक्ति में प्रतिकार भाव नहीं होता। वह शोषित है और इसका वह इतना अभ्यस्त हो जाता है कि नई चेतना भी उसे जगाने में असफल हो जाती है। सती उसे ललकारती है-' यह कसाई है, गुलकी आगे

बढ़कर मार दो चपोटा इसके मुँह पर।'[32]कहानी में सत्ती का यह कथन पढ़कर लगता है कि गुल की में एक प्रतिशोध की उत्तेजना आई है, पर इस उत्तेजना के विपरीत मानो हवा ही बदल जाती है और गुलकी यह कहकर पति के चरणों में गिर पड़ती है कि 'हमे काहे छोड़ दयो ?' इस बदलाव को देखकर कहा जा सकता है कि संस्कारों का बदलना अत्यधिक कठिन है। उन्हें सहज बदला नहीं जा सकता पति का प्रभाव नारी के जीवन में अहम् भूमिका निभाता है। गुलकी जब पुनः शरणागत हो जाती है तो औरतें उसे सती सावित्री की महिमा के साथ उसका बखान करने लगती है।

मार्कण्डेय ने 'हँसा जाई अकेला' में रोमांटिक आसक्ति और प्लेटोनिक प्रेम की स्थिति को रेखांकित किया है। जो विवाहेत्तर आसक्ति भावबोध का पर्याय है। विवेकी राय ने भी कहा है कि मार्कण्डेय के कथा-संसार में कहीं कानून उठ जाने पर भी तिकड़म की राह से कहीं एक जमींदार है जो सर्वसमर्थ बना हुआ है। कहीं मिठास भरा व्यक्तिचित्र है जिसमें कोई व्यक्ति चुनाव में एक ओर गांधीवाद से प्रभावित है दूसरी ओर अकेलेपन की अनुभूति से पीड़ित है। कहीं कोई बैल है जो अपने मालिक पर जान कुर्बान कर देता है तो कहीं एक नौकर है जो स्वयं जूता है। वास्तव में स्वातन्त्र्योत्तर ग्राम जीवन के बीच चलते भूपतियों के दाँव-पेच और उन सबके बीच लड़खड़ाती ग्राम-विकास की योजनाओं की बहुत सही पहचान मार्कण्डेय में है। कथाकार की संपूर्ण सहानुभूति उनके प्रति है जो दलित पीड़ित और हीन है। मजदूर, भिखमंगे बच्चे, अनाथ स्त्रियाँ, निराश्रित बूढ़े और जीविका हीन अकिंचन जनों को मार्कण्डेय अपने कथा संसार में मुक्तहस्त सहानुभूति बाँटते दृष्टिगोचर होते हैं। (33)

समकालीन हिन्दी कहानी में रचनाकारों को सामाजिक वर्जना नैतिकता टैबूज का ख्याल रहता है। वे उन्मुक्त प्रेम का चित्रण नही कर पाते है बल्कि दमित इच्छाओं को सांकेतिक रूप से दशति हैं। कहानी चाहे मन्नू भण्डारी की 'एक प्लैट सैलाब' हो अथवा महेन्द्र भल्ला की 'एक पत्नी के नोटस्' कहानी। हालाँकि दीप्ति खण्डेलवाल ने 'हव्वा' कहानी में परती जमीन तोड़ी है और मृदुला गर्ग ने वितृष्णा में रिक्तता बोध को उभारा है। पर विवाह पूर्व का 'प्रेम' स्वप्नों की भाँति कोमल एवं भावुक होता है। कठोर धरती का स्पर्श उसे नहीं होता, अतः यह रोमानी होता है। उसमें वादे होते हैं, भविष्य के लिए संजोये सपने होते हैं और जब इस प्रेम पर कुठाराघात होता है तो कुछ नारियाँ 'परिन्दे' की लतिका की तरह अतीत की स्मृति में ही जीती है, जो स्थिति को सहजता से स्वीकार नहीं कर पातीं ; तो कुछ में प्रेमिकायें बीते प्रेम को भुलाने की कोशिश में सफल होकर वर्तमान पति से भावना एवं देह के स्तर पर अधिक घनिष्ठ हो जाती हैं ; जैसे राजेन्द्र यादव की 'मेरा तन मन तुम्हारा है' की नायिका विवाह पश्चात प्रेमी को झूठी सांत्वना देती है "भगवान न करे यदि मेरा तन किसी दूसरे का हो जाये तो मन हमेशा-हमेशा के लिए तुम्हारा है।" किन्तु अन्त में तन मन को आत्मसात कर लेता है, जो भारतीय जन-जीवन की वास्तविकता है। (34)

पुरूष वर्ग तो अपने विवाहपूर्व प्रेम सम्बन्धों की डीग मर्दानग प्रमाणित करने के लिए हाँक सकता है पर स्त्री वर्ग भारतीय समाज अपने विवाहपूर्व और विवाहेत्तर सम्बन्धों को आत्मगत रहस्य की तरह रहता है। चाहकर भी स्त्री वर्ग अपनी चाहत पसन्द को लोकलाज भय से परिवार के टूट जाने के भय से उजागर नहीं कर पाता है।

वास्तव में विवाहित जोड़े उपयोगितावाद से बचे तो सम्बन्धों मधुरता बनी रहेगी। आज असन्तुष्ट पति-पत्नी को अपनी नाराजगी ने का अवसर ही नहीं मिलता। पत्नी रात को सुखद बनाने के चक्क में चुप रहती है। पति सुबह-सुबह मूड खराब होने के कारण चुप्पी साध ता है। तब सवाल उठता है कि प्रेम को विवाह के साथ जोड़ा जाय या ? इस सवाल का सही उत्तर देना मुश्किल है। शायद आधुनिकता ने इस इल यों ढूंढ़ा है कि मैं भी चुप ! तू भी चुप। पति पत्नी दोनों आपस में दूसरे के प्रेम इतर प्रेम सम्बन्धों पर चुप्पी साध लेते है तथा हमसफर व ह घर में रहते हैं। वे सोचते हैं कि प्रेम में अधिकार रखना हानिकारक ।

प्रेम के यथार्थ रूप के बारे में राही मासूम रजा ने व हैं कि ,"प्यार का ग्राफ भी जिन्दगी की दूसरी चीजों के ग्राफ से जुड़ ता है, प्यार एक साफ-सुथरा घर नहीं बन सकता। प्यार कोई फिक्सो क तड़ से सपनों के टुकड़े इकट्ठा किये और जोड़ लिए। प्यार एक बेदर्द ज है। (35) प्रभाकर माचवे प्रेम को महत्ता नहीं देते। उनके अनुसा "प्रेम ढकोसला है, यह पुरूषों की साजिश है। प्रेम तो रासायनिक जैविक क्रिया ही है। (36) जिसे स्त्रियाँ मन में गोपन रहस्य की तरह सात पर्दों तालों में छिपाकर रखतीं है।

महानगरीय जीवन में कैरियर प्रोफेशन पद-लिप्सा के लिए वर्ग कहीं-कहीं देह का इस्तेमाल पासपोर्ट या 'वीसा' की तरह है। प्रोफेशनल स्त्रियों का अलग कैडर बन गया है। आधुनिक स्त्री में यौन-शुचिता जैसी कोई बात नहीं रही। ऐसे में विवाह पूर्व या प काम सम्बन्धों को सामाजिक स्वीकृति मिल गई। स्त्री-पुरूष अन्यत्र का सम्बन्ध के प्रति चुप्पी साध लेते। यौन उत्सुकता फैशन बन गई। कहीं वि का स्वर या तो कहीं नग्न यथार्थ का चित्रण। स्वबोध ने स्त्री को उच्छृं ला दिया। पुरूष ने सोचा जो शरीर दे सकती है वही प्रेम कर सकती। स्त्री ने भी अपना मतलब साधने के लिए प्रेम के बदले शरीर देना स्वी कर लिया। ऐसे में अवैध सम्बन्धों की भरमार हो गई है। (37)

पुरूष चाहे वह मित्र हो या पति या बॉस उसे आँख दबाते स्त्री मिल जाती है। स्त्री को हर युग में पुरूष ने जो बनाया वह गई। देवदासी के चक्रव्यूह से बचने के उपाय में स्वतंत्रता के पचड़े में फंसा बन गई। पति का सहवास उसे मानसिक बलात्कार लगता तो बॉस मित्र के सहवास को वह बलात्कार की संज्ञा क्यों नहीं देती ? यह अधकचरी मानसिकता का ही परिचायक है कि वह कई-कई पु अपनी जांघे दिखलाकर आधुनिक होने का दावा तो कर लेती है

में आधुनिक बनकर जी नहीं पाती। वैवाहिक सम्बन्ध हो या प्रेम सम्बन्ध या स्वार्थ सम्बन्ध वर्तमान दौर में वे सब काम से जुड़ गये। स्त्री-पुरूष दोनों में अस्तित्व की लड़ाई छिड़ गई तथा समझौता को ताक पर रख दिया गया है। नासिरा शर्मा की 'प्रोफेशिएनल वाईफ' और 'दूसरा ताज महल' कहानी तथा विष्णु प्रभाकर की 'ठेका' कहानी स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की विलक्षण तस्वीर पेश करती है।

प्रसंगवश विवाहपूर्व और विवाहेत्तर काम सम्बन्धों में प्रयोग एक अनिवार्यता या विवशता न होकर अब एक एडवेंचर है, एक नुस्बा, तरीका, माध्यम, आकांक्षा या महत्वाकांक्षा है- इसकी प्रेरणा कोई नई जीवनदृष्टि ,कोई नया अनुभव सत्य या कोई नया युग बोध नहीं। कुछ घटनाओं और चरित्रों में जो एक 'एडोलेसेंट' जिज्ञासा लोगों की होती है, वहीं इस प्रयोग की धुरी है और सनसनीखेज खबरों और कैंहानियों को 'इन्वैंट' करना या उनमें दिलचस्पी रखना इसकी प्रेरणा इसमें न तो किसी सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन होता है और न ही कोई जीवन दृष्टि। लेखन की दृष्टि से जो एक बड़ी शिकायत मुझे है वह यह कि चित्र-कला के एब्सट्रेक्ट शिल्प और सांकेतिक योजना का बहुत अधिक सहारा लेने वाले शिल्प और सज्जा के प्रति अतिरिक्त जागरूक रमेश बक्षी ने इसमें अपनी 'एस्थैटिक सेंसीबिलिटी' का भी पल्ला क्यों छोड़ दिया ? क्यों वह सेक्स को सूक्ष्म प्रतीकों की बजाय स्थूल ढंग से अभिव्यक्त करता है ? क्यों वह सेक्स को विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति के स्तर से हटाकर केवल ऐन्द्रियता तक सीमित कर देता है। [38]वैसे मणि मधुकर अपनी कहानियों में न केवल सैक्स सिम्बलों से काम लेते हैं बल्कि इसकी एक लम्बी परम्परा शानी, गंगा प्रसाद विमल, दीप्ति खण्डेलवाल, मणिका मोहिनी, शिवमूर्ति और रोहिताश्व (दोना पावला और तीन औरतें) आदि की रचनाओं में उपलब्ध है।

नारी के पास केवल देह है, जिस पर उसका अपना अधिकार है। वह पुरूष की तरह लम्पट दुराचारी होकर सामाजिक स्तर पर खुलेआम नहीं घूम पाती है। वैसे भी नारी-पुरूष में देह धर्म प्रमुख हो गया। सैक्स के प्रति अपराध भाव समाप्त हो गया। वह अब एक आवश्यकता के रूप में समझा जाने लगा। मन्नू भण्डारी की कहानी 'ऊँचाई' की नायिका "शारीरिक पवित्रता का वह परम्परागत मूल्य छोड़कर बिलकुल नये मूल्यों को सही मानती है - वैवाहिक सम्बन्धों का आधार इतना छिछला है, इतना कमजोर है कि एक हल्के से झटके को भी संभाल नहीं सकता तो सचमुच उसे टूट जाना चाहिए, किन्तु यह विद्रोही स्वर वास्तव में देखा जाए तो एक विशेष परिवेश में एक विशेष वर्ग की नारी में ही पाया जा सकता है। धर्म कहीं जीवित है तो या तो कर्मकाण्ड अन्धविश्वास में या समाज में रहने की सजा भुगतने वाले किसी कठोर क्रूर नियमों के रूप में। जहाँ अभी भी यह सब निरर्थक जानकर भी करना पड़ता है एक दण्ड के रूप में । हिमांशु जोशी की 'तरपन' कहानी में नायिका मधूलिका अपने मृत पति के

तर्पण करने की इच्छा रखते हुए कर्मकाण्डों पर आस्था रखती है। यह परम्परागत नारी का संस्कार है। (39)

समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप की विवेचना करते हुए घनश्याम दास भुतड़ा ने भी अभिज्ञापित किया है कि विवाह में साथ जुड़ी प्राचीन मान्यताएँ नष्ट हो रहीं हैं। हिन्दी कहानीकार जिन परिवारों का चित्रण कर रहे है, उनमें अधिकांश विवाहों की परिणति एकरसता, ऊब, तनाव, तथा संवेदनहीनता में होती है। प्रेम-विवाह का प्रेम विवाह के पश्चात कुछ वर्षो या कुछ महीनों में ही समाप्त हो जाता है। सम्बन्धों में शिथिलता निर्माण होती है और विवाह मात्र एक समझौता रह जाता है। XXX नगर-बोध का एक प्रमुख पहलू भोग है। यौन कुण्ठाओं से पीड़ित नारी, जीवन की निरन्तरता को तोड़ने के लिए ,कहीं दूसरी जगह जुड़ने को अभिशप्त है। रामकुमार भ्रमर की कहानी 'लौ पर रखी हथेली' की बेला भोग के लिए कठोर पुरूष की आकांशा में कहीं अन्यत्र जुड़ जाती है। (40)

वर्तमान दौर के महानगरीय और आधुनिकता बोध के जीवन में विवाह और प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण आज पूरी तरह बदला हुआ है। उसे मात्र एक सामाजिक समझौता समझा गया है। कुछ कहानीकारों ने विवाह संस्था को निरर्थक घोषित किया है। कुछ ने इसे नारी का शोषण माना है। अनेक लेखकों ने विवाह संस्था को व्यर्थ और बेमानी घोषित कर उसे समाप्त करने की बात की है। रमेश बक्षी की कहानी 'पिता-दर-पिता' में विवाह संस्था एक ऐसी विवशता बताई गयी है, जिसे ढोने के लिए मनुष्य अभिशप्त है। (41) जगदीश चतुर्वेदी 'फ्लर्ट' कहानी में विवाह को ऐसी अमरबेल कहते हैं, जो इंसान को चाटकर ही दम लेती है "केवल चार-पाँच कच्ची-पक्की रोटियाँ दोनों टाइम खाने और खानदान चलाने के नाम पर व्यभिचार करने के सिवाय और क्या मिलता ही शादी से। (42) सुदर्शन चोपड़ा ने विवाह-संस्था को एक पेशा, लगभग 'कॉल-गर्ल्स' जैसा पेशा बता दिया है। विवाह संस्था पर ऐसी ही करारी चोट माहेश्वर की 'बन्द'कहानी में है। पुरूष कथाकारों ने विवाह संस्था को रोमानी दृष्टि से न आंक कर व्यावहारिकता और वास्तविकता की बात की है। आज का लेखक मनुष्य के नकली चेहरों और दोगली मानसिकता (हिपोक्रेसी) को ओढ़ना नहीं चाहता।

औरतें मछलियाँ नहीं होती है और न ही वे भेड़-बकरी की तरह स्केप-गोट बनना चाहती है कि चाहे जो भी सबल समर्थ और अवसरवादी हो उनका उपभोग कर ले। विवाहेत्तर सम्बन्धों को लेकर उषा प्रियंवदा ने 'मछलियाँ' नामक लेमहर्षक कहानी रची है। वास्तव में उषा प्रियंवदा की'मछलियाँ' भी भारतीय नारी और पुरूषों की पाश्चात्य परिवेश भूमि पर सम्बन्धों की दास्तान है जिसमें आधुनिक परिवेश में रहकर भी नारी अपने स्वभाव की सनातन ईर्ष्या से मुक्ति नहीं पा सकती एवं अपने क्षेत्र में आने वाली दूसरी नारी को अपनी ईर्ष्या से पराजित कर देती है। विजी मनीष की मंगेतर के रूप में भारत छोड़ अमरीका जाती है, किन्तु मनीष अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर व सोफस्टिकेटेड मुकी को चाहता है ,जिस कारण विजी मुकी

से घृणा करती है। नटराजन विजी के उदास, दुखी चेहरे से प्यार करता है किन्तु विजी के भारतीय संस्कार परिस्थितिवश मंगेतर बदल लेने की बात पचा नहीं पाते, उस वक्त तक विजी को अपना देश, अपनी संस्कृति श्रेष्ठ लगते हैं, किन्तु अकेलेपन से त्रस्त अमरीका जैसे देश में विजी को अपने संस्कार की बात निरर्थक लगती है और मन ही मन वह नटराजन के प्रस्ताव पर सहमति देने की योजना बना चुकी होती है,किन्तु मुकी फिर बाजी जीत ले जाती है और विजी को वाशिंगटन में देखे गये नाटक की पंक्तियाँ बार-बार कचोटती है -" क्या बड़ी मछली ही वार कर छोटी मछली को आहत करती रहेगी ?" क्या छोटी मछली उलट कर वार नहीं कर सकती ? इस बार छोटी मछली ही बड़ी मछली को आहत करती है और विजी मुकी नटराज के विवाह को अनिर्णित स्थिति में छोड़ कर जाती है। परिवेश कोई हो नारी सुलभ भावनाओं को रोका नहीं जा सकता। इस प्रकार 'मछलियाँ' विदेशी अपरिचित प्रदेश में द्वंद्व में उलझे दुविधा और विकल्प में सांस लेते भारतीय पात्रों की कहानी है, जो आज की संक्रान्ति कालीन भारतीय आत्मा की तरह ग्रहण और त्याग की दुविधा में फँसे हुए है। (43)

सातवें-आठवें दशक में मणिका मोहिनी, दीप्ति खण्डेलवाल, मृदुला गर्ग, कृष्णा अग्निहोत्री ने स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की बोल्ड कहानियाँ रची हैं। जहाँ मणिका ने चीजों और रिश्तों को देखना समझना चाहा है और उसमें सैक्स उसके जरूरी जुज की तरह आया है। कुछ महिलाओं की तरह बोल्डनेस उनमें भी है लेकिन फर्क सिर्फ इतना है कि जहाँ औसतन बोल्डनेस का मतलब सिर्फ भाषा और अन्दाज तक सीमित होकर रह गया है, वहाँ मणिका ने अपने एप्रोच और एटीट्यूड में भी बोल्डनेस दिखाई है। उनमें निषिद्ध और वर्जित कुछ भी नहीं है और औरत-मर्द के एहसासों के समूचे स्पेक्ट्रस के आर-पार यात्रा करते हुए उसमें एक निडरता भी है। उनमें एक हद तक, मानसिक प्रौढ़ता भी है और उनकी बोल्डनेस भावुकता की विलोम ही है। बोल्डनेस का एक मर्दाना शेड अश्लीलता या फूहड़ता भी है जिसे कुछ हद तक ,कुछ अवसरों पर मर्द और औरत भी पसन्द करते हैं ; लेकिन उस किस्म की बोल्डनेस मणिका की कहानियों में नहीं मिलती। उसमें एक किस्म का सीधापन और सन्तुलन है और उसके साथ है बेबाकी और बेलाग अभिव्यक्ति। (44)

सैक्स का वर्णन हमेशा कथा-लेखन में हॉट-केक रहा है सेलेबल कामाडिटी के रूप में। मृदुला गर्ग का 'चित कोधरा'उपन्यास बेबाक स्त्री-पुरूष के मुक्त आसंग रचता है। वहाँ श्रीकांत वर्मा का 'दूसरी बार' स्त्री-पुरूष के रिक्तता बोध को उजागर करता है। राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई' उपन्यास मनोविश्लेषण की थाह लेता है वैसी कलात्मक स्तरीयता समकालीन कहानियों के विवाहेत्तर प्रसंगों व रचना शिल्प में कम ही नजर आती है।

4.3 नारी जीवन की अस्मिता और स्वतंत्रता

समकालीन हिन्दी कहानी के विविध आन्दोलनों के अन्तर्गत 'नारी जीवन की अस्मिता' और स्वतंत्रता के विविध आयाम मुखरित हुए हैं। मन्नू भण्डारी ने यदि 'यही सच है' कहानी में नारी के दो प्रेमियों के बीच चयन की दुविधा, अस्मिता और स्वतंत्रता को रेखांकित किया है तो कृष्णा सोबती ने कार्यालयों में कार्यरत नारी के उपेक्षित और साहसी रूप को निखारा है। रवीन्द्र कालिया ने 'काला रजिस्टर' कहानी में केविन की प्रेमिका रूपी स्त्री का स्वरूप चित्रित किया है तो मैत्रेयी पुष्पा ने नारी के संघर्षशील और आधुनिक सोच को 'ललमनिया' में मुखरित किया है।

विजय मोहन सिंह ने मन्नू भण्डारी की कहानियों को 'छद्म आधुनिकता का उद्घाटन करनेवाली कहानियाँ [45] के शीर्षक से नवाजा है, तो उर्मिला शुक्ल ने मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों को 'मैत्रेयी की नारी संवेदना अस्मिता से देह तक' संबोधन से विश्लेषित किया है। [46] पर नारी की अस्मिता और स्वतंत्रता आर्थिक आधार पर सशक्त होने पर विचारी जा सकती है। सीमोन द बुआने कभी 'द सेकेण्ड सैक्स' ग्रंथ में यह प्रश्न उठाया है कि स्त्री की अस्मिता एवं उसके संरक्षण को पुरूषों के प्रति विद्रोह की नींव पर खड़ा किया जा सकता है ? या स्त्री को उपभोग्य वस्तु (commodity) समझने के प्रति नजरिया बदलने से प्रकारान्तर से इस विषय में सीमोन द बोउबा अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द सेकेण्ड सैक्स' में विचार व्यक्त करती है -"स्त्री और पुरूष के बीच कुछ मौलिक आधारभूत भेद तो रहेंगे ही। उसका कामनात्मक जीवन उसकी संवेदनशीलता और उसकी सैक्सुअल दुनिया के स्वाद अलग है। इसका अर्थ यह हुआ कि औरत का अपने शरीर और पुरूषों तथा बच्चों से संबंध पुरूषोचित नहीं हो जायेगा। वह फिर भी स्त्रियोचित रहेगा किन्तु उसकी संभावनाये सीमित नहीं; अपरिमित रहेगी। [47]

पुरातन युग हो या आधुनिक युग , पाश्चात्य परिवेश हो या एशियाई परिवेश, स्त्री शुरू से ही उपेक्षिता रही है। उपेक्षा को सहन कर स्त्री ने अपना आर्थिक शोषण भी करवाया है। ऋग्वेद में स्त्री शक्ति और औदार्य की प्रतीक मानी जाती थी। पर रामायण तथा महाभारत काल में वह पुरूष पर निर्भर दिखलाई पड़ती है। युधिष्ठिर ने द्रौपदी को जुए के दाँव पर सम्पत्ति समझकर ही रखा। मनु ने स्त्री को देवी कहकर प्रतिष्ठित किया पर अधिकारों की व्याख्या उन्होंने नहीं की। आर्थिक परावलम्बन ही उसकी हीन दशा का महत्वपूर्ण कारण है। [48]

आधुनिक भारत में आज स्त्री वर्ग तीन स्थितियों में सक्रिय है। एक- शिक्षित, टेक्नोक्रेट, आर्थिक उपार्जन से स्वालम्बी , दो- मध्यवर्गीय सीमाओं में आर्थिक संसाधनों से उपार्जित जीवन लक्ष्य, तीन- श्रमजीवी खेतिहर मजदूर -अशिक्षित या अल्पशिक्षित घरेलू नारी। जो संचार माध्यमों के प्रभाव से आधुनिकता बोध को ग्रहण कर रहा है। लेकिन यह भी सच है कि

आज अध्यात्मवादी दृष्टिकोण की जगह भौतिकवादी और उपयोगितावादी दृष्टिकोण ने ले ली है। इसका श्रेय औद्योगीकरण एवं पाश्चात्य प्रभाव को है। सांस्कृतिक संघर्ष ने मूल्यों के संक्रमण को जन्म दिया और फलस्वरूप नैतिक मूल्यों की परम्परागत धारणाएँ बदली। सदियों से बनते संस्कारों पर आघात ने हमें एक मोहभंग की स्थिति में ला खडा किया। इसका एक पक्ष्च कल्याणकारी भी था जिसने परम्परागत संस्कारों के रूप में जीवित जीर्ण शीर्ण रूढ़ियों का खोखलापन जाहिर कर दिया। (49)

प्रसंगवश राजेन्द्र यादव की 'प्रतिहिंसा' की नायिका कहती है " मैं तुम्हें बता दूँ, ऐसी प्राचीन रूढ़ियों को मैं ठोकर मार कर मार्ग से अलग कर दूँगी; जो मनुष्य को पशु समझती हो, चाहे वे स्मृतिविहित हो या वेदविहित। (50) आधुनिक भारत में आज भी श्रमिक पुरूष और श्रमिक स्त्री के मुआवजे में अन्तर कायम है। भले ही वे संवैधानिक स्तर पर समान मान लिये गये हो। औरतों की श्रम दर पुरूषों से 40-50 प्रतिशत कम है तो भला पुरूष मजदूर क्यों रखा जाये। इस तरह स्त्रियाँ किस तरह तथाकथित त्वरित उन्नति एवं प्रगति के इस युग में निकृष्टतम गुलामों की कोटि में नाटकीय जीवन जीने को विवश है। आर्थिक उदारीकरण के लागू होने के बाद भारत में भी यही दिशा व दशा हो गई है। बीसवी सदी के अन्त में भारत जैसे गरीब देशों की मेहनत कश स्त्रियाँ रोजमर्रे के आम जीवन से अनुपस्थित होती जा रहीं हैं। उन्हें देखना है तो वहाँ चलना होगा जहाँ के छोटे छोटे कमरों में माइक्रोस्कोप गड़ाए सोने के सूक्ष्म तारों को सिलिकोन चिप्स से जोड़ रही है, निर्यात के लिए सिले सिलाये वस्त्र तैयार करने वाली फैक्टरियों में कटाई सिलाई कर रही है। खिलौने तैयार कर रही है,या फूड़ प्रोसेसिंग के काम में लगी हुई है। इसके अलावा वे बहुत कम पैसों पर स्कूलों में पढ़ा रही हैं। टाइपिंग कर रही है, करघे पर काम कर रही है, और पहले की तरह बदस्तूर खेतों में खट रही हैं। महानगरों में वे दाई-नौकरानी का भी काम कर रही है और बारमेड का भी। अनुपस्थित और मौन होकर भी वे हमारे आसपास ही हैं। भूमंडलीकरण की संजीवनी पी रहे वृद्ध पूंजीवाद के लिए शव परिधान बुन रही हो शायद । (51)

आधुनिकता बोध से परिपूर्ण शिक्षित और आत्मनिर्भर नारी अपनी अस्मिता और अस्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग है। प्रसंगवश क्षण को पूरी तरह भोगने व जीने की बलवती चाह कान्ता सिन्हा की 'सजा' कहानी की अध्यापिका दीपा में भी है, जो अपने मंगेतर महेन्द्र के भावनात्मक सम्बन्धों पर विश्वास नहीं करती, वह तो दूसरे पुरूष मि.राव जो कि परिवार वाला है - उसके द्वारा शारीरिक सम्बन्धों के लिए किये गये प्रस्ताव को ही पूर्णतया सत्य मानती है, क्योंकि उसे भविष्य से मतलब नहीं, वर्तमान से है। प्रतीक्षा से नहीं, पल को जी लेना चाहती है क्योंकि आनेवाले कल पर उसे विश्वास नहीं इसलिए राव उसके पास रोज आता है। रात भर दोनों प्यार करते हैं, फिर भी लगता है समय कम है। (52)

यह आज की जीवन्त नारी है, जो पुरूष प्रधान समाज द्वारा बनाये गये नियमों के शोषण के विरूद्ध आवाज उठाती है, जो सिर्फ समर्पण, प्रतीक्षा करने वाली त्याग की प्रतिमूर्ति ही नहीं या सिर्फ परिवार को चलाने का यंत्र बनकर जीनेवाली नहीं वरन् वह कभी-कभी इस सबसे ऊपर अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करने तथा अपने भविष्य को संवारने में ज्यादा विश्वास करती है।

वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता ने 'धूप में चटकता काँच' कहानी में नारी जीवन की अपनी इच्छा इच्छित जीवन की अभिलाषा और संघर्ष मयी जीवन शैली की चर्चा उसके अपने 'अस्मिता के वरण के सन्दर्भ में की है। वास्तव में 'धूप में चटकता कांच' कहानी में नारी की परिवेशगत समस्याओं को विभिन्न दृष्टिकोण से देखा परखा गया है। एक और नारी की महत्वाकांक्षा ,दूसरी और जरूरत एवं विवशता बन गयी नौकरी और उससे जुड़ी जीवन की योजनाएँ एवं परिस्थिति वश किये गये अनचाहे समझौते। मिसेज विमला उनमें ग्रस्त होकर सोचती है, (विमला ने ठंडे मन से सोचा) वाकई इस नौकरी के साथ कितना कुछ जुड़ा हुआ है - फ्लेट बदलना, पी.एच.डी. होना और यह सोचते हुए मन ही मन लजा गयी कि इस नौकरी के साथ एक शर्त भी तो जुड़ी है। अगर पिछले साल भी उसे यह नौकरी मिल जाती तो उसे वह सारी तकलीफे क्यों भोगनी पड़तीं और आज शायद यह बच्चा चार महीने का होता।" प्रतीक्षित नौकरी के मिल जाने पर भी वह सच्चे अर्थो में क्या वह सब पा लेती है, जिसे उसने कहीं सुनियोजित ढंग से चाहा था ?(53)

मध्यम वर्गीय कामकाजी महिला की अपनी जटिल पारिवारिक व्यस्तता और त्रासदी होती है। आर्थिक स्वतंत्रता की ललक और स्वैच्छिक मनोनुकूल जीवन की अस्मिता उसे दो पाटों की त्रासद स्थिति में कैद कर देती है। विमला सोचती है कि अब तो जीवन यांत्रिक हो गया है -"यात्रियों की इंतजार में गर्माहट बिना बात के झगडे, कंडक्टर से बहस और सरकार को गालियाँ। उतावलेपन से बिलबिलाते इन चेहरों पर नजर आती चिंता की रेखाओं से बनती झुर्रियों के निशान और इन निशानों पर पोता गया कॉस्मेटिक, पसीने से बहता पाउडर,सीमाओं को लांघता लिपिस्टिक का फैलाव, बिना फीते बंधे बूट के तस्मे, कानों के पास लगा शेव का साबुन , बिना संवारे रूखे बाल, नाश्ते का अंतिम कौर चबाते ओर भागते कॉलेज के छात्र -यह है बड़े शहर का जन-समुद्र। इसे रोज लांघना होता है। नौकरी की विवशता में घर परिवार के सुखद एवं निश्चिंत क्षणों को खो देना भी नारी की विडम्बना है। विमला अपनी इस व्यस्तता को अपनी माँ की जिन्दगी की निश्चिन्तता के संदर्भ में रख देखती है। पति की तृप्ति से खाते हुए देखने का सुख उसे कहाँ प्राप्त है। (54)

समकालीन हिन्दी कहानियों में स्त्री-पुरूष जीवन की विषमताओं के चित्रण के साथ-साथ यौन परक अतृप्ति के कार्य कारण भी रेखांकित हुए है। धनंजय वर्मा ने इस संदर्भ में ऊब, अनमयस्कता और एकरसता की

ओर भी संकेत किया है कि दुःस्वप्नों से भरे तनाव का कारण आपसी सम्बन्धों की एकरसता है। सभी सम्बन्धों की सम्भावनाएँ एक-सी है, 'दोबारा शुरू करना गलत लगता है।' पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका ही नहीं परिवार और पूरे परिवेश और सन्दर्भ में सम्बन्ध सारे मानवीय धरातल को खोकर केवल प्राकृतिक हो गये हैं कि मानवीय होना भी एक सुदूर और असम्बद्ध सी कल्पना लगती है, और लगातार एक तीसरे की अनुभूति से ठण्डापन आता जाता है कि जैसे अपना ही अस्तित्व खुद को पराया लगे। घरेलू अँधेरे में डूबी ठण्ड़ी लाशों के मानिन्द लोग, जिनके लिए परिवार एक दुःस्वप्न है और जिनकी बेबसी का एहसास लगातार गहरा होता जा रहा है : कि पैदा होते ही पाँवों में बेड़ियाँ, हाथों में हथकड़ियाँ, जुबानों पे ताले, दिलों में पत्थर, दिमागों में भूसा, पीठों पे लाशें, और यह हमारा हिन्दुस्तान है। (55)

पाश्चात्य जीवन शैली का अनुकरण और भारतीय परिवेश के सांस्कृतिक संक्रमण में दो संस्कृतियों के बीच, एक के 'कल्चरल लैग' और दूसरे में 'मालएडेजस्टेड' शायद फिलहाल यही आधुनिकता की यातना है, भोगने और भागने के बीच की यातना। यही शायद हाशिए के आदमी की नियति है, और यही तो आधुनिक व्यक्ति है। इस दुर्निवार नियति और यातना से गुजरते हुए अनुभव आधुनिक व्यक्ति को होते हैं वही इन कहानियों को निर्मम और क्रूर बना देते हैं और भीतर ही भीतर कशाघात की तरह एक व्यंग्य इनमें उभरता चलता है। यह निर्ममता और क्रूरता इसलिए भी है कि अब भावुकता छूट चुकी है, मोह टूट गया है और स्वप्नभंग हो गया है, एक अपेक्षाकृत प्रौढ़ता आ चुकी है और जो केन्द्रीय आदमी इनमें है वह भी सामाजिक, आर्थिक हदों से घिरा हुआ आदमी है।

निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' कहानी में लतिका के माध्यम से नारी जीवन की 'स्वतंत्रता और अस्मिता' के प्रश्न हाशिए पर उभरे हैं। वह अपने एकाकीपन और अस्तित्वबोध के बारे में सोचती है। साधारण पाठकों भी महसूस होता है कि अपनी निस्सहायता की चेतना, बरबस अपने को छलने का छलावा लिए लतिका को एक प्रश्न बराबर सालता रहा है - "डॉक्टर, सब कुछ होने के बावजूद वह क्या चीज है जो हमें चलाए चलती है, हम रूकते भी हैं तो अपने रेले में वह हमें घसीट ले जाती है।" (56) परिस्थितियाँ और परिवेशगत समस्याएँ हमारे जीवन लक्ष्य में हमेशा बाधक बनकर आती हैं।

स्वतंत्र रहना हमारी आदिम इच्छा और नैसर्गिक प्रवृति का रूपक है। हम स्वतंत्र हैं पर सामाजिक बन्धनों के भीतर ! स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की स्वतंत्रता भी नैतिक बन्धनों , धार्मिक मान्यता, सामाजिक मान्यताओं के शिकन्जों से परे नहीं है। उषा झा ने स्वीकारा है कि स्वतंत्रता की कामना एक सहजात कामना है और यह भी सत्य है कि स्त्री की स्वतंत्रता को हमने जानबूझकार सीमाओं में बाँध रखा है कहीं भय भी है कि स्त्री के स्वातंत्र्य का मुद्दा उच्छृंखलता का सबब न बन जाये इसलिए इसे सामाजिक

मर्यादा एवं नैतिकता से जोड़ दिया गया है। किन्तु यह भी सत्य है कि ऐसा हमारे समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं संस्कारों में पुरूष के प्रति स्वामी भाव की वजह से ही हुआ है, किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जब किसी का अधिकार छिनता है तो स्वयं की स्वतंत्रता भी बाधित होती है। (57) पुरूष की स्वतंत्रता भी तभी नैतिक दायरों में प्रश्न चिन्ह बनकर उभरती है।

भारतीय जन-जीवन में नारी जीवन की स्वतंत्रता, आर्थिक परावलम्बन के कारण स्वतंत्र रूप धारण नहीं कर पायी है। चाहे वह उच्च, मध्यवर्ग की हो या सामान्य मध्यवर्ग की सुशिक्षित कामकाजी नारी। निम्न वर्ग की स्त्रियों और दलितों में कोई अन्तर नहीं रहता है। हम सभी जानते हैं कि स्त्री-पुरूष के विवाह पूर्व या विवाहेत्तर संबंध में 'अस्मिता' और 'स्वतंत्रता' वाले सम्बन्धों के धरातल पर नारी अभी भी मुक्त नहीं है और उसकी स्वतंत्र सत्ता अभी भी परिभाषित या रूपायित नहीं हो पाई है। इसका मुख्य कारण संस्कार-प्रवाह और मूल्यपद्धति की जड़ता है, जिसकी टक्कर स्थितियों के तीखे परिवर्तनों से उपजी मानसिकता से लगातर होती रहती है। इस टक्कर ने औरत में एक असुरक्षा की भावना जगाई है क्योंकि आज भी उससे "अपने अतीत से कटने" और अपने भविष्य को किसी अपरिचित को समर्पित भाव से सौंपने की अपेक्षा की जाती है। और फिर दोनों मजबूरन एक रूटीन को ढोने के लिए अभिशप्त होते हैं। अक्सर वे समझते हैं कि "उनके बीच कॉमन कुछ नहीं है" और मानसिक अलगाव की तहत वे एकरसता को अपनी पूरी जिन्दगी पर फैला हुआ पाते है। (58)

बौद्धिक स्तर पर जीनेवाले स्त्री-पुरूष के बीच तनाव का जो वातावरण बनता है उसमें एक-दूसरे के सामने होते हुए भी एक-दूसरे के भीतर और छिपे हुए संसार की जासूसी करते हैं, उसे 'एक्सप्लोर' नहीं करते। या फिर "देह के द्वार पर ठहरकर" ही एक-दूसरे को पहचानना चाहते हैं और आदमी और औरत की अपनी सार्थकता, उनका "अभाव-ग्रस्त अन्तःस्वरूप कहीं भीतर ही तड़पता रहता है।" न समझे जाने की पीड़ा लिए यह एक मनोवैज्ञानिक स्थिति हो सकती है, मन की खोह की ग्रंथियों का एक लम्बा सिलसिला और पारस्परिक असहमति के रेगिस्तान , एक दूसरे के बीच आ जाते हैं। बौद्धिक स्तर का अन्तर और दोनों ओर से एकान्त समर्पण की 'अडोलेसेण्ट' मानसिकता भी इसका कारण होती है। ये स्थितियाँ अनमेल विवाह से उपजी होती तो इनका तर्क सीधा और स्थिति सरलीकृत होती, लेकिन विडंबना तो तब बढ़ जाती है जब दोनों, अन्यथा विकसित और प्रबुद्ध और आधुनिक भी होते हैं। इन्हीं तथ्यों पर मेहरूनिस्सा परवेज 'खेलावादी' (59) कहानी रचती है और दीप्ति खण्डेलवाल 'हव्वा' (60) कहानी का परिवेश सिरजती है।

कस्बे और गाँव की महिलाएँ जहाँ दोहरी मानसिकता और विचार और व्यवहार की दोहरी शर्तो पर जीती है- प्रसंग है राजेन्द्र यादव की 'एक कमजोर लड़की की कहानी (61) और 'टूटना' कहानी तथा मोहन राकेश की

'सुहागिनें'[62] वास्तव में मध्यवर्गीय लड़कियाँ आधुनिक हो जाने पर भी इतनी डरपोक होती है कि शरीर के छुए जाने या न छुए जाने के आधार पर सम्बन्धों को तौलती है। यों यह बात सच है कि प्यार को आगे बढ़ाने में जिस्म बहुत बड़ा हिस्सा अदा करता है और शायद प्यार को चरम स्थिति जिस्मों के संवाद में ही आती है, लेकिन सम्बन्धों की इयत्ता वही नहीं है। वे वही खत्म नहीं होते और औरत कई बार यह पूछने पर मजबूर हो सकती है कि "क्या इस सबसे आदमी थकता नहीं।" वह सिर्फ एक उद्दीपन होने की मजबूरी से आजिज आ चुकी है और उन स्तरों और कोणों को तलाश करना चाहती है जहाँ उसे अपनी और अपने साथी की सार्थकता का पता चल सके । इस तलाश में भीतर तक धँसते ही लगता है कि दोनों के मध्य कोई ऐसा पुल नहीं था, जो एक-दूसरे तक उनकी बात पहुँचा सकता और अलग-अलग समस्या एकदम निजी समस्या बनी रहती है।[63]

दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी 'हव्वा' इस मामले में अतिरेकवादी विचारों की कहानी है। वैसे भी महानगरों और हाईटेक सिटी वाले टेक्नोक्रेट व टेक्नोलाजी वाले माहौल में विवाहपूर्व या विवाहेत्तर स्त्री-पुरूष सम्बन्ध अब मन बहलाव या रिक्तता बोध को कम करने के साधन हं। 'कालगर्ल्स' की नियति हो या शौकीन मिजाज महिलाओं की अस्मिता व स्वतंत्रता... । प्रसंगवश बड़े-बड़े नगरों में जब परिवार की लड़कियों को अधिक छूट मिलती है तो वे कभी-कभी 'शौकीन मिजाज' में यह धंधा कर बैठती हैं। यौन-सम्बन्ध जब पुराने पड़ जाते हैं तो उनको शारीरिक भूख को तो मिटाना होता ही है, अतः मजबूरन कामवश हो वे जीवन पर्यन्त इसका शिकार हो जाती हैं। कभी-कभी निर्धन परिवार की लड़कियाँ भी आर्थिक विषमताओं के कारण यौन- सम्बन्धों में प्रवृत हो जाती हैं। और यही रूप पुरूषों का भी होता है।[64] शौकीन मिजाज और संपन्न घराने के युवक प्रारंभ में तो कोठों पर मुजरा देखते हैं, कैबरे डांस देखने जाते हैं और यही प्रवृत्ति उन्हें होटलों, क्लबों, नृत्यशालाओं या अन्य सुरक्षित स्थानों पर, जहाँ कि वेश्याओं के अड्डे होते हैं वहाँ ले जाती हैं। महेन्द्र भल्ला, रमेश बक्षी, की कहानियों में इनके वर्णन आये हैं। जिनका विवेचन विगत अध्याय में किया गया है।

स्त्री चाहे कामकाजी वर्ग की हो या घरेलू। वह अपना 'स्वत्व बोध' चाहती है। प्यार के कुछ बोल और मादक स्पर्श। घनश्यामदास भुतड़ा ने भी अभिज्ञापित किया है कि मंजुल भगत की 'खोज' कहानी एक ऐसी व्यस्त कामकाजी नारी की कहानी है, जो जीवन की आपाधापी में अपने 'स्व' को ढूंढ़ना चाहती है।[65] वास्तव में दफ्तर से घर लौटकर मिसेज वर्मा 'नीलिमा' से 'नीलू' बन जाती है। उसे लगता है "मिसेज वर्मा, नीलिमा, नीलू सब अलग-अलग नाटकों में किये गये अलग-अलग रोल है, लेकिन उनके अन्दर जो 'मैं' है, उसका रोल क्या है।[66]

पारिवारिक कर्तव्य तथा दफ्तर की जिम्मेदारियों की भीड़ में नीलिमा असन्तुलित हो जाती है। अतंराफ के लोगों की अपेक्षा के अनुकूल होकर

उसे जीना पड़ता है। इस प्रकार जीवन में सतत 'स्व' को खोजने वाली नीलू की यह तृष्णा उसी समय शान्त होती है, जब वह एक बच्चे की माँ बनती है। XXX अपने व्यक्तित्व को खोजने वाली नीलू मातृत्व को प्राप्त कर, उसी को मैं समझकर संतोष प्राप्त कर लेती है। जो अधिकांश भारतीय नारियों की हकीकत है।

लेकिन स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में प्रेम एक वायवीय पर ठोस भावात्मक अनुभव है। कल्पना के स्तर "प्रेम एक अनुभव है, लेकिन इसके अन्दर न जाने कितने अनुभव है- घृणा, रति, आत्मरति, प्रतिहिंसा, दाह, दुख। कोई अनुभव नहीं जो प्रेम के अनुभव में नहीं। (67)

पति-पत्नी का प्यार जो नर-नारी के प्रेम के सम्बन्ध में अपने व्यापक रूप में स्वातंत्र्योत्तर कहानी का मुख्य विषय रहा है। फ्रायड ने भी सभी प्रेम सम्बन्धों को काम, रति या 'लिबिडो' से जोड़कर काम को ही सभी प्रवृत्तियों का मूल माना है। जैनेन्द्र के शब्दों में -" प्रेम से तनिक भिन्न रूप में चाहने के लिए हम इसे काम कह दिया करते हैं। परन्तु वह है प्रेम का ही आंशिक रूप। (68) राजेन्द्र अवस्थी के शब्दों में -"प्रेम की चरमसीमा विवाह नहीं है, यह बात सिद्ध हो चुकी है और समय और परिस्थिति के चक्कर में पड़कर विवाह मात्र धर्म रह गया है।"। (69)

आधुनिक कहानीकारों ने प्रेम- सम्बन्धों की मनोवैज्ञानिकता को सामने रखकर कहानियों में विविध स्थितियों का अंकन किया है। प्रेम उत्सर्ग चाहता है। प्रेमी की व्यथा प्रेमिका को ही नहीं, अपितु पढ़ने-सुनने वालों को भी द्रवित कर देती है। जब प्रेस अव्यक्त रहता है तो उसकी मर्मस्पर्शता अधिक बढ़ जाती है। उषा प्रियंवदा की लम्बी कहानी 'एक कोई दूसरा' में 'नीलांजना' और डॉ.कुमार में व्यक्त प्रेम है जिसे नीलांजना समझ नहीं पाती और जिसका बोध इसे डॉ.कुमार की पुस्तक के समर्पण से होता है। अक्सरपुरूष संवेदनशील होता है तो प्रेम पात्रा (स्त्री) उतनी संवेदनशील नहीं होती है। कभी-कभी नारी उत्सर्गमयी व समर्पण मुद्रा की होती है तो पुरूष अपने जीवन लक्ष्य में पीछे रह जाता है।

प्रसंगवश 'एक और जिन्दगी' के बीना और प्रकाश में विवाह के कुछ दिनों बाद ही अलगाव की स्थिति पैदा हो जाती है। बीना में बहुत अहं था, वह उसके बराबर पढ़ी लिखी थी, उससे ज्यादा कमाती थी। उसे अपनी स्वतंत्रता का बहुत मान था और वह समझती थी कि किसी भी परिस्थिति का वह अकेली रहकर मुकाबला कर सकती है। शारीरिक दृष्टि से भी बीना लम्बी ऊँची थी और उस पर भारी पड़ती थी बातचीत भी खुले मर्दाना ढंग से करती थी...।" पत्नी के ऐसे विद्रोही एवं अहंपूर्ण व्यक्तित्व के कारण ही पति का उसे स्वीकार न करना आज की जटिलता है। दूसरी और अगर पति-पत्नी आपस में स्तर की असमानता के कारण परिवार के रहन-सहन, आचार-विचार, तौर-तरीके में "एडजस्टमेंट' नहीं कर पाते तो भी जटिलता पैदा होती है और यह एक महात्वपूर्ण कारण है-जैसे राजेन्द्र यादव की 'टूटना' कहानी में लीना और किशोर। (70)

स्त्री-पुरूष के दैहिक, मानसिक, वासनापरक और प्लेटोनिक समर्पण के कितने ही रूप हैं जो आदिमकाल से लेकर आधुनिक जीवन में परिव्याप्त हैं। पर कहानी में अनुभव की ईमानदारी और प्रामाणिकता कितनी जरूरी है, उतनी ही जरूरत है उसकी वैयक्तिक सघनता और सामाजिक व्यापकता। आधुनिक कहानी में भोगा हुआ यथार्थ और अनुभव की प्रामाणिकता पर सर्वाधिक जोर दिया जाता है। हमें देखना यह चाहिए कि कहानी में यथार्थ का भोग और प्रामाणिक अनुभव कितना सम्पन्न है ? कोई भी कहानी अपने व्यक्तिगत दुखों और तकलीफों का रोना-धोना नहीं है। जब तक कि अपने व्यक्तिगत अनुभव और तकलीफ को एक दूसरी निगाह से देखकर उसे सामाजिक संदर्भ और मानवीय आशय प्रदान नहीं किया जाएगा, तब तक उसकी कोई सार्थकता नहीं होगी। कई बार लेखक कहते हैं कि यह हमारा निजी, वास्तविक और प्रामाणिक अनुभव है लेकिन पाठक के लिए उसकी सार्थकता तो तभी है जब वह उसका भी निजी वास्तविक और प्रामाणिक अनुभव हो या बन जाए।

नासिरा शर्मा, दीप्ति खण्डेलवाल, मेहरूनिस्सा परवेज, और मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में स्त्री पात्र अधिक संवेदनशील और जागरूक मन के पात्र हैं जब कि राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, और निर्मल वर्मा के स्त्री पात्र विचार, मन और आन्तरिक अनुभूतियों के पात्र प्रतीत होते हैं जो अस्मिता, स्वतंत्रता की प्राप्ति में अलगाव बोध और विसंगति बोध का सामना करते हैं।

चतुर्थ अध्याय : सन्दर्भ सूची

1. महादेवी वर्मा	: श्रृंखला की कडियाँ	पृ.23
2. देवी शंकर अवस्थी	: नयी कहानी :संदर्भ और प्रकृति	पृ.58
3. राजेन्द्र यादव	: कहानी,स्वरूप और संवेदना	पृ.69
4. उषा कीर्ति राणावत	: स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श	पृ.42
5. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.133
6. रघवीर सिन्हा	: आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य : मूल्यों से प्रयाण	पृ.35
7. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.144
8. विवेक राय	: हिन्दी कहानी :समीक्षा और संदर्भ	पृ.43
9. रोहिताश्व	: शोध कर्त्री की निजी वार्ता 27 जनवरी 2008	
10. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.139
11. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.122
12. रघवीर सिन्हा	: आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य : मूल्यों से प्रयाण	पृ.155
13. मृदुला गर्ग	: डेफोडिल जल रहे है	पृ.77
14. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.103
15. मृदुला गर्ग	: चर्चित महिला कथाकारों की कहानियाँ	पृ.40
16. मृदुला गर्ग	: चर्चित महिला कथाकारों की कहानियाँ	पृ.41
17. घनश्यामदास भुतड़ा	: समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप	पृ.70
18. मृदुला गर्ग	: वितृष्णा	पृ.42
19. उर्मिला शुक्ल	: चाणक्य विचार पत्रिका-मैत्रेयी पुष्पा विशेषांक जून 2009	पृ.44
20. उषा कीर्ति राणावत	: उद्घृत भगवत गीता	पृ.101
21. बर्टेड रसेल	: विवाह और नैतिकता	पृ.86

22. उषा कीर्ति राणावत	: स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श	पृ.
23. वाचस्पति गैरोला	: कामसूत्र परिशीलन	पृ.316
24. राधाकृष्णन	: धर्म और समाज	पृ.189
25. राधाकृष्णन	: धर्म और समाज	पृ.175
26. सिंगमंड फ्रायड	: एन आउट लाईन आफ साइको अनेलेसिस	पृ.
27. विजय मोहन सिंह	: हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना	पृ.32
28. धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का सफरनामा	पृ.182
29. रघवीर सिन्हा	: आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य : मूल्यों से प्रयाण	पृ.38
30. रघवीर सिन्हा	: आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य : मूल्यों से प्रयाण	पृ.39
31. कमलेश्वर	: तलाश, मांस का दरिया	पृ.8
32. विवेकी राय	: हिन्दी कहानी :समीक्षा और संदर्भ	पृ.62
33. विवेकी राय	: हिन्दी कहानी :समीक्षा और संदर्भ	पृ.67
34. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.114
35. राही मासूम रजा	: दिंल का सादा कागज	पृ.10
36. प्रभाकर माचवे	: तीस चालीस पचास	पृ.33
37. उषा कीर्ति राणावत	: स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श	पृ.57
38. धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का सफरनामा	पृ.203
39. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.113
40. घनश्यामदास भुतड़ा	: समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप	पृ.64
41. रमेश बक्षी	: पिता दर पिता	पृ.24
42. जगदीश चतुर्वेदी	: निहंग	पृ.109
43. धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का सफरनामा	पृ.156
44. विजय मोहन सिंह	: कथा देश जनवरी 2009	पृ.85

45. उर्मिला शुक्ल : चाणक्य विचार मई 2009 पृ.43

46. सीमोन द बोउबा : (अनु. प्रभा खेतान 'स्त्री') द सेकण्ड सैक्स पृ.

47. उषा कीर्ति राणावत : स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श पृ.169

48. उषा झा : हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श पृ.113

49. राजेन्द्र यादव : प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.

50. कात्यायनी : दुर्गद्वार पर दस्तक पृ.81

51. उषा झा : हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श पृ.91

52. वीरेन्द्र मेहन्दीरत्ता : धूप में चटकता काँच (मिट्टी पर नंगे पाँव) पृ.25

53. वीरेन्द्र मेहन्दीरत्ता : धूप में चटकता काँच (मिट्टी पर नंगे पाँव) पृ.28

54. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.298-299

55. निर्मल वर्मा : परिन्दे पृ.81

56. उषा झा : हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श पृ.184

57. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.153-154

58. मेहरूनिस्सा परवेज : समरलोक सितम्बर 2009 पृ.४५

59. दीप्ति खण्डेलवाल : धूप के अहसास पृ.46

60. राजेन्द्र यादव : छोटे-छोटे ताज महल पृ.

61. मोहन राकेश : प्रतिनिधि कहानियाँ

62. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.154-155

63. महेश दिवाकर : हिन्दी नई कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ.332

64. घनश्यामदास भुतड़ा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.124

65. मंजुल भगत : खोज : 4 मार्च 1973 पृ.17

66. श्री सुरेन्द्र : नई कहानी दशा : दिशा : सम्भावना पृ.236
67. जैनेन्द्र : हिन्दुस्तान : प्रेम अंक :12 दिसंबर 1976पृ.8
68. राजेन्द्र अवस्थी : श्रेष्ठ प्रेम कहानियाँ पृ.10
69. उषा झा : हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श पृ.120
70. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र पृ.118

5. अलगाव, तनाव और विडम्बना सम्बन्धी विमर्श

समकालीन कहानी के केन्द्र में जितने भी स्त्री-पुरूष पात्र हैं, वे अपने जीवन परिवेश में टूटी हुयी आस्था, बदलते विश्वास और नैतिकता के नये-पुराने मापदण्डों को विध्वंस होते हुए देखनेवाले असहाय पात्र हैं। संघर्षशील पात्र या तो एकाकी रह जायेंगे या अलगाव बोध का शिकार बन जायेंगे। जिन्दगी भर तनाव झेलते हुए परिवेश की विडम्बनाओं से उबर नहीं पायेंगे। चाहे वह राजेन्द्र यादव की कहानी 'टूटना' या 'खेल-खिलौने' हो या मोहन राकेश की 'मिसपाल' अथवा कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' हो या 'मांस का दरिया' का वर्णन।

स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में पुरूष आज भी नियन्ता शासक और बलजोरी करनेवाला प्राणी है और नारी सहयोग, सुरक्षा, और संरक्षण के लिए अपनी तृष्णाओं को रौंदती हुई परिवेशगत एक विवश पात्र प्रमाणित होती है। पर इतिहास, समय, परिवेश और आधुनिकता बोध ने अपनी करवट बदली है। पर नारी आज न तो शैतान का दरवाजा है, न समस्त पापों का मूल ; और न वह पति की क्रीत-दासी अथवा स्वामी की दया पर जीवन-यापन करनेवाली है। वह उदात्त भावनाओं की प्रेरिका के रूप में सामने आयी है। (1) आज नारी पुरूष के साथ समान अधिकारों की भोग्या बनकर समस्त कार्यो में उसका हाथ बटानेवाली हो गयी है। "आधुनिक साहित्यकार सौंदर्योपासक होने के कारण नारी-छवि को संसार के सौन्दर्य और सुख का

मूल कारण मानता है। वह उसके अनिवार्य आकर्षण से भक्तिकालीन कवि की तरह भागता नहीं। प्रत्युत उसे वह नारी की शक्ति मानता है। उस शक्ति को सम्मोहन-शक्ति की अभिधा प्रदान की जा सकती है।" (2)

5.1. समकालीन कहानी और अलगावबोध

स्वातंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक - आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश के मोहभंग की स्थिति पनपी है। जिससे कोई भी सुधी पाठक इन्कार नहीं कर पायेगा। वैसे भी अपने देश में स्वतंत्रता के बाद सेवा, त्याग, देशभक्ति जैसे सामाजिक मूल्य स्वार्थान्ध राजनीतिक मूल्यों में जिसमें से नेतागीरी, नंगई, लूटपाट, स्वार्थपरता, काली कमाई, भ्रष्टाचार दहेजखोरी, अहंकेन्द्रीयता, अर्थलोलुपता आदि गलत मूल्यों की कोपलें फूट पड़ीं।

फणीश्वरनाथ रेणु की 'आत्मसाक्षी' शीर्षक कहानी ऐसे ही मोहभंग के मूल्यों को रेखांकित करती है। मूल्यहीनताओं के इस भयानक दौर के बीच पुराने सामाजिक और नैतिक मूल्यों के पक्षधर और विश्वासी तथा सेवाव्रती गनपत का चित्रण इस कहानी में हुआ है। नये दौर में उसे घोर मोहभंग की स्थिति से गुजरना पड़ता है। पार्टी के नाम पर लूट-खसोट जैसा, सेवा के नाम पर स्वार्थ-साधना का धन्धा करने वालों के बीच वह अपनी सच्चाई के कारण मारा जाता है। वास्तव में यह कहानी एक रेखाचित्रात्मक कहानी है जिसमें गनपत का वैसा ही प्रभावशाली रेखाचित्र उभरा है जैसा मार्कण्डेय की कहानी 'हंसा जाई अकेला' में हंसा नामक पात्र का चित्र है। किन्तु इस संग्रह में सबसे प्रभावशाली रेखाचित्र 'नैना जोगिन' कहानी में रतनी का है। (3)

रेणु की 'तीसरी कसम' कहानी का हीरामन भी परिवेश और मूल्यहीनता का शिकार पात्र रहा है, जो अलगावबोध, तनाव और विडम्बना में जीता है। समकालीन कहानी में पुरूष पात्रों की रफ्तार में नारी पात्रों की विविधता और विषमता रेखांकित हुयी है। स्वातंत्र्योत्तर दौर में शिक्षा और रोजगार के अवसर पनपे। अतः आर्थिक संकट से उबरने के लिए अधिक से अधिक स्त्रियाँ नौकरी करने लगीं। दफ्तरों में काम करते हुए उसके मूल्य व मर्यादा को ठेस लगीं। बचे-खुचे परिवार भी टूट चुके थे। स्त्री-पुरूष की नजदीकियाँ दूरियाँ बनने लगीं। उद्योग केन्द्र व नगरीकरण ने परिवारों को आकर्षित किया। स्त्रियों के काम करने से बेरोजगारी बढ़ी एकल परिवारों में असुरक्षा का भय व्याप्त हो गया।

स्त्री के 'स्वबोध' एवं स्वतन्त्रता ने स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बीच आक्रामक स्थिति उत्पन्न कर दी। वे दोनों एक दूसरे के पूरक होकर भी एक दूसरे के विरोधी हो उठे। दोनों हिंसक हो उठे। स्त्री सुलभ गुणों की कमी से (विनम्रता, माधुर्य, सेवा) आदर्श धराशायी हो गये। एक घर में रहकर भी वे अजनबी बन गये। वे स्त्री-पुरूष न बनकर 'व्यक्ति' बन गये। हिन्दू विवाह अधिनियम तथा तलाक की व्यवस्था ने स्त्री-पुरूष दोनों की

आँखें खोल दीं। 'स्वबोध', 'स्वावलम्बन', तथा 'अधिकार' ने स्त्री को पति का सामना करना सिखाया। बाहरी सम्पर्क से उसने पुरूष-मित्र भी बनाये। पति व मित्र के बीच स्त्री तुलना करने लगी।" (4) जिससे परिवेश तनाव और अलगाव बोध की स्थिति पनपी है।

प्रसंगवश नमिता सिंह की कहानी 'एक बेताल कथा और' की कल्पना पढ़ी-लिखी लड़की है। जिसकी शादी की चिंता उसके माँ-बाप को है। पर बात बनती नहीं है। खातिरदारी और बार-बार दिखाने की रस्म के कारण माँ-बाप के भीतर अपराध बोध की भावना बन जाती है। लेखिका लिखती है-"औरत जात पैदा हुई है तो द्रौपदी की नियति बरदाश्त करनी ही पड़ेगी।" कहना न होगा कि कल्पना जैसी हर मध्यवर्गीय लड़कियों की अधिकांशतः यही स्थिति होती है। शादी होने तक स्वयं को सजाना, संवारना तथा स्वस्थ बनाए रखना पड़ता है। सीमोन द बोउवार ने स्त्री के इसी स्वभाव पर प्रकाश डाला है -"स्त्री स्वभावतः आत्मुग्धा होती है। पुरूषों की दृष्टि में स्वीकृती होने के लिए वह सुन्दर दिखना चाहती है।"(5) यह सही है की स्त्री का देह पुरूष के लिए महत्वपूर्ण होता है। उसके शरीर को सजाता, संवारता है। उसका उपभोग उसे लेना होती है। यही कारण है कि उसकी सुन्दरता विवाह के बाद जब कम हो जाती है तो उस पर कटाक्ष करना भी वह नहीं छोड़ता।

अलगाव बोध एक मानवीय प्रवृत्ति है, जो लगातार एक ही प्रकार की श्रम-प्रक्रिया, परिवेश-स्थिति में रहते हुए कभी-कभी तटस्थता का बाइस बन जाती है या ऊब की। समकालीन पूँजीवादी उत्पादन की जटिलता ने औद्योगिक टेकनोलोजी ने कला कृतियों और काव्य-कथा रचनाओं को व्यावसायिकता का शिकार बना दिया है। व्यावसायिकता की माँग और पूर्ति के कार्य-कारणों से रचनाकारों व कलाकारों में 'अलगाव' की भावना त्रासदीय और चिन्तापरक है क्योंकि कलाकृति और काव्य-कथालोचना भी अन्य उपभोक्ता वस्तुओं की तरह निराकृत 'एब्स्ट्रेक्ट' हो गयी है।" (6)

अतः कहना न होगा कि एक ओर कलाकृति और कलाकार तथा दूसरे स्तर पर कलाकार-रचनाकार एवं आम पाठक-जनता के बीच अलगावबोध एवं परकीयकरण बढ़ जाता है। जो सृजनात्मक 'समग्रता' टोटलिटी पर दुधारी चोट है। विभिन्न कथा सृजनाएँ विभिन्न रूपों में निराकृत एब्सट्रेक्ट हो रहीं हैं तथा कलाकार निजडा और अजनबी हो गया है। अन्ततोगत्वा वह केवल एक अकेले अजनबी 'विशेषज्ञ' रूप में संकुचित हो गया है बृहत्तर समाज के परिप्रेक्ष्य में और केवल परिचितों समूह विशेष में पहचाना जाता है।

समकालीन कहानी के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में अगर 'राजेन्द्र यादव की कहानियाँ हम पढ़ते हैं तो अपेक्षा स्त्री-पुरूष के बीच तनाव अलगावबोध और ऊब की होगी जो उनके विगत पचास वर्षो के लेखन की विशेषता है। यही हश्र कमलेश्वर और मोहन राकेश के कथा लेखन की है। निर्मल वर्मा

की कहानियाँ आन्तरिक अकेलेपन और अलगावबोध के देश विशेष की है चाहे वह 'परिन्दे' हो या 'लवर्स'। (7)

स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बीच वितृष्णा, यौनाकांक्षा और अलगावबोध को लेकर इतनी कहानियाँ लिखी गयीं हैं कि प्रमोद त्रिवेदी ने 'समकालीन हिन्दी कहानी :व्यावसायिकता और मेनरिज्म' के शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है - "कथ्य के स्तर पर 'साहसिक बोल्ड'कहानियों के नाम पर अप्रामाणिक यौन अनुभवों की कहानियाँ आज पत्र-पत्रिकाओं में भरी पड़ी हैं। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के नामपर मरी हुई औरत की लाश से सम्भोग, शव के इर्द-गिर्द ब्रिज की सीटिंग्स, बीयर के दौर एक अजीब सी आक्रामकता और इस आक्रामकता से उपजी एक खास मुद्रा आज की कहानियाँ इन्हीं स्थितियों के आसपास हैं । (8)

वैसे भी वर्तमान दौर की जटिल मानसिकता और महानगरीय आपाधापी में स्त्री-पुरूष आपस में आंतरिक लगाव महसूस नहीं कर पाते हैं। स्नेह-सम्बन्ध औपचारिकता में और प्रेम एक शारीरिक लिप्सा या वासनापूर्ति में बदल जाता है। प्रसंगवश महेन्द्र भल्ला की एक शुरूआत कहानी में प्रेमी (अशोक) प्रेमिका (अंजू) से शादी करने वाला है, पर रेस्ट्राँ में उसके साथ बैठे-बैठे सहसा अनुभव करता है कि शादी के लिए कोई उत्साह नहीं रह गया है, बल्कि सब कुछ बदल गया है-"अंजू ! मुझे लग रहा है कि सब खेल था, खत्म हो रहा है...और..तुमने जंगल में रहने की बात की थी न ! जंगल में रहने का एहसास अभी से होने लगा है।"(9)

प्रेमिका के साथ जंगल में रहने का एहसास ! यानी आदमी प्यार से ही नहीं, जिन्दगी और समाज से बाहर ! पर कोई दूसरे से अलग होने से पहले अपने आप से अलग होता है। 'अलगाव' की शुरूआत यहीं से होती है। कहानी में भी यही होता है-"एकाएक वह उठा और क्लोक रूम में चला गया। अन्दर जाकर वह शीशे के सामने खड़ा हो गया और अपने चेहरे को ध्यान से देखने लगा -एक-एक अंग को अलग से, आँखें,नाक,भवों,ठुड्डी को ऐसे देखने लगा जैसे ये अपने न हो। मन-ही-मन इस तरह करने पर हैरान भी हो रहा था।" (10)

अलगावबोध एक मानसिक प्रक्रिया है, देह से उपस्थित होते हुए भी मन-मस्तिष्क से कहीं किसी और स्थान या भाव में। आजकल एक ही कमरे की छत के नीचे जीवन बितानेवाले पति-पत्नी एक दूसरे से कटे रहते हैं। पर यह मुकम्मिल 'अलगाव' नहीं है -रिश्तों का एक दूसरा सिरा भी होता है, 'अलगाव' की अनुभूति उसमें भी होनी चाहिए, इसलिए कहानी की 'प्रेमिका' (अन्जू) भी यही महसूस करती है -"उसने महसूस किया कि अशोक कहीं बदल रहा है या ऐसा ही कुछ-अपने सम्बन्ध में थोड़ी कसर बाकी लगी। पहले उसे पता ही नहीं पड़ा --- उसने अशोक को फिर गौर से देखा..।" (11)

विजय मोहन सिंह के शब्दों में 'अलगाव' का यही सवाल बुनियादी है ! इसलिए लगभग खत्म सवाल ! या उसके इस्तेमाल किये गये सभी नुक्तों

से बाहर जाकर ही उस पर लिखा जा सकता है जो महामुश्किल है अब महेन्द्र भल्ला स्वयं इस कहानी में अपनी 'तीन-चार दिन' जैसी कहानी से भी बहुत पीछे लौट आते हैं। कहानी एक अनुगूँज रहित अहसास बनी रहती है।" (12)

घनश्याम दास भुतड़ा ने भी 'समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप' नामक आलोचना पुस्तक में अभिज्ञापित किया है कि - "वर्तमान दौर के जीवन में पति-पत्नी के बीच सम्बन्धों में एक टूटन, दरकन और अलगाव बोध सा व्याप्त है। पति-पत्नी के बीच तुर्शिया निर्माण होने से वे सम्बन्धों को ढोने के लिए विवश हैं। उनमें सामाजिक, आर्थिक, और भावनात्मक कारणों से सम्बन्ध तनावपूर्ण स्थितियों के हैं। इन सम्बन्धों की वास्तविकता को जितनी सूक्ष्मता और गहराई से महिला कथाकारों की कलम पकड़ पाई है, उतनी सूक्ष्मता पुरूष कथाकारों की नहीं। नारी की पीड़ा और दंश को नारी मन ही समझ सकता है। उसे नारी-मन ही अधिक सशक्त वाणी दे सकता है। (13)

नयी कहानी दौर में उषा प्रियंवदा (मछलियाँ) मन्नू भण्डारी (कोई तीसरा , यही सच है), कमलेश्वर (ऊमर उठता हुआ मकान, राजा निरबंसिया) , निर्मल वर्मा (पराये शहर में), राजेन्द्र यादव (किनारे से किनारे तक) आदि ने इन कहानियों में दाम्पत्य जीवन की टूटन को अभिव्यक्ति दी है। समकालीन कहानियों में इस विषय पर बहुत सशक्त कहानियाँ लिखी गयीं हैं। नयी कहानी से पूर्व की कहानियों में प्रेम का त्रिकोण, एक पुरूष दो नारियाँ अथवा दो पुरूष एक नारी को प्रस्तुत किया गया है। समकालीन कहानी में इस बंधे-बंधाये फार्मूले को तोड़कर आधुनिक जीवन स्थितियों के अनुरूप प्रेम और दाम्पत्य सम्बन्धों को उद्‌घाटित किया गया है। समकालीन कहानी के दौर में 'बंद दराजों का साथ' और 'ऊँचाई' कहानियों में पति-पत्नी के बीच तीसरे की उपस्थिति को अनुभूतिपूर्ण ढंग से उकेरा है। इस क्षेत्र में दीप्ति खण्डेलवाल की कहानियाँ बेजोड़ हैं। दाम्पत्य का यह विष उनकी कहानियों में पूरी तरलता से देखा जा सकता है। इनकी कहानियों का कथ्य एक होते हुए भी प्रत्येक कहानी का कोण नया है। नारी के इन्हीं अनछुए जख्मों के दर्द का अहसास उनके 'कड़वे सच' और 'धूप के अहसास' संग्रहों की कहानियाँ कराती हैं।

पाठकों को संभवतः याद हो कि अकहानी और सहज कहानी के दौर में दीप्ति खण्डेलवाल, मृदुला गर्ग, ममता कालिया और मणिका मोहिनी ने स्त्री-पुरूष सम्बन्धों बोल्ड कहानियाँ लिखी है। मणिका मोहिनी की कहानियाँ, (एक ही बिस्तर पर 'दुश्मन', 'पूरक') में तीसरी उपस्थिति के अहसास और पीड़ा को एक अन्य कोण से उठाया गया है। दाम्पत्य की दूरियों का चित्रण करनेवाली ये सशक्त कहानियाँ हैं। इन कहानियों में तीसरी उपस्थिति के कारण दाम्पत्यगत दूरियाँ इसलिए निर्मित हुई हैं कि एक दूसरे से अपेक्षाएँ बदली हैं। ममता कालिया की कहानी 'सीट नम्बर छह' का यह कथन, "शादी के बाद औरतों की सेंस ऑफ ह्यूमर को क्या हो जाता है ? अपने

पोंगे से पोंगे पट बैलीड पति को वे ऐसे संभाल कर रखती हैं जैसे लाटरी का लक्की नम्बर हो।" [14] उन्हीं की कहानी 'पीली लड़की' में, औरतें पति को अगूँठी और ब्लाउज के साथ-साथ निजी पूँजी ही समझती है और अक्सर सोचती हैं कि दुनिया भर की लड़कियाँ उनके पति पर डांका ड़ालने वाली हैं।" [15] गंगा प्रसाद विमल ने नारी की इसी मनोवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए 'सिद्धार्थ का लौटना' कहानी में व्यंग्य किया है, "वह औरत निहायत शक्की किस्म की है। अगर सिद्धार्थ नब्बे साल की औरत से भी बात करे, तो उस दिन सिद्धार्थ की खैर नहीं। [16]

दूधनाथ सिंह की 'दिनचर्या' कहानी में पत्नी पति को ताना मारती कहती है -"हाँ-हाँ तुम्हे तो दूसरों की सारी बीवियाँ अच्छी लगती है, सिर्फ मैं नहीं। [17] पत्नियाँ छड़ी लड़कियों से तो और भी घबराती हैं कि वे उनके पति को हड़प जायेगी। विवाहित औरतों को अपने पति के छिन जाने का भय हर क्षण बना रहता है। 'विवाहित पुरूष भी काफी तरसे भटके होते हैं और किसी भी लड़की से कोई उम्मीद लगा बैठते हैं।' इस प्रकार के विचार मणिका मोहिनी की कहानी 'सबसे अलग' में व्यक्त हुए हैं।' [18] इन व्यंग्यात्मक स्थितियों के माध्यम से उन विद्रूपताओं को बेनकाब किया गया है, जो व्यर्थ ही पति-पत्नी के बीच दीवार बनकर खड़ी रहती हैं।

समकालीन कहानी के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में कतिपय रचनाकारों ने स्त्री-पुरूष की आन्तरिक आकांक्षाओं और विवशता बोध को संवेदनशील व गम्भीरता से चित्रित किया है चाहे वह 'सुहागिनें' कहानी हो या 'केशर-कस्तूरी'। वास्तव में आज की कहानियों में परिवेश-बोध की अनुपातता की विकसित चेतना बहुत महत्व की वस्तु है। इसकी सही पकड़ न होने से भ्रांतियाँ हो जाती है। इस बिखराव, इस भटकन और इस असंतुलित मानवीय संबंधों से हटकर आज के कहानीकार को न तो दृष्टि ही मिल सकती है और न दृश्य ही। इसलिए कहानीकार अपने चारों ओर फैले वातावरण को अभिव्यक्ति देता है। लेकिन अगर उस वातावरण की अभिव्यक्ति में केवल वातावरण ही रह गया तो कहानीकार असफल हो जाता है। इसलिए कि जीवन के अविच्छिन प्रवाह को काटकर वह अलग एक टुकड़े के रूप में रख देता है। उसकी जगमगाहट कुछ देर तक रह पाती है और फिर बाद में वह निर्जीव शिल्प ही केवल बच रहता है, जो अपेक्षाकृत गौण है। इस ह्रासोन्मुख सभ्यता की कटुता को स्वीकार कर नवीन संतुलन के स्थापन का तीखा दर्द आज की कहानियों में चित्रित हुआ है, जिसे भुलाना सत्य की ओर से आँख मूँदना है। युग के कैंसर को पहचान कर आज की कहानी उसके लिए आत्म-चेतना (सामाजिक घेरे में) की औषध देती है। [19]

आर्थिक आत्मनिर्भरता भी महिलाओं को कहीं -कहीं अतिरिक्त सजगता प्रदान करती है। अर्चना वर्मा जैसी अंग्रेजी-हिन्दी की लेखिका शादी के बाद डायवोर्स लेना पसन्द करती है। वास्तव में आर्थिक रूप से स्वावलंबी विवाहिता महिलाओं के लिए 'मुक्ति' की एक दिशा 'विवाह-विच्छेद है',

'कापुरूष'(उषा यादव) की गीतिका अपने पति से कह देती है -"इतने दिनों तुमने मुझे पत्नी रूप में ढोया, उसका शुक्रिया। अब हमारी तुम्हारी मुलाकात कचहरी में होगी।" हालाँकि संस्कारों की मजबूत जकड़न बहुत-सी पत्नियों को रोकती है और वे क्षुब्ध और दुख संतप्त होते हुए भी सहनशीला पत्नी की भूमिका निभाती रहती हैं। 'शहर में अकेली लड़की ' (उर्मिला शिरीष) की दीदी आततायी पति को झेलती रहती है। उनकी छोटी बहन उनकी लड़ाई लड़ती है। वह आततायी पति से मुक्ति मिलने पर दीदी को पुनर्विवाह के लिए तैयार भी करती है। इस तरह की कहानियाँ पतिव्रत सतीत्व जैसी नैतिक अवधारणाओं पर निषेधात्मक प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। (20)

अकविता -अकहानी के दौर में मोना गुलाटी ने कहा था - 'काँपती टाँगों के बीच /दंशी /झाडियों ने। क्यो ढंक लिया है। सारे देश को/ प्रदर्शन के मध्य। क्या सोचते हैं -नपुंसक और हीजड़े।' (21) एक बेबाकी, वितृष्णा और अलगावबोध की प्रतीति केवल रमेश बक्षी, गंगा प्रसाद विमल, और जगदीश चतुर्वेदी को हुयी हो ऐसी बात नहीं बल्कि उसे मोना गुलाटी, ममता कालिया, मणिका मोहिनी आदि की रचनाओं में परिलक्षित ही नहीं बल्कि अनुभव भी किया जा सकता है। प्रसंगवश मानसिक संघर्ष एक निम्न स्तर पर मणिका मोहिनी की 'जलांध' में कट्टो का है, जो उत्तम से जुड़ती है, जुदा होती है, फिर जुड़ती है। महानगरीय जीवन में आधुनिकता एवं स्वच्छता की दुहाई के बावजूद एक यांत्रिकता, एक घिसी-पिटी जिन्दगी होती है।

मृदुला गर्ग की 'हरी-बिन्दी' की नायिका भी पति के साथ यांत्रिक, अति परिचित एवं ऊब भरे सम्बन्धों से मुक्त होकर स्वच्छ हवा में सांस लेना चाहती है। यहाँ वह कुछ क्षण अपने साथ साक्षात्कार कर सके, अपने को पहचान सके। इसलिए वह पति के दिल्ली जाने पर विरहानुभूति में भीगती नहीं,वरन् अनुपस्थिति में अपनी उपस्थिति के एक-एक पल को जी लेना चाहती है बिना किसी पूर्वाग्रह के। उस अजनबी के साथ, जो उससे नाम नहीं पूछता, पति का नाम नहीं पूछता, किन्तु इन्हें भोगने के पश्चात वापस पति के घर लौटती है क्योंकि वह सारी उन्मुक्तता के बाद भी दिशाहीन है। (22) और अलगावबोध की मनःस्थिति से खिन्न भी।

हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श के सन्दर्भ में उषा झा ने लिखा भी है कि मोहभंग की स्थिति ने एक आक्रोश, असंतोष, विद्रोह, कुंठा एवं द्वंद्व की स्थिति को जन्म दिया, साथ ही 'पीढ़ी अन्तराल' (जनरेशन गैप) को भी। पुरानी पीढ़ी तो इन मूल्यों में आस्था -अनास्था के बीच झूलती रही, किन्तु नयी पीढ़ी पूरी तरह अनास्थावादी एवं विद्रोही रही। इन मूल्यों के संस्कार यद्यपि नई पीढ़ी को भी मिले अतः जड़े गहरी रहीं और आज का युवा वर्ग एक किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में झूल रहा है।

'टूटना' कहानी में राजेन्द्र यादव ने किशोर एवं लीना में सम्बन्धों के मोह के टूटने का कारण वर्गगत असमानता दिखाई है। लीना व किशोर दोनों के आदर्श एवं संस्कारगत मूल्य भिन्न हैं। दोनों आपस में एडजस्ट

नहीं कर पाते। लीना जीवन को सहज ढंग से स्वीकार करके जीने की आदी है ...'छोटी सी जिन्दगी है, यों ही बीत जायेगी। वह मेहता के प्रति भी एक सहज मैत्री का भाव रखती है, किन्तु किशोर उसके इस व्यवहार को शंकालु दृष्टि से देखता है। किशोर की आत्महीनता के लिए जिम्मेदार मुख्यतः उसकी मध्यवर्गीय चेतना है। छोटी से छोटी चीज के लिए घुटते रहकर थोडी-सी प्राप्ति को बड़ी उपलब्धि मानकर पनपती हुई आत्महीनता की भावना उसमें उस सहज आत्मविश्वास और प्रबलता का उन्मेष कभी नहीं कर पाती, जो ऊँचे आभिजात्य वर्ग के जीवन की विशिष्टता होती है और लीना इसी अभिजात्य वर्ग की है। (23)

स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में, प्रेमी-प्रेमिका हो या पति-पत्नी कालान्तर में सहमति और सामंजस्य की भावना न होने पर तलाक नहीं लेने पर भी मानसिक व शारीरिक रूप से अलगाव की स्थिति कई कहानियों में मिल जाती है। इनमें पति -पत्नी के मध्य अलगाव एवं विच्छेद के स्पष्ट कारण भी नजर नहीं आते। जो लिखा नहीं जाता(कमलेश्वर) कहानी में भी पत्नी इसी ऊहापोह की स्थिति में है जो किसी खास कारण को इस विच्छेद के लिए रेखांकित नहीं कर पाती। "कोई खास वजह तो नहीं यही समझ लो कि हम दोनों बहुत अच्छे हैं और एक-दूसरे को तकलीफ नहीं दे सकते।" (24) बाद में वह अव्यक्त भावना को इन शब्दों में परिभाषित करती है -" लेकिन सच यही है कि कोई भी किसी से सब कुछ नहीं कह सकता। हर जन के पास कुछ ऐसा है जो कभी कहा नहीं जाता, किसी से कहा नहीं जा सकता।" (25) सारी विडम्बनाओं के बावजूद समाज में स्त्रियाँ विच्छेद या पार्थक्य वाली स्थिति में ही रहने को विवश होती हैं, क्योंकि एक तो 'तलाक' का नाम आते ही समाज उसे एक हिकारत वाली दृष्टि से देखता है, क्योंकि अभी भी समस्त गलतियों का श्रेय नारी को ही दिया जाता है, दूसरे अगर नारी चाहे भी कोर्ट कचहरी के चक्कर लगाते-लगाते परेशान हो जाती है; ऐसे में कोई व्यक्ति उसका साथ भी देना नहीं चाहता। तलाक लेकर भी बच्चों के लिए जीने वाली नारी बच्चों से पृथक कर दी जाती है, अतः नारी दोनों ही स्थिति में बेहतर नहीं रह सकती। अतः अधिकतर स्त्रियाँ बिना कानूनन तलाक के अकेली बच्चों का दायित्व संभालकर परित्यक्ता के रूप में जीती हैं।

वस्तुतः निम्न अथवा मध्यवर्गीय स्त्री की आधारभूत समस्याओं में से एक यह है कि वह परिवार के भीतर ही जीवन की संपूर्ण सार्थकता पाना चाहती है, यदि पति या बच्चे उसे यह संतोष न दें तो उसके पास कोई ऐसी भीतरी क्षमता नहीं है जिससे वह स्वयं अपने निजी सुख की रचना कर सके। यह परिवार-निर्भरता उपेक्षिता पत्नियों के संकट को और भी दयनीय बना देती है। वर्तमान दौर में कमलकुमार ने अपनी कतिपय कहानियों में विवाहेत्तर सम्बन्ध और एकाकी जीवन व्यतीत कर लेने वाली नारी पात्रों की सृजना की है।

5.2. तनाव , ऊब और परिवेशगत विडम्बना

तनाव, ऊब और विडम्बना मानसिक ऊहापोह और परिवेशगत दबावों से उपजी मनःस्थिति होती है। मनुष्य के अचेतन मन में जो विचार आते हैं उन्हें सचेतन मन आसानी से स्वीकार नहीं करता क्योंकि अचेतन दबी हुई भावनाओं का कोष है। जब मनुष्य अपनी इच्छाओं को पूरा नहीं कर पाता तो अपने उद्देश्य की पूर्ति से बाधित होकर तनाव महसूस करता है। तनाव के कारण कई हो सकते हैं परन्तु परिणाम खिंचाव तथा कुंठा है। "काम सम्बन्धों की चाहत में स्त्री-पुरूष मनचाहा साथी न पाने पर तनावग्रस्त रहते हैं। वर्तमान साथी के साथ काम सम्बन्धों को ढोते समय भी खिंचाव का अनुभव करते हैं। अनचाहे काम सम्बन्धों का परिणाम कुंठा में परिवर्तित हो जाता है। परिणाम स्वरूप स्त्री-पुरूष कुंठित जीवन बिताने पर मजबूर हो जाते है।"(26)

'तनाव' और ऊब मध्यवर्गीय मानसिकता और अभिजात्य प्रवृत्ति के लोगों में एक सामान्य बात है। रचनाकार या संवेदनशील मानस बहुत जल्दी ही विपरीत परिस्थितियों में तनाव का शिकार हो जाता है। अभी हाल ही अर्चना वर्मा ने विवादस्पद रचनाकार राजेन्द्र यादव का साक्षात्कार लिया है और मन्नू भण्डारी तथा उनके बीच लेखकीय तनाव, स्त्री-पुरूष के आपसी तनाव तथा मनस्तापी प्रवृत्ति के तनाव की चर्चा की है। जिसमे राजेन्द्र यादव का जबाब रहा है -तनाव बुनियादी तौर से तो इस बात को लेकर ही था, अभिव्यक्त दूसरी तरह से भी होता हो चाहे, कि कोई भी महिला जो उसे लगता कि मेरे नजदीक है, जैसे संयुक्ता थी, शुरू में संयुक्ता को लेकर उसके मन में बहुत रोष था। लेकिन बाद में तो ये हो गया कि संयुक्ता सिर्फ उसी की दोस्त रह गई, मुझसे मिलती ही नहीं थी। वहीं आई कमरे में, उससे मिलकर चली गयी। इन लोगों ने कभी दार्जिलिंग का , कभी लद्दाख का प्रोग्राम बना लिया। वहीं संयुक्ता जो कभी असंतोष का, मुझसे प्रतिशोध का, मेरे ऊपर शक का कारण थी, वो धीरे-धीरे उसकी गहरी दोस्त हो गयी। इसमें संयुक्ता का भी कौशल होगा, दोस्ती करने का। हर महिला जो मेरे संपर्क में आती , उस पर शक करने की मानसिकता, मुझे लगता है, कुछ ज्यादा थी। नाम तो नहीं लेना चाहिए, एक और पारिवारिक मित्र थी। उसके मन में मेरे लिए जो आकर्षण था, उसको लेकर भी मन्नू बहुत परेशान रही। मुझे लगता है इसको एवॉयड किया जा सकता था। बाद में वह मन्नू की ही दोस्त रही। (27)

प्रसंगवश स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बीच योरोप में तलाक ज्यादा होते हैं और भारतवर्ष में कम। परन्तु तलाक या उसके दौरान पति-पत्नी की मानसिक ऊहापोह उसे सहज नहीं रहने देती और इसी परिस्थिति का शिकार बालक भी जीवन को सहज नहीं लेता वरन् स्वयं को भी एक दुर्घटना का शिकार मान लेता है। दूसरे तलाकशुदा नारी के समक्ष अपनी जिन्दगी को नये सिरे से जीने की संभावनायें भी कम हो जाती हैं। किन्तु

फिर भी नारी आज अपने पति नामधारी व्यक्ति के साथ जिस किसी भी हाल में सम्बन्धों की लाश ढोते रहने की विडम्बना से मुक्त हो चुकी है। स्थिति संक्रमण की है जहाँ कुछ नारियाँ इस मत को लेकर चलती है कि बिन घर का होने से जैसे तैसे स्वयं और बच्चों को एक सुरक्षा व सम्मान के नाम पर घर की चार दीवारी बनाये रखने में ही हित है। इसके लिए वे सब तरह का शोषण सह लेती हैं।

डॉ. माहेश्वर की 'बंद' कहानी का भी लगभग यही स्वर है कि तलाक लेने की स्थिति में परिवर्तन तो आ सकता है, किन्तु सम्बन्धों का मूलभूत ढांचा वही रहेगा। मृदुला गर्ग की कहानी 'अवकाश' में भी तलाक नारी के लिए एक मजबूरी है। दो बच्चों की माँ बन जाने के बाद वह (नायिका) पति महेश के साथ न रहकर प्रेमी समीर के साथ रहना चाहती है। नायिका सोचती है कि पति से तलाक भोगा जा सकता है अवकाश नहीं। आखिर पति को तलाक देना ही पड़ता है। मृणाल पांडे की 'शरण्य की ओर' , मणिका मोहिनी की 'तलाश' आदि कहानियों में भी इसी मुक्ति की छटपटाहट और तलाक की समस्या वर्णित है। (28)

पुरूष रचनाकारों ने अपनी ऊब और तनाव से मुक्ति का रास्ता विभिन्न नारियों के सहवास में तलाशा है तो स्त्री रचनाकार भी इस वैचारिक-काल्पनिक दौड़ में यथार्थ से आगे स्थिति बखानती है। पति-पत्नी के सम्बन्धों में व्याप्त 'ऊब' तथा 'संघर्ष' का चित्रण कहानीकारों ने विविध आयामों से किया है। कहीं तो ये नारियाँ पति के अति स्वच्छन्द व्यवहार से ऊब रहीं हैं, कहीं उसकी स्वार्थान्धता से, कहीं बँधे बँधाए अस्तित्वहीन जीवन से। सभी अपने-अपने दायरे में सिमट रहे हैं। हर आदमी ऊब से भर कर जल्दी-जल्दी जीवन खतम करना चाहता है। "नयी कथा चेतना नारी-पुरूष के आपसी सम्बन्धों और संकट को ही नहीं चित्रित करती, या उन्हें अलग-अलग स्थितियों में ही नही पकड़ती ..उन्हें एक दूसरे से अलग होने और रहने की स्थिति में जाँच लेना चाहती है और पाती है कि मूल्यों का यह चतुर्दिक रूंधाव वहाँ कितना संधातिक या निर्णायक है। (29)

महेन्द्र भल्ला ने आज के तीस वर्ष पहले 'एक पति के नोट्स' जैसी रचना लिखी है तो रवीन्द्र कालिया और ममता कालिया के स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बखान 'नौ साल छोटी पत्नी' में मिल जाते है। प्रसंगवश महेन्द्र भल्ला का 'पति' अगर साझी आदर्शो को मान ले तो दुख की स्थिति समाप्त हो जाए। पर इतना आसान नुस्खा भी वह स्वीकारने को तैयार नहीं।

सम्बन्धों की औपचारिकता के भीतर पड़ोसी को डिनर पर बुला तो लिया जाता है पर उसकी बीमारी सुनकर मात्र मौखिक सहानुभूति जताने के लिए भी किशोरी लाल के घर तक जाने का कोई उपक्रम नायक नहीं करता। नायक में समाज के प्रति एक विरक्तिजन्य उदासीनता है, सामाजिक माँगों से उत्पन्न होने वाले भय का अभाव है तथा सामाजिक संस्थाओं के प्रति उपेक्षा। (30)

कभी अज्ञेय ने 'रोज' कहानी में रोज-रोज होनेवाली घटनाओं और स्थितियों पर ऊब प्रकट की है जो उसके पुरूष अतिथि के लिए तनाव का कारण बन जाती है। यही शेखर जोशी की कहानी 'कोसी का घटवार' का अकेलापन गोसाई और लछमा के प्रेम-संबंधों की विफलता से पैदा हुआ है; 'सूखी नदी के किनारे' का यह अकेलापन नहीं, जिन्दगी भर साथ देने के लिए जो अकेलापन उसके द्वार पर धरना देकर बैठ गया है, वही।' सभी आत्मीय सम्बन्धों से कटा हुआ वह नितान्त अकेला है, अपनी उदासी और पीड़ा में डूबा हुआ। पन्द्रह वर्षो के बाद लछमा को देखकर गोसाई सोचता है : 'पंद्रह-सोलह साल किसी की जिन्दगी में अन्तर लाने के लिए कम नहीं होते। समय का यह अंतराल लछमा के चेहरे पर भी एक छाप छोड़ गया था, पर उसे लगा, उस छाप के नीचे वह आज भी पंद्रह वर्ष पहले की लछमा को देख रहा है।' उसकी जिन्दगी में व्याप्त अकेलेपन और लछमा के प्रति उसकी आसक्ति की जड़ें परिवार और परिवेश में नहीं ,प्रेम के उसके एहसास और ऐकान्तिक परिकल्पना में कहीं हैं। (31) परिवेश विडम्बना, ऊब और तनाव की स्थिति शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में भी है और मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला' कहानी में भी। पर रेणु की 'तीसरी कसम' कहानी जहाँ मन में एक टीस भर देती है वहाँ शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरितर' पाठक के मन को विक्षुब्ध कर देती है।

समकालीन कहानी में परिवेश एक प्रतिमान बनकर उभरा है, जिसके दबाव में पात्र-विशेष का मन प्रभावित होता है। परिवेश से कहानीकार की अन्तर्क्रिया के परिणाम स्वरूप उसका जो अनुभव संसार निर्मित होता है उसकी यथावत प्रस्तुति ही काफी नहीं होती। देखना यह भी चाहिए कि कहानी का भावबोध क्या और कैसा है ? वह कितना सक्रिय और विधेयात्मक है ? अनुभव से रूपायित कहानी की दृष्टि प्रतिगामी है या प्रगतिशील ? भावबोध का एक रूप तो वह है जिसमें जीवन-जगत की घटना और स्थिति के प्रति उदासीन और निष्क्रिय मनःस्थिति होती है और इससे निस्सहाय नकारात्मक भावबोध रूपायित होता है। उसमें अनुभव की ईमानदारी भी होती है लेकिन कहानी में इतना ही काफी नहीं है जब तक कि उसका अनुभव हमें अपने आस-पास की चौतरफा स्थितियों के प्रति और स्वयं उस अनुभव के प्रति भी हमें जागरूक और प्रबुद्ध नहीं बनाता। गौर से देखें तो हर अनुभव से आदमी कुछ न कुछ सीखता है, उससे उसके बोध में समृद्धि होती है। इसलिए वे कहानियाँ हमारे लिए महत्वपूर्ण हो जाती हैं जिनका भावबोध सामाजिक यथार्थ की अन्तर्निहित प्रक्रिया के सघन और रचनात्मक रूपान्तरण से निर्मित होता है। उसमे एक बौद्धिक प्रौढ़ता का मतलब एक ऐसा मानसिक और चेतनागत संतुलन है जो दोनों किस्म के अतिवादों का अतिक्रमण करता है। एक अतिवाद है भावुकता तो दूसरा अतिवाद है एक निरावेग ठंडापन। (32)

निर्मल वर्मा की कहानियों में परिवेश प्रतिमान विशेष के संदर्भ में उद्धृत होता है चाहे वह 'परिन्दे' कहानी हो या 'लवर्स'। यही हाल मोहन

राकेश की 'सुहागिनें' कहानी का है तथा कमलेश्वर की 'विवादास्पद', 'मांस का दरिया' का सशक्त वर्णन है।

दूधनाथ सिंह अकहानी आन्दोलन की उपज रहे हैं। इसीलिए उनकी कहानियों में यौन प्रतीकों और बिम्बपरक परिवेश का चित्रण ज्यादा है। दूधनाथ सिंह की कहानी 'रीछ' जिसकी बहुतायत से चर्चा हुई है, जिसे मानवीय सम्बन्धों के आन्तरिक केऔस' की अभिव्यक्ति वैगरह कहा गया है, मूलतः क्या केवल सेक्स -ग्रंथि की कथा नहीं है ? शरीर के स्तर पर उतरकर सब कुछ भूलने की इच्छा, उस ग्रन्थि से उपजा और विभाजित व्यक्तित्व जिसमें बौद्धिक कहलाए जाने की एक कोशिश भी शामिल है। सेक्स से मुझे कोई 'एलर्जी' नहीं है न मर्यादावादियों का पवित्रतावादी तर्क देकर मैं अपनी बात कहना चाहता ! 'सेक्स एक शारीरिक आवश्यकता है, मगर मानवीय सम्बन्ध वहाँ से शुरू होते हैं या वहीं खत्म ? वह सम्बन्धों की इयत्ता तो नहीं। फिर 'रीछ' में सेक्स का यह भय ,किसी भी मानवीय सम्बन्धों की संक्रान्ति से नहीं जुड़ता, इसलिए भी कि संक्रान्ति और उद्वेलन का एक निहायत वैयक्तिक 'पर्सनल' लोक वहाँ निर्मित कर लिया गया है। (33)

वास्तव में दूधनाथ सिंह की कहानी 'रीछ'में यौन प्रतीकों का खुला परिवेशनुमा चित्रण है वहाँ कमलेश्वर की कहानी 'राजा निबंसिया' में यह कभी सांकेतिक है और कभी स्थूल। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की अन्तर्कथा पुरातन कथा-शैली में राजा निरबंसिया और रानी लक्ष्मी के जीवन की है तो नयी कहानी के अनुरूप स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बदलाव की समाजशास्त्रीय चिन्ता भी उक्त कहानी की विशेषता है। (34) जगपति, चन्दा और कम्पाउण्डर बचन सिंह के त्रिकोण में आहत चन्दा ही होती है। जगपति आर्थिक दबावों के कारण चन्दा व बचन सिंह के संबंधों से अनजान बना रहता है। वैसे कहानी में पौरूष भाव का अहम् भी दिखाई देता है। सुबह चन्दा के गर्भवती होने की खबर फैलने से पहले जगपति टाल पर चला गया था। पर,सुनी उसने भी आज ही थी। दिन भर वह तख्त पर कोने की ओर मुँह किए पड़ा रहा। न ठेके की लकड़ियाँ चिरवाई न बिक्री की ओर ध्यान दिया, न दोपहर का खाना खाने ही घर गया ? सब कुछ जैसे थम गया था उसके लिए और रात का अंधियारा जब घिर आया तो वह एक हिंसक पशु की भांति उठा था और ललकारने की मुद्रा में आ गया था। अब उसका मार खाया पुरूषत्व जाग उठा था। यहाँ कथाकर ने मानवीय आवेग-संवेग का बहुत ही यथार्थ चित्रण किया है। (35) जगपति कहानी के अन्त में परिवेशगत विडम्बनाओं का शिकार बनता दिखाया गया है।

कहना न होगा राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर और मोहन राकेश की कहानियों में मनोविश्लेषणात्मक विवेचन के लिए एक पृथक शोध प्रबंध की अपेक्षा की जा सकती है। प्रसंगवश मनोविश्लेषणवादियों ने मानव मन की आन्तरिक वृत्तियों एवं भावनाओं का सूक्ष्मतम विश्लेक्षण प्रस्तुत किया है। फ्रायड के अनुसार, मनुष्य के समस्त जीवन के व्यापार के केन्द्र में कामवृत्ति

है। मानसिक व्यापार अचेतन अर्धचेतन और चेतन स्तरों पर चलते हैं। 'व्यक्ति मन के तीन प्रमुख सोपान हैं। इदम् अहुम और नैतिक अहम् ?' (36) सुधी पाठक जानते ही हैं कि दमित यौन प्रवृत्ति काम शक्ति (लिबिडो) के निर्बाध प्रकटीकरण पर समाज ने अनेक प्रतिबन्ध लगा रखे हैं। इसीलिए वह दमित हो जाती है। आन्तरिक इच्छाओं का दमन करने से बाह्य रूप से भले ही यह प्रतीत हो कि उनको दबा दिया गया है, किन्तु दमन करने से वे इच्छाएँ अज्ञात मन में जाकर और सजग हो जाती है। परिणाम यह होता है कि व्यक्ति परपीड़न द्वारा सुखानुभूति प्राप्त करने के लिए बलात्कार करता है और आत्मपीड़न होने पर वह बलात्कार करता है। यौन आलम्बन द्वारा पीड़ा प्राप्त कर यौन सुख प्राप्त करने की ओर प्रेरित होता है। मैक्डूगल ने दूसरों को पीड़ा पहुंचाकर या दण्ड देकर काम उत्तेजना प्राप्त करने को परपीड़न कहा है। (37)जिसके संदर्भ में दीप्ति खण्डेलवाल की 'हव्वा' कहानी और मृदुला गर्ग की 'उर्फ सैम' कहानी का हवाला दिया जा सकता है। वर्तमान दौर के आधुनिक और महानगरीय जीवन में प्रेम बनाम दोस्ती में वासना जुड़ गई। प्रेम वासना का पर्याय हो गया। प्रेम छिछला हो उठा। भावनात्मक स्तर के प्रश्न झूठे पड़ने लगे। विवाहित स्त्री का उच्छृंखल होना, घर की शांति के लिए वांछित नहीं था। इन झगड़ों से पति-पत्नी बिस्तर सुख से वंचित हो गये। तब काम-सुख की तलाश बाहर ही करनी थी। पुरूष स्त्री को छूट देने के पक्ष में नहीं था। परन्तु संवेग व लगाव के भाव में शैथिल्य आ गया था। दाम्पत्य सम्बन्ध प्रायः ढोये जाने लगे। प्रेम सामाजिक सुविधा तथा शारीरिक आवश्यकता बन गया। प्रेम में भौतिकता आने से समयानुसार परिवर्तन होने लगा। (38)

उपर्युक्त कथन के प्रसंग में ममता कालिया की 'जिन्दगी सात घण्टे बाद की' कहानी का हवाला देना ठीक होगा। जिसमें कामकाजी महिला के जीवन की परिवेश विडम्बना और सैक्स की चाहत रेखांकित हुयी है। घनश्याम भुतड़ा ने भी स्वीकारा है कि ऊँचे पद पर स्थित नारियों की मानसिकता को उजागर करती है। ममता कालिया की श्रेष्ठ कहानी 'जिन्दगी सात घंटे बाद की।' प्रसंग है कि महानगरों में नारियाँ शिक्षा समाप्त करके इसलिए नौकरी पा लेना चाहती हैं कि उन्हें कोई उपयुक्त जीवन साथी प्राप्त होने तक खाली समय बिताना है। वे पहले तो सेक्स के स्थान पर नौकरी को अधिक महत्व देती हैं तथा अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करना चाहती हैं। नौकरी करते समय बाद की उम्र के अकेलेपन को वे नहीं चाहतीं, किन्तु जल्द ही युवावस्था की उत्साहपूर्ण इच्छाएँ मरने लगती है। अकेलेपन की नियति के साथ बच जाती है केवल घुटन, कुण्ठा और तनाव। (39)

प्रोग्राम ऐक्जिक्यूटिव नारी आलिया सेन, पढ़ाई समाप्त होने पर समय बिताने के लिए नौकरी करती है। उम्र के कुछ महत्वपूर्ण वर्ष बीतने के पश्चात, उसके जीवन में डिप्रेशन-सा आ जाता है। XXX एम.ए करके यूनिवर्सिटी से निकलने पर 'तुम शादी करोगी ?' इस प्रश्न का उत्तर

आलिया सेन हँसकर देती -"जल्दी क्या है ?"...किसी दिन मजाक में यह हाथ बढ़ा दिया जाए तो अँगूठी लेकर ही लौटेगा।" (40)

सेक्स को महत्व न देनेवाली आत्मीयता के लिए पुरूष महज दफ्तर का एक कर्मचारी रह गया है, किन्तु आफिस के सात घण्टों के बाद की उसकी जिन्दगी अकेलेपन और ऊब से भर जाती है -"सुबह दस बजे का उत्साह, शाम सात बजे का डिप्रेशन.....अपनी ड्राअर लॉक करते हुए उसे लगता है पाँच भी बज गये.... अब से लेकर कल दस बजे तक का समय....देवनगर का उसका फ्लैट और कुछ नहीं।" (41) वर्तमान दौर में कोई भी स्त्री केवल कामकाजी पात्र बनकर जी नहीं सकती। अकेलेपन को दूर करने के लिए उसे उपयुक्त साथी चाहिए।

यह अलग बात है कि राजेन्द्र यादव की 'टूटना' कहानी, मोहन राकेश की 'सुहागिनें' , निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' और ममता कालिया की 'जिन्दगी सात घण्टे बाद की' कहानियाँ (आजकल) केवल स्थिति विशेष के प्रति एक गहरी उदासी और एक करूणा उत्पन्न करके रह जाती हैं। उसमें क्रियात्मकता नहीं रहती। आज की कहानियों में परिवेश बोध की अनुपातता की विकसित चेतना बहुत महत्व की वस्तु है।' (42)

नासिरा शर्मा ने निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार की अविवाहिता लड़कियों की परिवेशगत बेबसी का कलात्मक जिक्र किया है। 'ताबूत' नामक कहानी गरीब मुसलमान घर की तीन लड़कियों की कहानी है जो बीड़ी बनाने का काम करती हैं। ऐसा नहीं है कि उनमे शादी की उमंग नहीं है। पर घर उन्हीं के संघर्ष से चल रहा था। लेखिका लिखती है -"तीनों बहनें मिट्टी की माधो थी, अब इस शक्ल और खाली दामनवाली को कौन ब्याहने जाता। अपनी बदसूरती का एहसास तीनों को अपनी गरीबी और बदहाली से कहीं अधिक था। गरीब घर की लड़कियों के लिए बदसूरती एक अभिशाप बन के आता है। जो उनके सम्पूर्ण जीवन को नरक बना जाता है। संघर्ष करते-करते अंत में मृत्यु को ही आलिंगन करना पड़ता है।'(43)

अकेलापन यथार्थ बोध का एक आवरण है। और अलगाव बोध प्रवृतिगत शून्य भाव। कभी-कभी आर्थिक विवशता के कारण विवाह समझौता होता है । रूग्ण मानसिकता वाले पात्र के साथ वय प्राप्त व्यक्ति से विवाह संबंध का औपचारिक समझौता। प्रसंगवश यथार्थ के साथ दुःस्वप्न का यह मेल देवेन्द्र की कहानी 'एक खाली दिन' में भी हमें दिखाई देता है जिसमें बीमार पति की मृत्यु के बाद उसकी युवा पत्नी राहत महसूस करती है। पूरा संदर्भ साफ करने के लिए यह उल्लेख किया जाना जरूरी है कि यह युवती शादी से पहले शान्तनु नाम के युवक को प्यार करती थी। उससे शादी भी करना चाहती थी। उससे गर्भवती भी थी। लेकिन यह बात जब उसके घरवालों -भाई इत्यादि को पता चली तो उसने उसे इस कदर कुचला कि उसकी सारी हिम्मत ही पस्त कर दी। उसे न केवल वह शहर छोड़ना पड़ा बल्कि किसी और से शादी करना भी स्वीकार करना पड़ा। जिस आदमी के साथ उसकी शादी हुई, वह एक बीमार और मरणासन्न व्यक्ति था। वह

व्यक्ति शादी के बाद पाँच साल जीवित रहा। सत्तो इसके जीते-जी पूरी तरह उसके प्रति समर्पित रही। उसने न केवल उसकी भरपूर सेवा-सुश्रूषा की बल्कि यौनिक स्तर पर भी उसकी बनकर रही। यह जानते हुए भी कि वह व्यक्ति मर जानेवाला है , वह उसके साथ वफादारी निभाती रही। लेकिन जैसे ही उसकी मौत हुई और वह उसकी लाश को शमशान पहुँचाकर लौटी उसे शोक और मलाल के स्थान पर राहत महसूस होने लगती है। (44)

विसंगतिबोध समकालीन जन जीवन में एक यथार्थ परक बोध है। अपनी तृष्णाओं, इच्छाओं की हत्या हम रोज बर्दाश्त करते-करते अपने भीतर ही अकेले होते चले जाते हैं। अतः अकेलापन समकालीन भावबोध है, मगर रचना की सार्थकता सिर्फ समकालीनता नहीं, अनुभव-बोध की प्रामाणिकता भी है। मोहन राकेश की कहानियों में अकेलापन एक व्यापक सामाजिक सन्दर्भ में स्थित है ; इसीलिए वह प्रामाणिक लगता है। वह एक विशेष किस्म और काट के कृत्रिम दार्शनिक संत्रास से उपजे, व्यक्तिवादी अकेलेपन से भी अलहदा है। वह भारतीय परिवेश में एक सामाजिक व्यक्ति का अकेलापन है। सम्बन्धों का ठण्डापन, उनकी जड़ औपचारिकता से मुक्ति की छटपटाहट, भावात्मक स्तर पर उनमें आई एक- रसता, ऊब, उसकी निष्कृति की आकांक्षा लिए अपने आसपास के वातावरण से अंतहीन टकराहट, एक निश्चल धुंध-भरा ठहराव लकड़ी के चौखटों में जड़ी सलाखों की मानिंद ठण्डे और निस्पंद, घुटन-भरे पारिवारिक रिश्ते, उनसे उपजे अँधेरे में अपने को हीन पहचान पाने की विवशता और जुड़े होते हुए भी कटे होने के एहसास की कहानियाँ हैं : 'ग्लास टैंक', 'जंगला' और 'सुहागिने' आदि।" (45)

लेकिन निर्मल वर्मा की कहानियों में अभिव्यक्त नारी पात्रों की विवशता अकेलापन और विसंगतिबोध, ...बौद्धिक स्तर का ज्यादा है। भाव व संवेदना के धरातल पर कम। राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर के पात्र मध्यवर्गीय जीवन शैली के विसंगतिबोध को दर्शाते हैं जब कि मन्नू भण्डारी , शिवमूर्ति और मैत्रेयी पुष्पा के नारी पात्र संवेदना, अनुभूति के स्तर पर अकेलेपन और विसंगतिबोध के शिकार हैं।

5.3 विसंगति बोध और नारी जीवन : प्रेमचन्द ने अपनी कहानी कला के अंतिम चरण में आकर प्रत्यक्ष अनुभूत किया था कि 'वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ, स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक रहती है। बल्कि अनुभूतियाँ ही (अब) रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं। मगर यह समझना भूल होगी कि कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है। यथार्थ जीवन का चित्र मनुष्य स्वयं हो सकता है, परंतु कहानी के पात्रों के सुख-दुख से हम जितना प्रभावित होते हैं, उतना यथार्थ जीवन से नहीं होते, जब तक यह निजत्व की परिधि में न आ जाए। अगर हम यथार्थ को हूबहू खींच कर रख दें तो उसमे कला कहाँ है। कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है। कला दीखती तो

यथार्थ है, पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम होती है।' (46)

लेकिन प्रेमचन्द के युग से वर्तमान दौर का युगीन परिवेश लगभग सत्तर-पिचहत्तर वर्षों के बाद का है अतः वर्तमान दौर में नारी जीवन की आपाधापी संघर्ष और मूल्यबोध में गुणात्मक अंतर आ गया है। वह निरीह समर्पिता गुणों की खान या देवी मात्र नहीं है। वह अब सुशिक्षित, कामकाजी औरत की भूमिका अदा करने लगी है।

वास्तव में स्वातन्त्रोत्तर दौर की कहानी में नारी संघर्ष को व्यक्त करने वाले चरित्र 'व्यक्तिगत न रहकर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा आदि के फलस्वरूप नारी की स्थिति निश्चय ही बेहतर हुई है। नौकरीपेशा नारियों का अलग वर्ग निर्मित हुआ है लेकिन कुल मिलाकर नारी आज भी पुरूष प्रधान समाज की विसंगतियों और अवमूल्यों से आच्छादित है। कहानीकारों ने नारी की नियति के तीन सन्दर्भो का बयान विशेष रूप से किया है। कुछ कहानियाँ अनपढ़ श्रमजीवी महिलाओं की संघर्ष क्षमता उभारती हैं, जबकि कुछ में स्कूलों और कार्यालयों में कार्यरत महिलाओं की मुश्किलें केन्द्र में हैं। कुछ थोड़ी-सी कहानियाँ राजनीति, समाज सेवा आदि क्षेत्रों में सक्रिय महिलाओं के मार्ग की बाधाओं को सामने लाती है। इनमे अनपढ़ ,श्रमजीवी महिलाओं पर आधारित कहानियाँ अधिक तीक्ष्ण और मार्मिक हैं।

'उपहार'(शिवप्रसाद सिंह, 'बउरहिया'(विवेकी राय), 'एक औरत एक जिन्दगी'(रामदरश मिश्र), 'रानी माँ का चबूतरा' (मन्नू भण्डारी), आदि कहानियों में उन स्थितियों का उल्लेख है, जिनके चलते मेहनतकश औरतों को तिल-तिल कर गलना होता है। 'एक औरत : एक जिन्दगी' में भवानी की लड़ाई अकेली औरत की लड़ाई होते हुए भी विश्वसनीय है और हमारी जनतान्त्रिक व्यवस्था के सामने प्रश्नचिन्ह बनकर खड़ी है। 'रानी माँ का चबूतरा' में भी संघर्ष की मुद्रा कुछ इसी प्रकार की है। 'उपहार' की गुलाबी में शोषणविरोधी चेतना को व्यक्त करने का साहस भी है। वह ठाकुर से स्पष्ट कह देती है, "जाके अपनी घरवाली की खाल खींचो ठाकुर,वहीं दरबे में बन्द मुर्गी की तरह ओंठ सिये तुम्हारा जुल्म सहेगी, काहे कि तुम उसे चारा देते हो।" (47) अतः वर्तमान दौर की नारी भले ही वह श्रमिक-किसान-मजदूर वर्ग की हो या सुशिक्षित ,कामकाजी नारी अपने अधिकारों एवं व्यक्तित्व के प्रति सजग प्रतीत होती है।

स्त्री-पुरूष संबंधों की अन्तर्जटिलताएँ भी बढ़ी हैं। अब प्रेम वासना,देहाकाँक्षा और तत्सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति तात्कालिकता को महत्व देती है सकारात्मक मूल्यों को नहीं। आधुनिक युग में समाज की बदलती हुई स्थितियों में जीवन की व्यावहारिक पक्ष ही नहीं, अस्तित्व की मूलभूत समस्याएँ भी परिवर्तित हुई हैं। परिस्थितियाँ और पृथक-पृथक अनुभव क्षणों के अनुक्रम-जीवन में अनिश्चय और अनास्था का योग, व्यक्तिमन की प्रतिक्रियाओं का रूप बदल रहा है। अतः परिवर्तित और

परिवर्तनशील यथार्थ सत्ता और वस्तु सत्य के विविध रूप उद्घाटित हुए हैं और व्यक्ति (रचनाकार) से उसके नए सम्बन्ध, उस यथार्थ और वस्तु सत्य से संरचनात्मक विभिन्न अर्थ-राग ही नए सन्दर्भ हैं। (48)

विसंगतिबोध केवल निम्न वर्ग या मध्य वर्ग की नारियों का मसला नहीं है, यह अभिजात्य वर्ग की महिलाओं की त्रासद मनःस्थिति का पर्याय भी है। विष्णु प्रभाकर ने कभी 'ठेका' कहानी में एक ठेकेदार द्वारा पत्नी की देह का इस्तेमाल कामाडिटि-वस्तु के रूप में दर्शाया है, जो आज अभिजात्य वर्ग के शगल में बदल चुका है। जहाँ क्लब-संस्कृति में विभिन्न कारों की चाबियाँ रख दी जाती हैं और चयन कर्ता तत्सम्बन्धी कार की महिला के साथ रोमांच और रोमान्स के क्षण बाँट लेता है। नैतिकता की दुहाई देनेवाले इसे विसंगतिबोध मान सकते हैं, पर संगति बोधवाले इसे सहज क्रिया मानेंगे।

पाश्चात्य देशों में वेश्यावृत्ति एक सामान्य फिनोमिना विचार है। पर भारत देश में इसे शहर के गटर की संज्ञा दी जाती है - पर गंगा में कितने ही गटर की नालियाँ बहती रहती हैं और गंगा के शुद्धीकरण की तरह नारी जीवन के लांछन की परवाह कौन करता है ? समकालीन हिन्दी कहानी के विकास में वेश्या वर्ग अधिक उपेक्षित रहा है। प्राचीन भारतीय समाज और साहित्य में वेश्यायें आदरणीय थी; परन्तु आज इनकी ओर देखने की दृष्टि बदल गयी है। जुगनू के माध्यम से कमलेश्वर ने वेश्या का वह रूप सामने रखा है, जो अपने शरीर की आहूती देकर बदले में एक पहाड़-सी जिन्दगी, एक अंधकारमय भविष्य तथा तपेदिक जैसी बीमारी को लेकर जीवित रही है। स्वयं को किसी हवाले करके जीने की ललक, जो हर नारी में होती है, क्या वह वेश्या कहलाने वाली स्त्री में स्पन्दित नहीं होगी।

कहना न होगा कि वेश्या वर्ग समस्या भी स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के संदर्भ में समाज की एक अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या है। वेश्या जीवन पर कमलेश्वर की दो प्रसिद्ध कहानियाँ 'मांस का दरिया' और 'रातें' है। 'मांस का दरिया' तपेदिक से ग्रस्त वेश्या जुगनू की विवशताओं और व्यथा का जीवन्त चित्रण है। यह कहानी उन स्थितियों पर सोचने के लिए विवश करती है, जो जुगनू की इस दशा के लिए उत्तरदायी है। राज कमल चौधरी (मछली जाल एक काली, दो काली,तीन काली) काल-गर्ल के विषय को लेकर गिरीश आस्थाना की 'कमानियां', सुरेश सेठ 'धंधा', कमलेश्वर 'इतने अच्छे दिन', अकुलेश परिहार 'एक बदचलन लडकी' , आदि आधुनिक कहानियों में उन सामाजिक स्थितियों पर विचार किया गया है, जिन्होंने नारी को वेश्या- जीवन, काल-गर्ल का पेशा करने के लिए बाध्य किया है।' (49)

सिमोन द बुआ ने कभी कहा था कि - कोई भी स्त्री पैदा होते समय स्त्री नहीं होती वह सामाजिक बन्धनों और परिवेश में स्त्री बना दी जाती है। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' कहानी में चन्दा अपने चरित्र में पहले स्थिर मना स्त्री होती है पर जगपति की बीमारी व इलाज कार्य में आर्थिक विवशता और कम्पाउण्डर बचन सिंह की चालों से वह क्षणेःक्षणे

उसकी अंक शायिनी बनन को मजबूर होती है। जो उसके जीवन में विसंगतिबोध का बायस बन जाता है। प्रसंगवश जब बचनसिंह मरीजों को बताता है कि उसका तबादला मैनपुरी के सदर अस्पताल में हो गया तो जगपती पर उसकी दोहरी प्रतिक्रिया होती है। एक ओर तो वह सोचता है, यह अच्छा ही हुआ आए दिन रोग घेरे रहते हैं, बचन सिंह उसके शहर अस्पताल में पहुँच रहा है, तो कुछ मदद मिलती ही रहेगी। पर, दूसरे ही क्षण उसे चन्दा के अस्तित्व का ध्यान हो आता है, दिल अकथ भारीपन से भर जाता है। उसे इस सूचना में कुछ ऐसे नुकीले काँटे दिखाई देने लगे, जो उसके शरीर में किसी भी समय चुभ सकते थे, जरा-सा बेखबर होने पर बींध सकते थे। XXX

जगपति को प्रतीत होता है कि वह जैसे हर कहीं से रिक्त है अपनी सार्थकता प्राप्त करने के लिए उसके पास कुछ भी तो नहीं है, और तो और काम तक नहीं, काम ही होता तो कम से कम उसमें अपने आपको खपाकर वह स्वयं को इस व्यर्थताबोध से तो बचा पाता। लगता है, जैसे एक गहरी अतृप्ति अंदर कहीं समा गई है और वह उसे समझ नहीं पा रहा है कि वह अतृप्ति है क्या और क्यों है ? और उसे कैसे भरा जा सकता है ?" शरीर का पिंजरा है जो कुछ मांगता है कुछ, और वह सोचता, यह कुछ क्या है ? सुख ? शायद हाँ, शायद नहीं। वह तो दुख में भी जी सकने का आदी है, अभावों में जीवित रह सकने वाला आश्चर्यजनक कीड़ा। तो फिर वासना ? शायद हाँ, शायद नहीं, चन्दा का शरीर लेकर उसने उस क्षणिकता को भी देखा है। तो फिर धन-शायद हाँ, शायद नहीं। शायद हाँ,शायद नहीं का यह भाव यह आंतरिक द्वंद्व आज के युग का सबसे बड़ा द्वंद्व है। (50) और विसंगतिबोध का कारक भी।

'राजा निरबंसिया' कहानी के कथ्य के अनुसार बचन सिंह के आभार से ग्रस्त होकर जगपति को अब उसे अपने जीवन में घर और बाहर दोनों जगह स्वीकारना पड़ा है, भले ही यह स्वीकार पहले- पहल बोझिल ही लगा हो। अब वह उससे हर समय बचना ही चाहता है। वह टाल पर ही होता और बचन सिंह शाम को वहीं पहुँच जाता, एक आध बिक्री की बातें होती और तब दोनों साथ-साथ घर की ओर चल देते। घर पहुँच कर बचन सिंह जरूर कुछ देर तक रूकता,इधर-उधर की बातें करता। कभी मौका पड़ जाता तो जगपति और बचनसिंह की थाली भी साथ लग जाती। चन्दा सामने बैठकर दोनों को खिलाती ? और जगपति निरीह मन और आँखों से चन्दा के खिलाने के भाव-चाव, रूचि-अन्दाज आदि का तुलानात्मक अध्ययन करने लगता। चन्दा-जगपति-बचन सिंह का यह त्रिकोण सम्बन्ध चलता रहता है और चन्दा बचन सिंह की बढ़ती हुई तृप्ति पर जगपती रिसता रहता है और अपने आपको निरीह और व्यर्थ अनुभव करता है और इन सबकी अन्विति कहीं होती है जो आमतौर से ऐसे अतिरिक्त सम्बन्धों की होती है या जो राजा निरबंसिया की हुई थी।(51)

कहानी लोककथा के शिल्प और आधुनिक जीवन की विसंगति बोध के दोहरे स्तर पर चलती रहती है। [52] जगपती अपनी अंतर्व्यथा की घनीभूत अनुभूति का ज्ञान तो बाद में कर पाता है, आसपास का सामाजिक परिवेश उसे उसके प्रति पहले सचेत कर देता है। 'राजा निबंसिया' कहानी में कमलेश्वर ने बताया है कि जगपती के चन्दा के साथ रहते हुए इन दिनों सहवास के क्षण इतने कम हो गए थे पर जगपती को यह प्रतीति भी नहीं हो पाती कि चन्दा गर्भवती है। इसके पहले उस दिन टोले-मुहल्ले के हर आंगन में बरसात के मेह की तरह फैल गई कि चन्दा के बाल-बच्चा होने वाला है। नुक्कड़ पर जमुना सुनार की कोठरी में फिंकली सुरही रूक गई। मुंशीजी ने अपना मीजान लगाना छोड़ विस्फटित नेत्रों से ताककर खबर सुनी। बंसी किरानेवाले ने कुए में से आधी गई रस्सी खींच,डोल मन पर पटक कर सुना इत्यादि-इत्यादि। जगपती की बेबा चाची ने औरतों के जमघट में बड़े विश्वास पर भेद भरे स्वर में सुनाया : आज छः साल हो गये शादी को न बाल न बच्चा न जाने किसका पाप है उसके पेट में न जाने कहाँ से कुलच्छिनी इस मुहल्ले में आ गई। [53]

सुधी पाठक को स्मरण होगा कि लोक लाज, लांछन न सहने की स्थिति में चन्दा दूसरे दिन घर छोड़ अपने गाँव चली जाती है और जगपती फिर अकेला, टूटा हुआ वीरान और निरीह बना रह जाता है। उस विषाक्त परिवेश में हुए वह हिकारत भरी नजरें सहता, पर वहीं पड़ा रहता। यहाँ कथाकार शायद सामाजिक यथार्थ की ओर संकेत करते हैं। पारंपारिक मूल्य आदर्शो पर एक बड़ा प्रश्न चिन्ह लगा दिया गया है, और कुछ मूलभूत मूल्य आदर्श जैसे अब एक प्रमाण बिन्दु पर आकर खड़े हो गये हैं; जहाँ आज की नई पीढ़ी ने इनकी व्यावहारिक उपादेयता पर एक गहरा प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

कमलेश्वर की कहानी में नारी जीवन के विसंगतिबोध और मूल्यों से प्रयाण की अंतर्ध्वनि भी सुनाई देती है। यह कथाकार की आधुनिक संचेतना और समय से पूर्व परिवर्तन की आभास पाने की अंतर्दृष्टि की विशिष्टता की परिचायक है। इस संदर्भ में दूसरी अनुभूति जगपती को तब प्राप्त होती, जब पेड़ काटने वाले आदमी ठूँठ पेड़ काटने के बाद गाड़ी की लदनी पूरी करने के ख्याल से हरा-भरा पेड़ भी काटने को उतारू हो जाते हैं। जगपती की कोमल संवेदना इससे कचोट उठती है और वह रोककर कहता है : 'अरे यह तो हरा है अभी इसे छोड़ दो। शकूब प्रतिउत्तर में कहता है : 'हरा होने से क्या ,उखट तो गया है। न फूल का न फल का। अब कौन इसमें फल-फूल आएँगे , चार दिन में पत्ती झुर्रा जाएंगी।' जगपती यह सुनकर अपने आपको जैसे परिस्थिति के प्रति समर्पित कर देता है। 'जैसा ठीक समझो तुम।' लड़ने, विरोध करने की अब जैसे न उसमें शक्ति रही है, न स्फूर्ति , न मन। वह हर मंजिल पर टूटा हुआ, परास्त हुआ पुरूष है। कथा त्रासदी की ओर जाने लगती है, जो शायद उसकी नियति है और उसका प्रतीकात्मक आभास यहीं होने लगता है। [54]

विसंगतीबोध के कारण जगपती में अकेलेपन में टूटने की यह प्रक्रिया और भी तीव्र गति से होने लगती है। आसपास परिवेश में जब और लोग होते हैं, संगी-साथी होते हैं तब अपने अंदर की रिक्तता लोग उनसे टकराकर भर लेते हैं, पर जब आसपास कोई नहीं होता तो वे अपने आपसे ही 'कन्फ्रन्ट' होते रहते हैं, टकराते रहते हैं। अपनी रिक्तता भरने की किसी अवचेतन क्रिया के अंतर्गत, अपने आपसे टकरा टकरा कर टूटते जाते हैं। सामाजिक परिवेश के लोग, अपनी-अपनी मानसिक पृष्ठभूमि और दृष्टि के अनुसार तरह तरह के सलाह-परामर्श, आलोचना-प्रत्यालोचना के रामबाण प्रयोग अकेले, त्रस्त व्यक्तिपर करने लगते हैं।

टाल के पास के बाबू मुंशीजी जगपती की मानसिकता को भली-भाँति समझते हैं टाल पर जगपती को अकेला देख पगडंड़ी से गुजरते हुए मुंशीजी उसके पास आकर सूचनात्मक तौर पर बताने लगते हैं : 'अभी उस दिन वसूली में तुम्हारी ससुराल के नजदीक एक गाँव में जाना हुआ तो पता लगा कि पन्द्रह-बीस दिन हुए , चन्दा के लड़का हुआ है।' और फिर जैसे मुहल्ले में सुनी सुनाई बातों पर परदा डालते हुए बोंले - भगवान के राज में देर है अंधेर नहीं, जगपती भैय्या ? जगपती उनकी बात का ठीक अंदाज और निशाना नहीं समझ पाता, पर सब कुछ सहन करता हुआ कहता है - 'देर और अंधेर दोनों हैं।' इसे सुन तो लिया होगा, तुमने की भूमिका के साथ मुंशीजी कहते हैं -'चन्दा दूसरे के घर बैठी रही कोई मधुसूदन है वहीं का। पर बच्चा दीवार बन गया है सुना है, बच्चा रहते भी वह चन्दा को बैठाने को तैयार है। (55) यहाँ कहानी का तनाव और उत्कर्ष दिखाई देता है।

जगपती के अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में मुंशी जी अपना आखिरी वार करना भी नहीं छोड़ते : 'अदालत से बच्चा तुम्हें मिल सकता है। अब काहे की शरम-लिहाज।' अपना कहकर किस मुँह से मांगू, बाबा ? हर तरफ तो कर्ज से दबा हूँ, तन से, मन से, पैसे से, इज्जत से, किसके बल पर दुनिया संजोने की कोशिश करूँ ? कहते-कहते वह अपने में खो गया। मुंशीजी उसे गली तक लाकर छोड़ देते हैं तो जगपती का स्वागत करने को और लोग तैयार हैं। चाची, भौजाईयाँ, जिनकी चर्चा का केन्द्र विषय अब चन्दा के सिवा और कुछ नहीं रह गया है। गली के अंधेरे में भी जगपती का आभास पाकर उनमें से कोई सुनाकर कहता है - आ गये, सत्यानासी, कुलबोरन। और जगपती को सहसा याद हो आता है, जब वह अस्पताल से चन्दा के साथ लौटा था, तब भी विधवा चाची का वही जहर बुझा तीर उसे भेद गया था -आ गये राजा निरबंसिया अस्पताल से।' और आज 'सत्यानासी। कुलबोरन ।'

निष्कर्षतः भारतीय संस्कारों की पारंपरिक सोच जगपती को प्रभावित करती है। वह सोचता है औलाद ही तो वह स्नेह की धुरी है, जो आदमी औरत के पहियों को साधकर तन के दलदल से पार ले जाती है। तो क्या चन्दा औरत नहीं रही। वह जरूर औरत थी, पर स्वयं मैंने उसे नरक में

ड़ाल दिया। वह बच्चा मेरा कोई नहीं, पर चन्दा तो मेरी है। एक बार उसे ले आता फिर यहाँ रात के मोहक अंधेरे में उसके फूल से अधरों को देखता उसकी अछूती महक को समेट लेता इतनी गहरी आत्मपीड़ा, आत्मकरूणा, और स्वयं में महसूस होता हुआ अपराधबोध और अपने आपके प्रति उपजती हुई विरक्ति आखिर अकेले आदमी को कहाँ ले जा सकते हैं ? जगपती अपने आपको हारा-थका महसूस करता हुआ आत्महंता करने को उद्वेलित हो उठा है।

वर्तमान दौर में प्यार और शादी के बाद जीवन व्यतीत करना दो अलग धुरियाँ बन गयीं हैं। शिक्षित संवेदनशील नारी को समानधर्मा, सुरूचिपूर्ण जीवन साथी मिल जाये तो जीवन स्वर्ग है अन्यथा जीवन नर्क हो जाता है। यही स्थिति पुरूष-वर्ग की है। आधुनिकता बोध और महानगरीय जीवन की आपाधापी में आज नारी पुरूष की अनुगामिनी बनने की अपेक्षा सहभागिनी बनना उचित समझती है। वह प्रगति के हर क्षेत्र में पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। माँ-बाप या समाज द्वारा दिखाये गए रास्ते पर चलना उसे रास नहीं आता। नारी-मुक्ति के इस युग में मनचाही जिन्दगी जीने , प्रेम या विवाह करने के लिए वह पूर्ण स्वतंत्र है। विवाह में किए गये सम्पूर्ण समर्पण की अपेक्षा प्रेम में किया गया 'चुटकी भर समर्पण।' (56) उसके अतृप्त मातृत्व को भर देता है। ऐसी नारियों का चित्रण भी मिलता है जो विवाहपूर्व प्रेम की मधुर यादों में जीती हैं या प्रेम में धोखा खाकर उम्र ढ़लने तक शादी की प्रतीक्षा करती रहती है। (57)

नारी अगर कामकाजी वर्ग अथवा नौकरी पेशा वर्ग से है तो वह दहेज तथा पारिचारिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। प्रसंगवश अरूणा कपूर ने अपनी कहानी 'लखो हार गई' में नये दृष्टिकोण से एक ऐसी बहू का चित्रण किया है जो स्वयं दहेज के रूपये जुटाकर ससुराल वालों के मुँह पर फेंक आती है।

'लाखो हार गई' कहानी की नायिका लाखो बेहद निड़र और मुंहफट है। उसे नम्रता से बात करना भले ही न मालूम हो पर वह जो कुछ भी कहती है, गरजते हुए डंके की चोट पर कहती है। अपनी सास को वह डांटती हुई कहती है -"नहीं जाऊँगी मैं तेरे घर ...ले जा अपने बिकाऊ बेटे को। पति की झापड़ लगाने की बात सुनकर वह गरजती है ".... अरे होता कौन है तू हाथ उठाने वाला, छू के तो देख... हाथ न तोड़ दूँ तो... । अरे, तू तो चूड़ियाँ पहन ले ... जनखा कहीं का... ।" (58)

फूलवती (सास) कहती है 'लाखो हार गई' परन्तु सही जीत तो लाखो की हुई है। अपनी ईमानदारी और मेहनत से रूपये कमाकर दहेज के रूप में सास को देना तथा पति को बाइज्जत फिर से प्राप्त करना, आधुनिक युग की नारी के लिए आवश्यक है।

हिन्दू धर्म, विश्वास, संस्कार या मान्यता का जीवन हो या इस्लाम धर्म, विश्वास परम्परा का जीवन नारी को ही तलाक के मामले में विसंगतिबोध का शिकार होना पड़ता है। इस्लामी शरीफत के अनुसार नारी

को अगर कोई पुरूष तलाक दे देता है तो उसे दुबारा जीवन में अंगीकार करने के पहले ,...नारी को किसी अन्य पुरूष के साथ कम से कम देह के स्तर पर एक रात गुजारना अनिवार्य है, उस दूसरे पुरूष की हम बिस्तर होकर ही वह 'हलाला' कहलाती है। प्रसंगवश 'तलाक के बाद' कहानी में अब्दुल विस्मिल्लाह ने एक ऐसी नारी का चित्रण किया है जो तलाक के बाद भी अपने पति से जुड़ी रहती है। तलाक की बात याद आते ही साबिरा की आँखों के सामने अपने पति सत्तार का संम्पूर्ण चित्र घूमने लगता है। वह नहीं जानती थी कि एक छोटी सी बात के लिए उसके ससुर उसे तलाक के लिए मजबूर करेंगे। एक बच्चे की माँ बनने के बाद साबिरा का तलाक होता है, तो वह अपने मायके आकर रहती है। कानूनी बन्धन टूट जाने से दिल का बन्धन नहीं टूट जाता है।

साबिरा का मन अम्मा के प्रति घृणा से भरने पर भी अम्मा के आँसू उससे देखे नहीं जाते। शरीयत के हिसाब से पहले 'हलाला' होना जरूरी है। सत्तार कहता है -" मैं इस कानून को नहीं मानता जो बीबी और शौहर को नाहक अलग कर दे। (59) तलाक के बाद भी साबिरा शरीयत के कानून को बाजू हटाकर फिर से अपने पति सत्तार के साथ चली जाती है। सच्चे प्यार में किसी प्रकार के कानूनी या धार्मिक बन्धन आड़े नहीं आ सकते। भले ही समाज लांछन लगाये या जीवन में प्रतिरोध झेलना पड़े।

स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में यह एक विचित्र रिवाज है कि पुरूष किसी अन्य स्त्री से सम्पर्क करे तो पितृसतात्मक समाज उसे दण्डित नहीं मानता है पर अगर कोई स्त्री अपनी देह इच्छा के वशीभूत किसी पर पुरूष से वासनापरक सम्बन्ध स्थापित कर ले तो हिन्दू समाज हो या इस्लामी समाज ...उसे दण्डित करना चाहेगा।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में अक्सर यौन-सम्बन्ध अनैच्छिक तथा बलात्कार के रूप में परिलक्षित होता है। स्त्री आज भी पुरूष की आमानवीय कृत्य का शिकार बनती है। 'बहेलिये' कहानी की भोली पर सुमेर बलात्कार करता है। उसके बदन को क्षत-विक्षत कर देता है। "अंधेरे में वीभत्स,रौख तांडव मचने लगा। वह कच्चे तन पर झेलती रही।"(60) 'केतकी' कहानी की केतकी का कौमार्य ससुर की उम्र के गंधर्व सिंह लूट ले जाता है -"पर बलष्ठि बाँहों का जोर उस छरहरी दुबली-पतली बाला से कहाँ तक परास्त हो पाता।" (61) अनाचार की अतिशयता का चित्रण इन कहानियों में दृष्टिगोचर होता है। 'रायप्रवीण' की सावित्री गाँव में बाढ़ के प्रकोप से पीड़ित नारी है। अपनी दयनीय स्थिति से स्वयं को बाहर निकालने के लिए शरीर का सौदा करती है। राहत कैम्प के न जाने कितने लोगों ने उसके शरीर को रौंदा था -" देह की अन्दरूनी परतों में छिलते-छिलते कटाव आ गया। कमर के नीचे चिपचिपे खून की पोखर-सी बन गई है। छातियों ने घावों की शक्ल ले ली है। गालों पर दाँतों के खूनी निशान ..." (62) गाँव की कमजोर स्त्री आज भी यौन-उत्पीड़न की शिकार बनती है। यौन-संबंधों का चित्रण स्वस्थ न होकर स्त्री पीड़ा और नारी जीवन के विसंगति बोध को

विश्लेषित करता है। जाहिर है कि जो कुछ यथार्थ में घटित होता है वह काफी भयानक होता है।

समकालीन ऐतिहासिक, सामाजिक परिवर्तन ने स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में नया दृष्टिकोण निर्मित किया है। कारण व्यक्ति या चरित्र के स्थान पर प्रमुखता अब उनके ऐतिहासिक समय ने हथिया ली है। इसीलिए समकालीन कहानियों का अध्ययन अब पिछली कहानी की तरह प्रेमचन्दीय मानदण्डों के तहत व्यक्ति-मनोविज्ञान, वैयक्तिक चारित्रिक वैशिष्ट्य, नायक-खलनायकत्व, चारित्रिक प्रतीकवाद आदि आधारों पर सम्भव नहीं हो पाता। अब कहानी में ऊपर से नीचे और दाएँ से बाएँ हर तरफ समय ही समय है और इतिहास ही इतिहास है। यह ऐतिहासिकता अभी और गाढ़ी और व्यापक होनी है। हिन्दी कहानी में यह ऐतिहासिकता एक ऐसे समय में व्याप्त हुई है, जब सारा मीडिया ओर ज्यादातर मध्यवर्ग इतिहास के अन्त की उद्घोषणाएँ करने में लगा है। (63)

कहना न होगा कि समकालीन कहानी में इतिहास की यह अन्तर्व्याप्ति जीवन की गहरी गतिशीलता से नाभिनालबद्ध है। हिन्दी का कहानीकार अन्तवादी घोषणाओं को ठेंगा दिखाने में अव्वल है। मसलन आनन्द हर्षुल की एक कहानी है -'पृथ्वी को चन्द्रमा'। (64) इस कहानी में एक अविवाहित युवती है जो गर्भवती है लेकिन उसे अपने इस कृत्य पर गर्व है। कहानी एक फैंटेसी या प्रतीकात्मकता-सी में चलती है लेकिन कहानी के संकेत स्पष्ट हैं। यह दरअसल एक मासूम और उच्छल प्यार और आकर्षण की कहानी है ,जो यों तो अकेलेपन की निबिड़ता के विकल्प की तरह एक दिन यों ही लड़की की जिन्दगी में आता है लेकिन बाद में यही विकल्प उसके सामने सपनों और आकांक्षाओं का एक ऐसा नया और उज्ज्वल संसार कल्पित कराता है कि देखते ही बनता है : 'बस मैंने चन्द्रमा से किया है प्रेम, मेरे पेट में है चन्द्रमा का अंश, मैं पैदा करूँगी पृथ्वी पर एक चन्द्रमा ... और आया तुम आश्चर्य करोगी...तुम बरसों से जीवित स्त्री... तुमने कभी नहीं देखा होगा पैदा होता चन्द्रमा, स्त्री की कोख से, क्षितिज में उठता हुआ। यह दृश्य इतना सुंदर होगा कि तुम उसे देखने के बाद तुरन्त मरना चाहोगी... मरोगी और मुक्त हो जाओगी...हो सकता है इस प्रसव के बाद मैं भी न बचूँ... माँ बची रहेगी इस किस्से को बखानने ...कई बरसों तक... बरसों.. बरस मनुष्य की उम्रों को फलाँगता बचा रहेगा यह किस्सा।

शंभु गुप्त के विचारानुसार निश्चय ही इस कहानी तथा इस प्रसंग की भौतिक यथातथ्यता खोजी जा सकती है और हो सकता है, कुछ लोगों को यह विचित्र भी लगे लेकिन यहाँ विचित्र कुछ भी नहीं है। यह एक बहुत ही सीधी सादी किन्तु महत्वाकांक्षी जीवन-स्थिति है जो समकालीन स्त्री-स्वातन्त्र्य-चेतना का एक सहज उपागम है।

समकालीन कहानी के अद्यतन परिदृश्य में स्त्री अपनी व्यक्तिगत सत्ता, स्वातंत्र्य चेतना को महत्व देने लगी है। वह विगलित अश्रुपूर्ण जीवन जीना नहीं चाहती बल्कि अपने देह-सम्पर्को को नयी नैतिकता प्रदान करती है।

पंचम अध्याय : सन्दर्भ सूची

1. घनश्याम दास भुतड़ा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.102
2. वल्लभदास तिवारी : हिन्दी काव्य में नारी पृ.642
3. विवेकी राय : हिन्दी कहानी : समीक्षा और संदर्भपृ.42
4. उषा कीर्ति राणावत : स्त्री-पुरूष सम्बन्धों का विमर्श पृ.54
5. सीमोन द बुआ : स्त्री उपेक्षिता पृ.357
6. रोहिताश्व : समकालीन कविता और सौन्दर्यबोध पृ.72
7. रोहिताश्व : शोधकर्त्री की निजी वार्ता 27 जुलाई 09
8. प्रमोद त्रिवेदी : वाम मित्र जून 1975 पृ.18
9. महेन्द्र भल्ला : प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.81
10. विजय मोहन सिंह : आज की कहानी पृ.113
11. महेन्द्र भल्ला : प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.85
12. विजय मोहन सिंह : आज की कहानी पृ.114
13. घनश्याम दास भुतड़ा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.156
14. ममता कालिया : सीट नम्बर छह पृ.18
15. ममता कालिया : पीली लडकी कहानी एप्रिल 1971 पृ.88
16. गंगा प्रसाद विमल : सिद्धार्थ का लैटना सारिका फरवरी 1972
17. दूधनाथ सिंह : दिनचर्या, सारिका फरवरी 1972
18. मणिका मोहिनी : प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.89
19. नित्यानंद तिवारी : नयी कहानी :संदर्भ और प्रकृति पृ.
20. वेदप्रकाश अमिताभ : हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्यपृ.52
21. मोना गुलाटी : अकविता अंक 4 पृ.59
22. उषा झा : हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श पृ.89
23. उषा झा : हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श पृ.125

24. कमलेश्वर : मांस का दरिया पृ.68

25. कमलेश्वर : जो लिखा नहीं जाता - प्रतिनिधि कहानिया पृ.151

26. उषा कीर्ति राणावत : स्त्री-पुरूष सम्बन्धों का विमर्श पृ.150

27. राजेन्द्र यादव : कथा देश जनवरी 2009 पृ.139

28. उषा झा : हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श पृ.151

29. राजेन्द्र यादव : एक दुनिया समानान्तर पृ.36

30. देवी शंकर अवस्थी : यथार्थ का शिल्प और शिल्प का यथार्थ पृ.81

31. गुरूचरण सिंह : नरेन्द्र मोहन रचनावली - भाग - 5पृ.165

32. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र पृ.119

33. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.84

34. रोहिताश्व : वर्तमान साहित्य सितम्बर 2007 पृ.70

35. रघुवीर सिन्हा : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यो से प्रयाण पृ.42

36. बच्चन सिंह : आलोचक और आलोचना पृ.

37. उषा कीर्ति राणावत : स्त्री-पुरूष सम्बन्धों का विमर्श पृ.120

38. उषा कीर्ति राणावत : स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श पृ.55

39. घनश्याम दास भुतड़ा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.129

40. ममता कालिया : जिन्दगी सात घंटे बाद की पृ.61

41. ममता कालिया : घुटकारा पृ.49

42. नित्यानंद तिवारी : 'लहर' नयी कहानी विशेषांक पृ.92

43. शोभा निबांलकर : हिन्दी कहानी और नारी विमर्श पृ.214

44. शंभु गुप्त : आलोचना अक्टूबर- दिसम्बर 2007 पृ.75

45. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.178

46. प्रेमचन्द : मान सरोवर : प्रथम भाग भूमिका पृ. 3

47. वेदप्रकाश अमिताभ : हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्यपृ.50

48. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.21

49. घनश्याम दास भुतड़ा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.164

50. रघवीर सिन्हा : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यो से प्रयाण पृ.39

51. कमलेश्वर : प्रतिनिधि कहानिया पृ.74

52. रोहिताश्व : वर्तमान साहित्य सितम्बर 2007 पृ.

53. कमलेश्वर : राजा निरबंसिया पृ.81

54. रघुवीर सहाय : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य : मूल्यों से प्रयाण पृ.44

55. कमलेश्वर : राजा निरबंसिया पृ.89

56. मेहरून्निसा परवेज : सारिका 5 अगस्त पृ.88

57. घनश्याम दास भुतड़ा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृ.63

58. अरूणा कपूर : लाखो हार गई - प्रतिनिधि कहानियाँपृ.19

59. अब्दुल बिस्मिल्लाह : दंड सारिका अंक 256 पृ.50

60. मैत्रेयी पुष्पा : चिन्हार पृ.38

61. मैत्रेयी पुष्पा : चिन्हार पृ.128

62. मैत्रेयी पुष्पा : गोमा हंसती है पृ.74

63. शंभु गुप्त : आलोचना जनवरी- मार्च 2003 पृ.74

64. आनन्द हर्षुल : हंस - सितम्बर 2001 पृ.33

65. शंभु गुप्त : आलोचना जनवरी- मार्च 2003 पृ.75

6. समकालीन कहानी का विकास : अद्यतन संदर्भ

समकालीन कहानी के व्यापक परिप्रेक्ष्य में हमें पारम्परिक भावबोध की पुरूष वर्चस्ववाली कहानियाँ भी मिलती हैं। जहाँ नारी अनुगामिनी, आज्ञाकारिणी कन्या, कुलवधू है। जिसे पुरूष वर्ग अपने स्वार्थ, लाभ के लिए इस्तेमाल कर लेता है। राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' तथा महीप सिंह की 'कील' कहानी पुरूष वर्ग के पारम्परिक और स्वार्थी स्वभाव की द्योतक है,पर ज्ञानरंजन की 'फेंस के इधर-उधर' कहानी परम्परा और आधुनिकता बोध की टकराहट की कहानी है। यही हश्र मार्कण्डेय और रेणु की कहानियों का है। 'हंसा जाई अकेला' कहानी में मार्कण्डेय ने ग्रामीण समाज की पुरूषवादी वर्चस्व की मानसिकता को रेखांकित किया है तो स्त्री-पुरूष के सहज आकर्षण को रेणु ने 'तीसरी कसम' कहानी में उकेरा है।

मैत्रेयी पुष्पा, शिवमूर्ति, चित्रा मुदगल, शैवाल, आदि रचनाकार अपनी विभिन्न कहानियों में स्त्री-पुरूष के पारम्परिक सम्बन्धों का चित्रण करते हुए उनके आधुनिकताबोध वाले स्वरूप को भी रेखांकित करते हैं। वर्तमान औद्योगिक विकास और महानगरीय जीवन शैली के कारण स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में अभूतपूर्व बदलाव आये हैं। अब कामकाजी नारी-वर्ग अपने यौन सम्बन्धों में 'दुर्ग झर के वर्जना वाले किवाड़ों पर नयी दस्तक दे रहा है। नारी अब देहमुक्ति और नयी नैतिकता के स्वर अपना रही है। जिसे

आधुनिकताबोध वाला पुरूष वर्ग सहज प्रवृत्ति में अपनायेगा पर पारम्परिक सोचवाला पुरूष वर्ग कमलेश्वर कृत 'राजा निरबंसिया'के नायक जगपती की तरह संशय, घुटन, और विसंगतिबोध के माहौल में , साँस-साँस के जीवन को अभिशप्त-नरक मान लेगा।

6.1 परम्परा और आधुनिकता बोध

प्राचीन कथा साहित्य में प्रेम विवाह, गंधर्व विवाह, स्वयंवर प्रथा का जिक्र मिलता है और अनुलोम तथा विलोम स्त्री-पुरूष सम्बन्ध के चित्रण भी। कहना न होगा कि कालान्तर में भारतीय महाकाव्यों में प्रेम के साथ विवाह तथा व्यवहारिकता जुड़ गई। राम-सीता का मर्यादित प्रेम तथा सत्यवती-शान्तनु के व्यावहारिक प्रेम इस बात की पुष्टि करते हैं। विवाह में रखी सत्यवती की अपने बेटे को राजा बनाने की शर्त प्रेम के स्वाभाविक स्वरूप को नष्ट करती है। लेकिन स्त्री के शोषण की ओर वह ध्यान दिलाती है। नल-दमयंती की कथा में भी प्रेम का आदर्श पतिव्रत्य का चित्रण किया गया है। बौद्ध कथाओं में प्रेम विरोधी दृष्टिकोण दिखलाई पड़ता है। मध्य युग तक आते-आते स्त्री-पुरूष के मानवीय सम्बन्धों में प्रेम सम्बन्धों को सैक्स से जोड़कर अमानवीय बना दिया गया। वैष्णव भक्ति में प्रेम सामंतवादी सामाजिक संरचना का उदाहरण ही प्रस्तुत करता था। कृष्ण एक, पर उसे प्रेम करनेवाली गोपियाँ अनेक। गोपियों को अन्य पुरूषों से प्रेम की छूट नहीं थी। दाम्पत्य सम्बन्धों में भी परकीया प्रेम की सुविधा नायक को मिलती है और स्त्री को दाम्पत्य आदर्श की शिक्षा दी जाती। (1)

अतः कहा जा सकता है कि भारतीय जन-जीवन सामंतवादी दौर, मध्ययुगीन दौर तो क्या आधुनिक दौर में भी स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में दोहरे मापदण्डों को अपनाता है। स्त्री-पुरूष के सम्बन्ध वंश-वृद्धि के लिए ही है' अथवा मानसिक , शारीरिक संतुष्टि के पर्याय अभिज्ञान शाकुंतल और कुट्टनी मत्तम ग्रंथ दो विरोधी विचारों की कृतियाँ है। वीरेन्द्र सक्सेना के विचारानुसार "एक दृष्टि से स्त्री और पुरूष के बीच प्रेम-भाव कामभाव का ही परिष्कृत रूप है।" ईसाई धर्म की दो हजार वर्ष पहले यह धारणा थी कि वंशवृद्धि के अलावा किया गया काम सम्बन्ध पाप है। परन्तु हिन्दू धर्म में सैक्स को पवित्र स्थान दिया गया है। कामसूत्र में प्रेम का पर्याय ही काम है, ऐसा कहा गया है। परिवार के अतिरिक्त प्रेम तथा काम सम्बन्ध स्त्री-पुरूष दोनों बनाते हैं। स्त्रियों ने काफी बाद में ऐसा करना शुरू किया। शुरूआत में स्त्री प्रेम करती थी विवाह करने के लिए , पर अब स्थितियाँ बदल गई हैं।' (2)

भारतीय धर्म दर्शन संस्कृति में स्त्री-वर्ग के प्रति सम्मान सैद्धान्तिक रूप में दर्शाया जाता पर व्यावहारिक रूप में वे उपभोग्या सहकर्मिणी और मात्र सहयोगी मानी जाती हैं। ऋग्वेद 7/76/3 मन्त्र में कुलटा स्त्री की निन्दा और पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा की गयी है। एक स्थान पर उपपत्नी का भी उल्लेख है साथ ही जार तथा व्यभिचारिणी स्त्रियों के उल्लेख हैं। xxx

वेदकालीन भारत में नारियों की स्थिति बहुत अच्छी थी , उन्हें समाज में सम्मान प्राप्त था, वे विद्या और बुद्धि से सम्पन्न थी, देवरमणियाँ यज्ञ में आती थीं, इला धर्म का उपदेश देती थी। घोषा नामक नारी ब्रह्म वादिनी थी, उसने अनेक सूक्तों का निर्माण किया था। इसी प्रकार की उल्लेखनीय स्त्रियों में अपाला। शची, अदिति, विश्वनारा, आत्रेयी, श्रद्धा, वैवश्यती यमी और वाग्देवी के नाम लिये जा सकते हैं। XXX विदुषी नारियों में गार्गी और मैत्रेयी के नाम से कौन परिचित नहीं है, इनकी ज्ञान गरिमा की परिचायक वृहदारण्यक उपनिषद है, गार्गी ने जनक की सभा में याज्ञवल्क्य के समक्ष जो तत्व ज्ञानविषयक प्रश्न उपस्थित किये थे, वे उसे आज भी अमर बनाए हुए हैं। (3)

सती प्रथा हमारे उत्तर-मध्य कालीन दौर का अभिशाप मानी जा सकती है। क्योंकि रामायण काल में सती प्रथा नहीं थी। दशरथ के साथ कोई रानी सती नहीं हुयी थी न ही रावण की नारियों में कोई स्त्री सती हुयी थी। रामायण काल में वेश्याओं को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। राम के वनवास से लौटने पर भरत ने राम के स्वागत हेतु गणिकाओं को भेजा था- 6/127/5 वेश्यायें सैन्य व्यवस्था और नागरिक जीवन के लिए उपयोगी थी, अयोध्या नगरी गणिका वर शोभित (2/51/21) थी। सामान्य वेश्याएँ रूपाजीवा कहलाती थी।

भारतीय जन जीवन में सामान्य नारी-वर्ग महाभारत काल से ही पराश्रित रहा है। महाभारत काल में नारी पूर्ण स्वतंत्र और स्वच्छंद नहीं थी। उस पर नियंत्रण रखा जाता था- बाल्यावस्था में उसे पिता के , यौवन में पति के एवं वृद्धावस्था में पुत्र की देखरेख में रहना पड़ता था। कहा गया है –

"पिता रक्षति कौमारे भर्तारक्षति यौवने।
पुत्रारच स्थाविरे भावे च स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति।"

कहा जाता है कि ईसा की तीसरी शताब्दी में 'मनुस्मृति' की रचना हुयी है।" और इसी दौर के मौर्य कालीन समाज में स्त्रियाँ विशेष बन्धनों में जकड़ी गयी। शिक्षा के अभाव से घर की चहार दीवारी ही उनका क्षेत्र था। मेगास्थनीज ने लिखा है कि स्त्रियाँ बेची जाती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में स्त्रियों के दुर्व्यवहार और अनुचित यौन प्रसंगों पर दण्ड का विधान था। XXX वंश की रक्षा के लिए नियोग प्रथा का प्रचलन था। (4)

मौर्य काल में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में विवाह के आठ स्वरूप प्रचलित थे। ब्रह्म, प्राजापात्य, दैव, आर्य, असुर, गान्‌ धर्व, राक्षस और पैशाच आदि। किन्तु ब्राह्म, प्राजापत्य ,दैव और आर्य नामक धर्मानुकूल विवादों में तलाक की प्रथा मान्य नहीं थी। शेष में तलाक की प्रथा मान्य थी।

गुप्त काल (तीसरी-चौथी ईसवी शताब्दी) में नारी को उच्च वर्ग में अर्धांगिनी का सम्मान प्राप्त था। कालिदास ने लिखा है कि सीता को त्यागने के बाद रामचन्द्र ने यज्ञ का आरम्भ किया तो उन्हें सीता की स्वर्ण प्रतिमा का निर्माण करवाना पड़ा। वात्सायन के 'कामसूत्र'में नारी के कर्तव्य

अभिज्ञापित किये गये हैं। xxx प्रसंगवश 'अमरकोष' में वेदमन्त्रों की शिक्षा देने वाली नारियों का वर्णन है। गुप्त काल में शीलाभट्टारिका एक योग्य और विदुषी महिला थी। 'सरस्वती कण्ठाभरण' में राजा भोज ने शीलाभट्टारिका को पांचाली रीति की सिद्धहस्त प्रयोक्ता के रूप में स्वीकारा है।

गुप्त काल की अनेक रचनाओं में दहेज प्रथा, और सतीप्रथा का उल्लेख मिलता है। 'मृच्छकटिकम' नाटक में शूद्रक ने अनेक शिक्षित और वाद्य संगीत में निपुण नारियों का उलोख किया है। चन्द्रगुप्त ने भाई रामगुप्त की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी ध्रुवदेवी से विवाह किया था। जिस पर जयशंकर प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक रचा है। नारी को मध्यकाल के दौर तक अर्दांगिनी, गृहणी, सचिव, सखी और मन्त्रिणी माना गया है।

आधुनिक युग में जब जन-संख्या का धनत्व बढ़ा। ग्रामीण जिलों-कस्बों से लोग रोजी-रोटी के लिए महानगर आने लगे। कृषि कार्य में नारी के सहयोग का मोल नहीं आँका जाता है पर नौकरी पेशा और तकनीकी क्षेत्रों में कार्यरत नारी महत्वपूर्ण मानी जाती है। वैसे आज भी स्त्री पुरूष को चाहती है। पुरूष-स्त्री का कोई भी रिश्ता बेकार नहीं हो पाता है। पर अब स्त्री को पुरूष नौकरानी या देवी नहीं कहता। वह यह समझ गया है कि देवी कहकर अब स्त्री का शोषण नहीं किया जा सकता। आज भी वह पुरूष से प्रेम करती है परन्तु समर्पण की चाहत के साथ। स्त्री-पुरूष से प्रेम चाहती है, मिलने पर भी अतृप्त रहती है, इस दर्द को लेकर रोती झींकती रहती है। पुरूष सोचता है कि स्त्री को जितना दो उतना ही कम, पैसा या प्याार वह अधिक कामना करती है। (5) प्रेमचन्द ने कहा है " पुरूष के लिए प्रेम हाशिये की चीज है, स्त्री के लिए जीवन। (6) साथ ही प्रेमचन्द ने यह भी कहा है कि अगर पुरूष में नारी के गुण आ जाये तो वह देवता बन जाता है और नारी में पुरूष के गुण आ जाये तो वह कुलटा कहलाती है।

भारत वर्ष में उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिक विकास से मध्य वर्ग पनपा और बीसवीं शताब्दी में वह इतिहास, परम्परा, आधुनिकता, शिक्षा और आर्थिक विकास की जद्दो जहद में उलझ गया। हमारे अधिकांश रचनाकर मध्यवर्ग से ही आते हैं और ज्यादातर भारतीय परिवारों में शुरू से ही स्त्री-पुरूष के लिए दो अलग-अलग प्रतिमान निर्धारित होते हैं और लड़की को बराबर यह अहसास कराया जाता है कि वह लड़की है, दूसरे-तीसरे दर्जे की नागरिक। रामदरश मिश्र की कहानी 'लड़की' इस विसंगति को बहुत तीखेपन से सम्प्रेषित करती है। जिन घरों में स्त्रियाँ नौकरी कर रही हैं, वहाँ उनकी नौकरी के फल का स्वाद लेने में पिता भाई पीछे नहीं रहते, लेकिन मौका पाते ही उसकी हैसियत का अहसास करा देते हैं। कामकाजी महिलाओं के चरित्र पर सन्देह आम बात है। 'प्रोमोशन' कहानी में ललिता ने पुरूष के दुमुँहे सोच की चर्चा इन शब्दों में की है -"पुरूष की पदोन्नति हो तो वह उसकी लगन और मेहनत का परिणाम है। स्त्री अगर अपनी लगन और परिश्रम से उन्नति करे तो वह उसकी अपनी प्रतिभा किसी डॉ.कोठारी की

अनुकम्पा है .. और बीच में शरीर आए बिना यह सम्भव नहीं ?' इसी तरह पुरूष जब चाहे विवाह कर सकता है। यदि पकी उम्र की कोई औरत यह दुस्साहस कर बैठे तो हंगामा मच जाता है। (7) 'बूँद' (मंजुल भगत) की बानों से परिवार की अपेक्षा है कि वे या तो अच्छी दादी जान बनी रहे या कुनवापरवर देग को घुमाफिराके आंच देती रहे। जब वे अपनी इच्छा से एक मर्द गुलशेर का हाथ थाम लेती हैं तो लगता है कि घर की नाक कट गई। यह एक ऐसा प्रतिवाद है जो परम्परागत सोच और रूढ़ नैतिकता के प्रतिकूल पड़ता है। (8)

भारतीय जन समाज अभी भी साठ प्रतिशत नारी के प्रति पारम्परिक ,रूढ़िवादी दृष्टिकोण अपनाये हुए है। क्योंकि भारतीय शास्त्रों में स्त्री की छवि या तो देवी या ताड़न की अधिकारी के रूप में है। कबीर के अनुसार नारी महाविकार है। अर्थात स्त्री या तो देवी बनी रहे या भ्रष्टा बने, बीच की स्थिति की कल्पना कोई पुरूष करना नहीं चाहता। वैज्ञानिक प्रगति ने वीडियो, टी.वी. के जरिए स्त्री के सभी वस्त्र उतार दिए हैं। एक मशीन की तरह वह चलायमान है। दुर्भाग्य से उसका यह रूप किसी देवी का प्रतीक नहीं यहाँ वह एक योनि ही नजर आती है और रोमांचित भी नहीं करती। इस तरह आज के माहौल में स्त्री-पुरूष रसहीन यंत्रवत काम संबंधों को ढो रहे हैं। स्त्री वीमन लिव के सहारे चल पड़ी है जिसकी मंजिल तय नहीं है। (9)

वुमन लिबरेशन और नारीवाद की प्रवक्ता महिलाएँ मंगलसूत्र पहनने और करवा चौथ न मनाने की बात कहती है। पर सभी भारतीय लोग चाहे वे उच्च वर्ग के हों, मध्य वर्ग के , निम्न वर्ग के हों या अशिक्षित श्रमिक जन ... वे प्रथाओं, परम्परों और रूढ़ियों में विश्वास रखते हैं।

भारत में करवा चौथ का व्रत महिला करती है। पति की लम्बी उम्र तथा अच्छे स्वास्थ्य की कामना करते हुए वह पूरा दिन भूखी प्यासी रहती है। व्रत की कथा में सौत का जिक्र है। रानी थी वो गोली बन गई, गोली थी वो रानी बन गई। रानी को फिर से रानी बनने के लिए क्या- क्या पापड़ बेलने पड़े । यह कथा में विस्तार से कहा गया है। अन्त में राजा रानी को अपना लेता है। इस लोककथा से स्पष्ट है कि सौत से छुटकारा पाना मुश्किल काम है। यह कथा पढ़ी लिखी महिलाएँ भी मांग में सिन्दूर भरकर कहती रहती हैं। फिर भी व्यक्तिगत रूप से भी सौत को अपने घर में आने से नहीं रोक पाती है। फर्क यह है कि सौत उसे दिखाई नहीं देती। पति अन्यत्र होटल वगैरह में उससे निपट कर आ जाता है। परन्तु पति के अन्यत्र सौत सम्बन्धों से उसे ठेस लगती है। इस समस्या का समाधान स्त्री नहीं खोज पाई। माँ को अगर बेटे की करतूत का पता चले तो लड़का है कुछ भी करे। इस तरह से एक स्त्री दूसरी स्त्री को सिखा रही है कि मर्द का एक ही काम है और वह है काम तुष्टि।

प्रसंगवश नयी कहानी और समकालीन कहानी के दावे दारों ने नारी को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। राजेन्द्र यादव का कथन है कि आज

की कहानी ने समूहगत सामाजिकता को व्यक्तिगत सामाजिकता के रूप में देखने-पाने की कोशिश की है। विराट युगबोध को व्यक्ति या व्यक्तियों के आपसी संबंधों की चेतना, यानी मन के अनेक स्तरों पर आंकलन और प्रतिफलन के नाटक को, आज की कहानी ने ही सबसे पहले देखा। (10) कहीं वह 'मिसपाल' है और कहीं 'राजा निरबंसिया' में संत्रस्त चन्दा।

रेणु की 'तीसरी कसम' कहानी की नायिका हीराबाई ग्रामीण संवेदना और व्यावसायिक दुनियाँ की षडयंत्र पूर्ण नीतियों को जानती है अतः वह चाहकर भी हीरामन का वरण नहीं करती है और यही हाल धर्मवीर भारती की 'गुल की बन्नो' नायिका का है। मोहन राकेश ने 'सुहागिनें' कहानी में नारी की परवशता को दिखाया है तो निर्मल वर्मा ने 'परिन्दे' में शिक्षित नारी के विसंगतिबोध को रेखांकित किया है। मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर, आदि ने जतलाया है कि ग्रामीण समाज में सामाजिक संरचना के इर्द-गिर्द रचे, गढ़े गए तमाम आचार-विचार, नियम, परंपरा आदि को एक निहायत संकीर्ण रूप दे दिया गया है। परंपरा के इर्द-गिर्द अंधविश्वास और जड़ता की ऊँची -ऊँची दीवारें खड़ी कर दी गई हैं जिनके बीच सांस्कृतिक परंपरा जैसी चीज भी कैद होकर रह गई है और घुटन भरी जिन्दगी जी रही है। इस दीवार की ओट में चुहलबाजियाँ होती हैं, फब्तियाँ कसी जाती हैं। जड़ नियम से आप जरा-सा भी हटे कि इनके शिकार हुए। फिर आपको ऐसी तीव्र आलोचना से बचने का कोई रास्ता नजर नहीं आता। यह तीखी व्यंग्यात्मक आलोचना कमर ही तोड़कर रख देती है। इस संकीर्ण मनोवृत्ति के मूल में होते हैं, पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या , वैमनस्य और कुंठा। (11)

शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' और मार्कण्डेय की कहानी 'हंसा जाई अकेला' में उपर्युक्त परिच्छेद के परिवेश, मनःस्थिति और दोहरी मानसिकता का ही प्रतिबिम्ब पाया जाता है। कहना न होगा कि मार्कण्डेय की दृष्टि बराबर समाज की निचली सतह पर है। वह आम लोगों की रोजमर्रा की जिन्दगी को बहुत नजदीक से देखने की कोशिश करते हैं। उसे स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है कि समूचा स्वातंत्र्योत्तर ग्रामविकास सम्पन्नों के हिस्सों में पड़ा है और उजड़े लोग बिलकुल ही उजड़ गये हैं। इस खुल्लमखुल्ला भ्रष्टाचार राजधानियों की दौड़ और वोट की गन्दी राजनीति के आगे 'दौने की पत्तियाँ' शीर्षक कहानी के गरीब भोला कोइरी की क्या औकात है ? योजना-विकास के चलते उसके उस एक पूरे खेत से अंततः नहर निकल ही गयी जिसे उसने पाँच वर्ष में आधे पेट खाकर खरीदा था। तथा जिसे लेकर उसका तथा उसके बाल-बच्चों का जीवन था। (12)

भारतीय जन-जीवन में अकेली, परिपत्यक्त, विधवा और बेबस नारी का जीवन नर्क से बद्तर स्थिति में रहता है और इसका पूरा षडयन्त्र पुरूष-वर्ग ही रचता है आर्थिक-सामाजिक ढाँचे के भीतर जिसका प्रतिवाद शिवमूर्ति और मैत्रेयी पुष्पा ने किया है। पर यह सच है कि मार्कण्डेय की कहानी 'दूध और दवा' में जिजीविषा और अस्तित्व रक्षा के प्रयत्न का

दिग्दर्शन कराया है। मानव मात्र के मन में चाहे वह किसी भी अंचल का हो,कैसे भी परिवेश की उपज हो, जीने की लालसा और जिन्दगी के प्रति चाह उसके मन में अनवरत बनी रहती है। 'माई' कहानी की माई ग्राम जीवन की प्रतिनिधि नारी है। (13)

धर्मवीर भारती की 'गुल की बन्नो' की गुलकी भी ऐसी ही ग्रामीण पात्र है, जो जिन्दगी के समस्त दुखों ,अभावों, तिरस्कार एवं प्रताड़ना को झेलते हुए भी जीवन के प्रति एक लालसा रखती है । जो जिन्दगी से हर तरह से तबाह होने पर भी जीती रहना चाहती है। जिस पति ने इस पर जुल्म किये, वह अन्त में उसी पति के साथ चली जाती है। उस जमाने में अपने में एक नव वधू की सी भावना खोजती है।

गुलकी पति से प्रताड़ित होकर भी उसके पास जाने में एक गर्व महसूस करती है, और सब बातों के लिए स्वयं को ही दोषी बताती है। नारी का स्वयं को ही हर बात के लिए दोषी ठहराना एवं पुरूषों को माफी देना ग्रामीण-परिवेश की स्त्रियाँ अभी भी यही मान्यताएँ रखती हैं। तभी तो गुल की कहती है -" पति से हमने अपराध किया तो भगवान ने बच्चा छीन लिया, अब भगवान हमें क्षमा कर देंगे। फिर कुछ क्षण के लिए चुप हो गई। क्षमा करेंगे तो दूसरी संतान देंगे। तुम्हारे जीजा जी को भगवान बनाये रखें। खोट तो सभी में है। फिर संतान होगी तो सौत का राज नहीं चलेगा।" (14) यहाँ स्त्री वर्ग की पारम्परिक सोच अभिज्ञापित की गयी है।

महीप सिंह ने 'कील' कहानी के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन के स्वार्थी बाप की लोलुपता और युवा पुत्री मोना के अन्तर्द्वन्द्व और इच्छित जीवन की अभिलाषा को रेखांकित किया है। कहानी के कथ्य के अनुरूप मोना अपने बाप की प्रशंसाओं, सद्भावनाओं और प्यार को ढोती, अनजाने ही रीतती चली जाती है। नारी होने के कारण माँ, बेटी मोना की मनःस्थिति को भाँप लेती है और अपने पति को लिखती है कि मोना सुरेश से शादी करने के लिए तैयार है। बाप गंभीर होकर कहता है -" मैं नहीं चाहता कि किसी दबाव में आकर तुम अपनी मर्जी के खिलाफ फैसला करो।" (15)

आइने के सामने खड़ी मोना अपने दाहिने गाल पर गड़ी कील को खुरच कर फेंक देती है, जिसके कारण खून छलछला आता है। कील का फेंकना ही उसके अपने नारी सुलभ निर्णय में उगे हुए व्यवधान को फेंकना है। वह व्यवधान अपने ही लोगों का है। वह विवाह के लिए हाँ कह देती है। प्रस्तुत कहानी में प्रतीकात्मक ढंग से आधुनिक पारिवारिक परिवेश में पलती हुई एक शिक्षित जवान लड़की के मानसिक द्वन्द्व को उभारा गया है। धीरे-धीरे भारतीय नारी अपने व्यक्तित्व को समाप्त करने वाले बन्धनों को तोड़ते हुए स्वतंत्र अस्मिता और विकास के लिए प्रयत्नशील रही है।" (16)

अधिकांश रचनाकार और आलोचक भले ही नारी के स्वतंत्र अस्तित्व, उसके आत्मगत निर्णय को महत्व देने की बात करते हैं पर वे अपनी मध्यवर्गीय पौरूष , अहं और अवसर वादिता से बाज नहीं आते हैं। प्रसंगवश 'धुआँ धुआँ ऊँचाई' कहानी में विजय ने रूढ़ मर्दाने सोच को इन

शब्दों में सामने रखा है - "औरत और घोड़ी आदमी के इस्तेमाल की शै हैं। बेहतर हो कि अपने घर और अस्तबल में रहें और आदमी के हाथों में उनकी रास हो। [17] अनेक समकालीन कहानियों में इस सामन्ती मानसिकता का उल्लेख है और बलपूर्वक इसका निषेद किया गया है। नारी को 'पशु' या 'वस्तु' मानने का निषेद चन्द्रकान्ता कृत 'साउथ एक्स की सीता' में भी है। 'प्रमोशन', 'मुआवजा' (चित्रा मुद्गल), 'अन्धे मोड़' (मंजुल भगत), 'कापुरूष' (उषा यादव), 'खुदा की वापसी' (नासिरा शर्मा) आदि कहानियों में आए पुरूष-चरित्र आधुनिक ढंग का जीवन जी रहे हैं , लेकिन उनके दिमाग पन्द्रहवीं-सोलहवीं शती से आगे नहीं बढ़े है। ऐसे लोगों को नारी की नियति तय करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता है। [18]

हाल ही में वर्तमान साहित्य के 2005 के अंक में राजेन्द्र यादव का एक आलेख 'होना-सोना एक खुबसूरत दुश्मन के साथ' छपा है, जो परमपूज्य नामवर सिंह के श्री चरणों में अर्पित है। [19] एक प्रकार से यह सामन्ती प्रवृत्ति की पुरूष-वर्चस्व वाली मनोवृत्ति पर व्यंग्य है जो स्त्री को सहधर्मिनी न मानकर उसे अनुगामिनी , आज्ञा कारिणी जीव मानता है। कहना न होगा इस आलेख ने समकालीन कहानी व आलोचना में घमासान दृश्य प्रस्तुत किया है।

आधुनिकता बोध एक विचार प्रत्यय है, जो नवीन जीवन शैली और नवीन सोच का पर्याय है। पुरानी पीढ़ी जहाँ परम्परागत आदर्शों मूल्यों व विश्वासों से जुड़ी है, वहीं नयी पीढ़ी सभ्यता के नवीन उपकरणों को अपनाने के साथ-साथ परम्पराओं को निस्सार सिद्ध करने में लगी हुई है,साथ ही एक वर्ग उसका भी है जो इन दोंनों के बीच का है, जो सांस्कारिक जुड़ाव के कारण न तो परम्परा को छोड़ पाता है और न नवीन के साथ पूर्णतः जुड़ पाता है। ज्ञानरंजन की 'फेंस के इधर और उधर' कहानी मान्यताओं, मूल्यों व आदर्शों के बदलते और नगर में अलगाव की स्थिति को व्यक्त करती है। कहानी में फेंस के दोनों ओर बीच के वर्ग की दो मनोवृत्तियाँ हैं, एक ओर पड़ोसी परिवार है जहाँ उन्मुक्तता है, खुलापन है, आधुनिकता है, दूसरा परिवेश फेंस के इधर का है - जहाँ घुटन है, रूढ़िवादिता है, बंधन है।" फेंस दोनों परिवेशों की संक्रान्त स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है। कहानी का मैं पड़ोस के परिवार से सम्बन्ध बनाना चाहता है, किन्तु पड़ोसी परिवार महानगरों की अनासक्त जीवनयात्रा का यात्री है। विशेषकर लड़की , जो बेतहाशा हंसती व खुले रूप में व्यवहार करती है। कहानी के 'मैं' की भाभी, बहन जिस भारतीय परम्परागत रूप से घर, परिवार, समाज, मोहल्ले, पड़ोसी की आलोचना से जुड़े हैं, वहीं पड़ोस की लड़की कुंठारहित स्वच्छन्द रूप से विचरती है और आस-पास के लोगों पर एक निगाह भी नहीं डालती। [20] यहाँ लेखक ने दोनों परिवेशों की सीमारेखा को स्पष्ट रूप से अंकित किया है। ससुराल जाने पर भी लड़की की आँखो में आँसू नहीं आये, इस बात का दुख फेंस के इधर की माँ और दादी को कितना अधिक है, नवविवाहित लड़की के माँ-बाप को भी

उतना नहीं है। यह कहानी मान्यताओं,मूल्यों व आदर्शों के बदलने का प्रतीकात्मक विवेचन करती है।

पारम्परिक समाज और परिवेश में शादी के बाद नवविवाहित लडकी (स्त्री) के दुःखद रूप का चित्रण 'आँसू बहाती' नारी का है, जो बाबुल से बिछड़ने का प्रतीकात्मक दुःख है। पर कथा नायक आश्चर्य करता है कि फेंस के उधर रहने ओर नवविवाहित स्त्री रोने का अभिनय क्यों नहीं करती है.. जबकि चिकोटी काटकर पारम्परिक समाज व परिवेश में लड़की-नववधू को रोते हुए दिखाना 'विछोह का दुख' बतलाया जाता है। पर इस परम्परागत सोच के बाद आधुनिक मना नारी अपने प्रियतम पति के साथ प्रस्थान करते हुए खुशी का अनुभव करती है। फेंस के उधर जाते समय ...परम्परागत घर-परिवेश से नये साथी और परिवेश में जाने के लिए। यहाँ परम्परा और आधुनिकता में अन्तर स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है।

कहना न होगा कि भारतीय जन-जीवन में विवाह को सुरक्षा के रूप में मानने की मनोवृत्ति अनेक लेखिकाओं व वर्णन में है। विशेष तौर पर गाँव में यह स्थिति हमें प्रखर रूप में दिखाई देती है। वहाँ विवाह का महत्व नारी-जीवन के लिए अत्यधिक है। इसे त्याग ने की कल्पना अभी वहाँ नहीं है। मैत्रेयी पुष्पा की 'चिन्हार' कहानी की सरजू प्रेममयी और निष्ठावान युवती है। पति धूर्त और लम्पट था। जीवन में पति और परिवार को महत्व देने वाली सरजू पति की बेवफाई को भी नजर अंदाज करती रही। पति की मृत्यु के बाद सरजू एकदम बेसहारा हो जाती है, टूट जाती है। लेखिका लिखती है -"पति चाहे जैसा था लेकिन वह कहीं बसी तो थी उसके साथ। उसका घरौंदा लिए आंगन और पुते चुल्हे, बक्सा- बिस्तर से सुसज्ज तो था। अपने उसी घर की पटरानी थी वह। [21] यह सत्य है कि विवाह संबंधी पारम्परिक मान्यताएँ आज पूरी तरह से कायम हैं। विवेच्य कहानियों में भले ही विवाह को लेकर विद्रोहपूर्ण इंकार भरे स्वर हमें मिलते हैं। लेकिन यह भी एक सच्चाई है कि सामाजिक व्यवस्था के संतुलन के लिए विवाह तथा परिवार की मान्यता खत्म नहीं हो सकती। मुक्त यौन-संबंध की पूर्ति तथा अपनी जीवन संबंधी दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति युवा पीढ़ी कर रही है। जिसके कारण उनका विवाह के प्रति दृष्टिकोण बदला है। किन्तु महानगरों तथा उच्च शिक्षित आधुनिक विचार की नारियों में यह मनोवृत्ति पाई जाती है। अकेला जीवन मनोवैज्ञानिक स्तर पर कितना सही होगा यह एक शोध का विषय हो सकता है। कहना गलत न होगा कि विवाह स्त्री-पुरूष को जोड़ने का काम करता है, तोड़ने का नहीं। दोनों ही अपने-अपने विचारों को मान्यता दे तथा उसका सम्मान करें।

सुधी विद्वानों को ज्ञात है कि आधुनिक शब्द कालवाचक है और आधुनिक बोध का अर्थ होता है वर्तमान का बोध। इस प्रकार सीमित अर्थ में आधुनिक शब्द समसामयिक का अभिप्राय देता है। परन्तु यह शब्द दृष्टिकोण-परक या विचारपरक अर्थ भी देता है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, प्रथम तत्व, अपने देशकाल के साथ जीवंत एवं सचेतन संबंध है और दूसरे

तत्व विवेक युक्त; वैसा दृष्टिकोण इस आधार पर आधुनिक बोध वर्तमान के प्रति सजगता को आधुनिक संवेदना की मानवीय शर्त स्वीकार की जा सकती है। (22)

युग और परिवेश के बदलाव से मनुष्य की संवेदनशीलता में बदलाव आता है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों की भौतिक और बौद्धिक उपलब्धियों ने जीवन विषयक स्थापित मान्यताओं को तोड़ दिया है। वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित मानवीय भावनाओं का स्वरूप अब वह नहीं है जो पिछले समय या युग में रहा था। इस काल में जन्म-मृत्यु ,पाप-पुण्य, उचित-अनुचित और नैतिक-अनैतिक के विषय में नया बोध विकसित हो रहा है। (23)

दीप्ति खण्डेलवाल की कहानियों में उच्च एवं मध्यमवर्ग की स्त्रियाँ यौन स्वच्छंदता और देहमुक्ति की कामना में विश्वास करती है और यही हश्र कृष्णासोबती की 'मित्रो मरजानी' के कथ्य की है। अतः माना जा सकता है कि "आधुनिकता का लक्ष्य जीवन के प्रति आध्यात्मिक और परम्परावादी दृष्टिकोण का नकार और यथार्थ की गतिशील शक्ति को स्वीकार करने का आग्रह है। इस प्रकार आधुनिकता को ग्रहण कर हम अपने सन्दर्भ के साथ-साथ अपनी गतिविधियों को भी अंकित करते हैं। (24)

संयुक्त परिवार की परम्परा से विलग होकर भारतीय नारी अब एकल परिवार में जीना चाहती है। वह उपभोक्ता सामग्री न होकर निजत्व में जीना चाहती है। प्रसंगवश वेद प्रकाश अमिताभ का मत है कि नारी अब सोचने-समझने लगी है, यह पुरूष-वर्चस्व के लिए खतरे की घंटी है। 'न्यूड का बच्चा' (क्षमा शर्मा) में कुट्टी का कथन है -'आमतौर पर मैं औरतों को अधिक सोचने का समय नहीं देता। सोचते ही वे गड़बड़ करने लगती हैं। गड़बड़ यानी कि 'प्रतिवाद'। दोहरे प्रतिमानों का प्रतिवाद पुरूष वर्चस्व का प्रतिवाद। यह जरूरी नहीं कि सोचने और बोलने की शक्ति केवल शिक्षित नारियों के पास हो। नितान्त अनपढ और बेहद गरीब औरतें भी जब तब सच बोलने की ताकत जुटा लेती हैं। (25) यह बात और है कि ऐसी औरतों को पागल या सिरिना करार दिया जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'पगला गई है भगवती' में एक पाराश्रित विधवा और लगभग बेजुबान औरत एक दिन अन्याय के विरोध में बोल उठती है वह देखती है कि जिस पिता ने कुल प्रतिष्ठा के नाम पर अपनी बेटी को जहर दे दिया था, वही अपने बेटे के अन्तर्जातीय विवाह को हँसी-खुशी स्वीकार कर लेता है। भागवती उसके छद्म को चीर कर रख देती है -"मास्टर आन बिरादरी हतो तोका भलौ मानस हतौ। और जा बहू जाकी तुम आरती उतार रहे, कौन-सी असल ठाकुर की जाई है, जो तै हिन्दू तक नइयाँ। और चार महीना गरभ ! माधौ फिर आज दै दै बेटा को जहर जैसे मेरी अनसुइया को !!!" (26)

अकहानी आन्दोलन के अन्तर्गत नारी को केवल उपभोग वासनापूर्ति और ऐषणा तृप्ति का माध्यम मान लिया गया था। सिद्धेश कथाकार का

कथा-नायक कुछ वर्जित और कामोत्तेजक देखने की लालसा लिए औरतों की तलाश में, उनकी कल्पना करता हुआ घूमता है (नपुसंक सूराख) यहाँ सेक्स सामान्य नहीं रह गया है, वह अंगों से उठकर दिमाग में घुस गया है। उसकी भयावह फैण्टेसीज केवल मानसिक स्वैरकल्पनाएँ हैं जिनका यथार्थ से कोई रिश्ता नहीं है। उसकी तमाम जिन्दगी और अनुभव, संसार, असामान्य मन और मस्तिष्क की काल्पनिकता में घटता है। यह सच है कि 'शहर में रहते हुए उसका कवि-हृदय मर गया है या अब मन की जगह ठठरी मात्र रह गया है और इस ठठरी मन से निकला हुआ कथा-स्वर बौद्धिक और नकारात्मक तो होगा ही' (सिद्धेश का आत्मकथ्य) लेकिन एक भावुकता से छिटककर दूसरी भावुकता को सौंप दिये जाने की यह 'पेंडुलमी' गति ही क्या बौद्धिकता है ?

धनंजय वर्मा के विचारानुसार आधुनिकता का विवेक और संतुलन से क्या कुछ भी लेना देना नहीं है ? नकार की आवश्यकता है, लेकिन पूरे समाज, सभ्यता और साहित्य से नहीं, बल्कि एक विशेष समाज (व्यवस्था की) सभ्यता और उसके साहित्य से ही। निषेधवादी की यात्रा भी । अन्ततः किसी- न- किसी विधेयात्मक प्रेरणा से ही होती है। वह प्रदत्त कुछ को नकारता है, कुछ और पाने के लिए , यथा-स्थिति को बदलने के लिए, व्यापक सामाजिक और मानवीय हित के लिए । [27] जगदीश चतुर्वेदी, गंगाप्रसाद विमल , और श्रीकांत वर्मा ने बोहेमियेपन, पुरूषवादी वर्चस्व और अराजक प्रवृत्ति की कहानियाँ लिखी है। जो व्यवस्था को नारी-अंगो की प्रतीकात्मकता में कथ्य को चित्रित करते हुए विक्षोभ, विरोध और मानवीय विकृतियाँ का चित्रण करती है।

6.2 स्त्री-पुरूष सम्बन्ध : बदलते आयाम

आधुनिक जन-जीवन की आपाधापी एवं मध्यवर्गीय सुविधावादी जीवन की आकांक्षाओं ने स्त्री-पुरूष सम्बन्ध में अभूतपूर्व बदलाव रचा है। महानगरीय जीवन में जनसंख्या के घनत्व, यातायात की विडम्बना और रोजी-रोटी, व्यापार,अनुबंध और तरक्की की कामना ने स्त्रियों को अपनी देह के इस्तेमाल , शो-प्रदर्शन और तरक्की की लालसा से किसी भी सीमा तक जाने के लिए प्रेरित ही नहीं बल्कि विवश भी किया है।

पुरूष-वर्ग विवाहेत्तर संबंधों में ; अपने इच्छित-अभिलिप्सित सम्बन्धों में सुख के क्षण तलाशता है जो भले ही छद्म बनावटी उत्स हो। प्रेम की जगह वासना-देह सम्बन्धों में प्रतिबद्धता की जगह अवसर वादिता पनपी है। सामान्य पाठक वर्ग भी सस्ती रोमांटिक कथाओं में ज्यादा रस लेता है जबकि प्रबोध पाठक कथा साहित्य से गरिमा , नैतिकता, प्रेम-प्रसंगों में गंभीरता की अपेक्षा रखता है। प्रेम-प्रसंग रोमांच और साहस के प्रति-रूप है। अपने दुःसाहसी कृत्य और चित्रण में। प्रसंगवश डी.एच. लोरेन्स ने लिखा है -"संसार की आधी कविताएँ, चित्र और कहानियाँ अपने यौन अपील के कारण ही महान बन सकी हैं। यदि यौन भावनाओं को जगाने

मात्र के कारण साहित्य- विशेष पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है, तो चूँकि पुरूष के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पुरूष यौन भावना जाग्रत करने वाले होते हैं, सभी युवकों एवं युवतियों पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।" (28)

यथार्थपरक प्रेम-प्रसंग और इच्छित जीवन साथी के साथ व्यतीत किये गये क्षण आजीवन स्फूर्ति और प्रेरक-प्रसंग बन जाते है। विश्व प्रसिद्ध नृत्यांगना और फैशन डिजायनर इसाडोरा डंकन ने कहा है, हर प्रेम संबंध मेरे लिए एक सिम्फनी है। उसका यह कहना सही लगता है कि हर संबंध जो मेरे साथ जुड़ा मुझे अपने आप के भीतर एक नए व्यक्ति की तलाश करने में मदद करता था ऐसा लगता था मैं कोई अलग प्राणी हूँ। बार-बार जन्म लेने का ये अवसर मुझे ज्यादा रचनात्मक बनाए रखता था।

कथाकार राजेन्द्र यादव ने भी कहा है कि विभिन्न महिला मित्रों के सर्कल में , और शायद महिलाओं के लिए पुरूष मित्रों के बनिस्पत ज्यादा रचनाशील महसूस करना शुरू से ही शायद हर इंडीविजुअल राइटर का प्रेरणा श्रोत रहा है। पूरी कतार है रचनाकारों की। अब ये पूछा जा सकता है कि मैंने उसको ज्यों का त्यों क्यों स्वीकार कर लिया, या मैं ये मानकर क्यों चला कि लिखने के लिए इस तरह मित्रताएँ जरूरी है, ये मौज-मस्ती के लिए सुविधा-जनक तर्क है या कह नहीं सकता कि मैं पहले वालों की नकल कर रहा था या सचमुच यह सहज मानसिकता थी, जो मन्नू भण्डारी को बर्दाश्त ही नहीं थी। (29)

कभी फ्रांस के अस्तित्ववादी विचारों को ज्याँ पाल सार्त्र और सीमोन द बुआ ने अपने प्रेमप्रसंगों व देह प्रसंगों में उन्मुक्त आचरण की बात स्वीकारी थी और उसे अपने लेखन में प्रश्रय भी दिया था। उसी की तर्ज पर हिन्दी जगत में यौन-स्वतंत्रता का मूल स्वर लेकर लिखी गयी कहानियों में कृष्णा सोबती (मित्रों मर जानी), निर्मल वर्मा (धागे), राजेन्द्र यादव (जहाँ लक्ष्मी कैद है), उषा प्रियंवदा (सागर पार का संगीत), में यौन-शुचिता के तर्क को तिलांजलि दी गयी है। कुछ अन्य महत्वपूर्ण कहानियों में महेन्द्र भल्ला (एक पति के नोट्स), उषा प्रियंवदा (ट्रिप), राजेन्द्र यादव (फ्रेंच लेदर, खुले पंख, टूटे डैने), गिरीराज किशोर (रिश्ता), जगदीश चतुर्वेदी (निहंग, अंधेरे का आदमी का -संग्रह) का लेखन है। इन सब कहानियों का एक सशक्त पक्ष यह भी है कि काम-संबंधों का एक प्रकृत और ईमानदार पक्ष स्वीकार हुआ है और इन सम्बन्धों के चित्रण में कोई दुराव-छिपाव नहीं है। (30)

यौन मुक्ति के प्रसंगों और स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की अन्तर्जटिलता में कतिपय आलोचक मूल्यों, आदर्शो, चरित्रों के हनन की बात उठाते हैं। पर वे परम्परा की दुहाई देते हुए आधुनिकता बोध की प्रक्रिया से 'कछुआ धर्मी' प्रवृत्ति का इजहार करते हैं। कारण "जिस युग के मूल्य और स्थितियाँ समसामयिक नहीं होते, उनमें जड़ता आ जाती है और आधुनिकता की प्रक्रिया अवरूद्ध हो जाती है। (31) इस प्रकार समसामयिकता आधुनिकता की

प्रक्रिया को अग्रसारित तो करती ही है, वह उसे समझने में भी सहायक सिद्ध होती है।

भारतीय जीवन में भाषा, भोजन, भेष और नृत्य -संगीत , क्लब संस्कृति में पाश्चात्यीकरण की प्रक्रिया अपनायी जा रही है। डिस्को , रात्रि-पार्टी, बर्थ-डे, न्यू-ईयर सेलिब्रेशन में अन्धाधुन्ध धन खर्च किया जाता है और नयी युवा पीढ़ी जो नवकुबेरा परिचारों अथवा इन्फार्मेशन टेकनोलोजी की कमाऊ जेनरेशन है वह स्त्री-पुरूष के आपसी सम्बन्धों में यौन-मुक्ति के अवसरों को पूर्णतः उपभोगवादी प्रवृत्ति से अपनाती है। आज के चालीस-पचास साल पहले स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में पारम्परिक निर्वाह, समायोजन के मूल्य्त सक्रिय थे पर अब 'यूज एण्ड थ्रो' के उपभोक्तापरक मूल्य सक्रिय है।

कहना न होगा कि नयी कहानी आन्दोलन में नये-पुराने मूल्यों का संघर्ष परिव्याप्त रहा है पर अब नयी पीढ़ी नये उपभोक्तापरक मूल्यों को यौन मुक्ति को अपना रही है,। कमलेश्वर ने जिस समय एवं परिवेश को अपनी कहानी 'राजा निरबंसिया' का विषय बताया है, उसमें पारंपरिक मूल्यों की यही स्थिति है। ग्रामीण समाज में उनका पूरा प्रभाव है, यों शहरी प्रभाव और शिक्षा ने वहाँ के कुछ लोगों के आचार-विचारों को अवश्य प्रभावित किया है। यह प्रभावित वर्ग गाँव का अपेक्षाकृत प्रबुद्ध वर्ग कहा जा सकता है। किन्तु शेष जनमानस उसी जड़ता और अंधविश्वासों के कूप अंधकार में अब भी रहा है। (32)

दीप्ति खण्डेलवाल की 'हव्वा' कहानी, कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी', महीप सिंह की 'कील', महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नोट्स' कहानी, मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' रचना सातवें-आठवें दशक के परिवर्तित मानस और स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की कहानी है। पर अब इक्कीसवीं शताब्दी की दहलीज पर कृष्ण बिहारी की 'दो बहनें' और रोहिताश्व कृत 'दोना पावला और तीन औरतें' तथा 'देह का अनहद राग' रचना स्त्री-पुरूष के परिवर्तित सम्बन्धों में संजीदगी नयी नैतिकता और नये तेवर को रेखांकित करती है।

कहना न होगा कि कमलेश्वर ने अपनी अधिकांश कहानियाँ निम्नमध्यवर्ग और मध्यवर्ग के लोगों और परिवेश को लेकर लिखी हैं। 'राजा निरबंसिया' में निम्न मध्यवर्गीय मानसिकता का बहुत ही सूक्ष्म निरूपण मिलता है। मध्यवर्गीय चेतना को अर्थतंत्र और उसकी जकड़ और शोषण इतना आकांत किए हुए हैं कि जीवन के और पक्ष भी उसी से संचालित-परिचालित लगते हैं और आर्थिक विवशता की कसक भरी प्रतिक्रिया उसमें जीवन की सामान्य क्रियाओं के प्रति भी एक निषेधात्मक भाव भर देती है। घर में तेल न होने पर जगपती का आत्मरत आक्रोश इतना गहरा है कि चन्दा के बच्चा न हो पाने की असमर्थता से वह उसे शायद अनायास ही किन्तु सीधे जोड़ देता है। (33)

प्राचीन काल में अगर स्त्री वंध्या हो तो आठ वर्ष प्रतीक्षा के बाद पुरूष दूसरा विवाह रचा सकता था और पुरूष अगर प्रजनन क्रिया में

असमर्थ हो तो स्त्री नियोग प्रथा अपना लेती थी। पर वर्तमान दौर में विवाहेत्तर देह सम्बन्ध या तो आर्थिक विवशता है या मन बहलाव का अवसर वादी माध्यम। कभी-कभी तनाव और एकरसता से ऊब जाने पर भी देह-मुक्ति और यौन मुक्ति के प्रसंग तलाशे जा सकते हैं। (34)

'राजा निरबंसिया' कहानी परम्परा और आधुनिकता बोध की,पुराने मूल्य और नयी जीवन शैली के संक्रमण की कहानी है। जिसमें कम्पाउण्डर बचन सिंह के मर्मस्पर्शी व्यवहार से चन्दा स्वाभाविक अनुग्रह तो करती है किन्तु सांस्कारिक होने के कारण उसमें एक 'पाप बोध' उभर आता है। उसकी अंतश्चेतना बार-बार अनजाने पाप कर बैठने का अपराध बोध उसमें जगा जाती है। यह कमलेश्वर की ही खूबी है कि वे बड़ी सूक्ष्मता से भारतीय संस्कार और आज की आधुनिक चेतना के बीच नारी के द्वंद्व को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। पचास के आसपास भारतीय ग्राम परिवेश में ही नहीं ; नगरीय परिवेश में भी संस्कारगत पापबोध चेतना बहुत गहरी रही है। पर बढ़ती हुई शिक्षा और वैज्ञानिक प्रभावों के साथ बढ़ते हुए बौद्धिक दृष्टिकोण ने इस पाप बोध को क्रमशः बहुत कुछ कम कर दिया है। (35)

विगत तीस-चालीस वर्षो में समकालीन हिन्दी कहानीकारों ने स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बदलाव और नयी पहल पर अनेक रचनाएँ लिखी है। जिनमें कमलेश्वर की 'मांस का दरिया', 'तलाश', कृष्ण बलदेव वैद की 'दूसरे का बिस्तर', कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी', 'यारों के यार', रमेश बक्षी की 'पिता-दर-पिता', उषा प्रियंवदा की 'मछलियाँ', 'संबंध', दूधनाथ सिंह की 'रीछ', 'रक्तपात', रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', महीप सिंह की 'कील', ममता कालिया की ' जिन्दगी सात घण्टे बाद की', निर्मल वर्मा की 'लवर्स', रघुवीर सहाय की 'प्रेमिका', नरेश मेहता की 'एक समर्पित महिला', मोहन राकेश की ' फौलाद का आकाश', मृदुला गर्ग की 'कितनी कैदें', राजेन्द्र यादव की 'टूटना', 'प्रतीक्षा', महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नोट्स', मन्नू भण्डारी की 'यही सच है', योगेश गुप्त की 'बड़े शहर के ताबूत', ज्ञानरंजन की 'छलांग', धर्मवीर भारती की 'सावित्री नम्बर दो', शैलेश मटियानी की 'तीसरा सुख', भीष्म साहनी की 'अभी तो मैं जवान हूँ', 'कटघरे', शिवप्रसाद सिंह की 'मुरदा सराय', रेणु की 'जड़ाऊ मुखड़ा' आदि सेक्स चित्रण की दृष्टि से प्रमुख कहानियाँ हैं। (36)

वर्तमान दौर में कहीं पुरूष-वर्ग-स्त्री की विवशता, कारूणिक स्थिति या मनचाही प्रगति का झाँसा देकर उसका इस्तेमाल कर रहा है तो स्त्री वर्ग में विशेषकर उच्चवर्ग की स्त्रियाँ अपने ऐश और आराम देह सुख या मनोरंजन के लिए पुरूष का इस्तेमाल कर रहीं हैं। शैलेश मटियानी,रवीन्द्र वर्मा और कृष्ण बिहारी आदि की रचनाएँ इसके कटु साक्ष्य है। स्त्री-मुक्ति और स्त्री स्वतन्त्रता के इस युग में भी स्त्री का पुरूष द्वारा किस प्रकार इस्तेमाल हो रहा है, इस समस्या को रूपायित किया है। कुसुम अंसल मे अपनी कहानी 'इंतजार' में। ये नारियाँ शोषण की साजिश चंगुल में अनायास फँसती चली

जाती है और इससे उभरने वाली स्थितियों को स्वीकार कर लेती है। वे भीतर ही भीतर कहीं मुक्ति के लिए छटपटाती हैं। विवेच्य कहानी में किसी कार्यालय में काम करने वाली देविशा का पति विशाल चाहता है कि पत्नी सब कुछ देकर भी ऑफिस में तरक्की करे। वह यह जानकर भी उसे नहीं फटकारता कि देविशा अपने बॉस मनुज गोस्वामी के साथ क्यों घूमने जाती है। उसने देविशा से कहा - "मनुज गोस्वामी से अच्छी खासी दोस्ती है तुम्हारी... तुम समझती तो हो... अभी तक तुम्हारी तरक्की क्यों नहीं हुई....कुछ तो करना ही होगा।" (37)

यहाँ यह संकेत भी मिलते हैं कि वह तरक्की के लिए सब कुछ कर सकती है। इसके विपरीत जब देविशा किसी पराये पुरूष से मिलती है तो बिल्कुल 'कोल्ड' बन जाती है। उसका अचेतन मन बॉस मनुज को स्वीकार नहीं करता। पति से विशेष कुछ न प्राप्त होने पर भी भारतीय नारी प्राचीन संस्कारों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाती। कहना न होगा कि पुरूष वर्ग अपनी यौनै कांक्षा कहीं भी पूरी कर लेगा पर स्त्री वर्ग वर्जनाओं के व्यूह में, गरिमा की दासता-चक्र में, परिवार की वेदी-चक्र में पीसी जाती है।

स्त्री-वर्ग हमेशा परम्परा और आधुनिकता, वर्जना और इच्छित तृष्णा प्रगति और समझौते के पाटों के बीच दोहरे मापदण्ड अपनाने को विवश है। प्रसंगवश रमेश बक्षी की 'पिता-दर-पिता' जगदीश चतुर्वेदी की 'अधखिले गुलाब' की कहानियाँ , माहेश्वर की 'अस्वीकार बंद', 'बैकुअम', 'स्पर्श', गिरिराज मिश्र की 'शहर-दर-शहर' आदि की कहानियाँ ,गोविन्द मिश्र की 'कचकौंध' ,विमल की 'सिद्धार्थ का लौटना' , दीप्ति खण्डेलवाल की 'कड़वे सच' की कहानियाँ, मृदुला गर्ग की 'कितनी कैदें', निरूपमा सेवती की 'आतंक बीज', मणिका मोहनी की 'अनल-की नंबर' , परेश की 'शहर आ गया', 'शामली', रमेश उपाध्याय की 'दूसरी पवित्रा' आदि कहानियों में घर परिवार के सम्बन्ध में रिश्तों की पुनर्व्याख्या की गई और प्रेम तथा विवाह आदि के सम्बन्ध में विकसित नई सोच को वाणी दी गई। (38)

कहना न होगा कि स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में अलगाव बोध ,तनाव, और एकाकीपन पनता है। समस्त मानवीय रिश्तों और सम्बन्धों पर परिवर्तित मूल्य दृष्टि ने पुनःविचार किया जा सकता है। आधुनिक समय में सम्बन्धोंके बीच अनाम दूरियाँ आ गई हैं। सम्बन्धों में तनाव, ऊब, टूटन, जटिलता और न चाहते हुए भी सम्बन्धों को ढोने की विवशता आदि की यथार्थ प्रस्तुति समकालीन कहानी में देखी जा सकती है। मानव जीवन में जहाँ मानवीय सम्बन्धों का अथाह सागर लहराता है फिर भी मनुष्य अपने को नितान्त अकेला अनुभव करता है। सम्बन्धों के जमघट में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की जटिलता को समकालीन कहानी में बड़ी बारीकी के साथ उजागर किया गया है।

प्रसंगवश चित्रा मृदगल की कहानी 'लकड़बग्घा' की पछांहवाली चौका-बासन करके अपने जेठ के आसरे जीवन गुजार रही है। विधवा होने तथा इकलौती बेटी को पढ़ाने की कामना से उसमें एक आत्मनिर्भरता की भावना

पैदा हो जाती है जो उसे पारम्पारिक परिवार के हिमायती जेठ के विरूद्ध विद्रोह की हिम्मत देता है। वह कहती है - "हड़कम्प मची तो मचत रही दिदिया... इस कोठरिया से बाहर न निकरब।" लंबरदारिन के सारे प्रहार निरस्त कर दिस पंछाहवाली ने। धौंस नहीं सहेगी अब किसी की। पछांहवाली का जीवन ढोर-ढोमारो से भी बदतर था, बन्धनों से ग्रस्त था लेकिन उसमें यह साहस दिखाकर लेखिका ने नारी चेतना को जगाया है। भले ही यह अधिकार उसे न मिले, परन्तु वह एक आत्मनिर्भर सोच से क्रूर तथा कठोर जेठ को उद्विग्न और विचलित कर ही देती है। मजदूरी पेशा अथवा बर्तन-बासन मांजनेवाली नारी की मनोवृत्ति में परिवर्तन को भी लेखिका ने बखूबी चित्रित किया। (39) 'सुख' कहानी की नौकरानी फूली की तमाम आवश्यकताओं तथा नखरों को सुमंगला झेल रही थी। विश्वविद्यालय की नौकरी के कारण घर के काम-काज के लिए फूली को रखा गया। पर उसकी मनमानी से सुमंगला हैरान हो जाती है और अंत में फूली भी काम छोड़कर इसलिए जाती है कि सुमंगला के घर में कोई मर्द नहीं था। इस प्रकार फूली जैसी नारियाँ भी भले चौका-बर्तन का काम करती हों पर देह-सुख और अपनी इच्छा को महत्व देती प्रतीत होती हैं। इससे यह दृष्टिगोचर होता है कि नारी चाहे जिस तब्के की हो आत्मनिर्भरता का भाव उनके जीवन में महत्वपूर्ण अंग के रूप में है। अलका सरावगी की कहानी 'खिजाब' की दमयंती एक आत्मनिर्भर नारी है तथा जीवन को अकेले ही अपने ढंग से जीती है - "दमयंती जी का अकेलापन उनका अपना चुना हुआ था। अपने लड़के-बहू के नीचे दबकर रहने को तैयार नहीं थी। अपने अकेलेपन की शिकायत करते या उस पर दुखी होते उन्हें कभी देखा भी नहीं था।"(40) इस स्थिति को देखकर यह प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच वह जैसा चाहती है वैसा जीवन जी पाती है ? क्या समाज की वह परवाह नहीं करना चाहती है ? 'मिसेज डिसूजा के नाम' की सुस्मिता गुप्ता भी यही सवाल अपनी बेटी के स्कूल की प्रिंसिपल से करती है -" क्या आप भी औरों की तरह यही सोचती हैं कि औरतों को अपने लिए जीने का कोई अधिकार नहीं है ? क्या मेरे जीवन में वंदिता और संगिता एक साथ नहीं रह सकते ? मेहनत मुझे करनी है परेशानी मुझे होती है-किसी और को इससे क्या मतलब ?" इस कहानी के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अलका सरावगी की ये नारी-पात्र अपनी इच्छानुसार जीवन जीती है। इसके लिए वे समाज की चिंता नहीं करती, क्योंकि समाज की शर्तों पर जीना आज नारी के लिए कठिन हो रहा है। (41)

मृदुला गर्ग की कहानी 'डैफोडिल जल रहे हैं' की जिना अपनी मृत्यु को लेकर निर्णय करती है। वह कहती है - "आज से दो महीने पहले मैंने तय कर लिया था, कि अपनी मौत के लिए वक्त और जगह मैं खुद चुनूँगी ... मैंने तय कर लिया, अब आगे सफर नहीं करूंगी।" उसका जीवन के प्रति देखने का यह दृष्टिकोण अद्भुत है। नारी अब इतनी सक्षम हो रही है,और वह तय कर रही है कि उसे दूसरों के कहे अनुसार जीवन जीना है

या खुद अपना जीवन सुंदर बना लेना है। जीवन अपनी शर्तो पर जीना है। (42)

मृदुला गर्ग की जिना एक ऐसी नारी पात्र है जो सुंदर जीवन के साथ-साथ सुंदर मृत्यु का भी वरण अपनी इच्छानुसार ही करती है। कहना न होगा कि यह साहस मृदुला गर्ग की नायिका कर सकती है। 'कुसुम अंसल' की जाहन्वी देवी, देविशा तथा नीना की पारिवारिक स्थितियाँ अलग-अलग हैं। लेकिन इन दो नारी पात्रों के जीवन में पति की भूमिका गौण है। कहानी में ये ही पूरी तरह छाई हुई है और ये नारियाँ अपनी इच्छानुसार ही जीवन को चुनती हैं। कोई पूरी तरह स्वेच्छा से जी रही है तो किसी को आंशिक रूप से इसमें सफलता मिलती है।

वास्तव में नारी के अधिकारों में अपनी इच्छा के अनुसार जीवन जीने का यह अधिकार प्राप्त करना भारतीय परिवेश में पली नारियों के लिए पूरी तरह संभव नहीं हो पाता। समाज के परिवर्तन के कारण इनकी सोच तथा व्यवहार में अवश्य परिवर्तन हुआ है। आगे भी हो रहा है। स्त्री आंशिक रूप में ही सही जीवन को अपनी इच्छानुसार ढाल रही है। (43)

वास्तव में उच्छृंखल जीवन जीकर न तो इहलोक साधा जा सकता है और न परलोक। युवा काल में हर स्त्री-पुरूष अपनी आकांक्षाओं और इच्छाओं के अतृप्त रहते हुए भी समझौता परक जीवन शैली अपनाता है। पर उच्च वर्ग और उच्चमध्य वर्ग के पात्र अपनी यौनांकांक्षा और देह-मुक्ति के अवसर तलाशने में अक्सर सफल हो जाते हैं। प्रसंगवश ममता कालिया की कहानी 'दो जरूरी चेहरे' में यौन संबंधों का चित्रण बड़ी ही यथार्थता लिए हुए है। इस कहानी में विवाह पूर्व प्रेम और नायक-नायिका के प्रेम-संबंधों का चित्रण बड़ा ही रोचक बन पड़ा है। इस कहानी में नायिका अपने विधुर भाई की चहेती बहन है। वह अपने भाई को इतना स्नेह करती है कि उसे किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहती। लेकिन जैसे ही कहानी का नायक श्याम उसके संपर्क में आता है, तो वह उस पर इतनी अधिक आकर्षित हो जाती है कि वह अपने भाई को 'छोड़े या न छोड़े' की दुविधा में पड़ जाती है। कहानी में वर्णन है -

"और श्याम ! उसने पहले ही दिन यों उधाड़कर सामने रख दिया 'ले देख, यह होता है लड़का और यह होती है लड़की और यह होता है रिश्ता !' मैं डर के मारे चीख भी नहीं पाई। खाली आँखों में यह रहस्योद्घाटन बैठ नहीं रहा था। श्याम झुंझलाकर बोला, " तू डरेगी या प्यार भी करेगी ? जिस्म है कि पानी !"xxx मुझे बुरा लगा था। आभास हुआ, उसने मेरी शान के खिलाफ कुछ कहा है और मैं विरोध में कस गई थी उससे।"

"श्याम ने दूसरे दिन भी पूछा था। पूछा भी कैसे !"

"कल जो हुआ रोज हो तो !"

"उई, मैं मर जाऊँ सच !" मेरी सांस वाकई रूकने लगी थी।

"मैं मरने नहीं दूंगा अब।" (44)

इस प्रकार के यौन-संबंधों के पश्चात 'दो जरूरी चेहरे' की नायिका बाद में अपने प्रेमी से विवाह कर लेती है।

लेकिन ममता कालिया की 'दो जरूरी चेहरे' कहानी के वर्णन में फूहड़ता है कलात्मकता नहीं। कृष्ण बिहारी की 'दो बहने'(हंस में प्रकाशित) कहानी और चारित्रिक विकास और स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की सहज विश्वसनीय और बेबाक अभिव्यक्ति है। प्रसंगवश मंजुल भगत की कहानी 'छुरी-काँटे' में पति की गुलामी से रिहाई को बहुत मूल्यवान माना गया है। इस कहानी में जर्मनी की यूटा और भारत की चांदनी की पीड़ा एक है। यूटा बहुत मुश्किल से अपने तुर्क पति से मुक्ति पाती है। वह अपने बेटे को जैसे-तैसे हासिल कर पाती है। इसलिए नमन द्वारा चांदनी को जबर्दस्त विच्छेद के लिए राजी करने को एक वरदान बताती है -"तुम्हें उस पागल कशमकश से मुक्ति मिल रही है, यही बड़ी बात है। अब तुम डूबोगी नहीं तैरोगी। मेरे वाला भी समझता था कि उससे अलहदा होकर मैं तबाह हो जाऊँगी। पर ऐसा नहीं हुआ।" यह कहानी संकेत देती है कि यदि पति केवल दुख देने का निमित्त है तो उससे मुक्ति जरूरी है। और यह केवल हिन्दुस्तान की त्रासदी नहीं है, यह यूरोप का सच भी है। 'वापसी' (विजय) की ताई ने भी इसी कुरूप सत्य को अपने ढंग से प्रस्तुत किया है कि नारी का उत्पीड़न एक सार्वकालिक सत्य है। उनके अनुसार, औरत महल की हो, देवलोक की हो और पाप आदमी का हो या देवता का , जुल्म औरत को ही सहना पड़ता है। (45)

मेहरून्निसा परवेज ने 'बंजर दुपहर' कहानी में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के ठण्डेपन को, पति-पत्नी के आपसी उबाऊ-एकरसता वाले सम्बन्धों को चित्रित करती है। कारण महानगरीय परिवेश में परिवारेतर जिम्मेदारियों के कारण पति-पत्नी के सम्बन्धों में अक्सर घुटन भरी ऐसी स्थिति आती है कि दोनों ठण्डेपन और खीझ से भरकर एक दूसरे की जरूरत को पूरा कर रहे है। XXX विवेच्य कहानी में सपन को पति की अनुपस्थिति खलती है और उसे लगता है -"शायद हर शादी-शुदा मर्द शादी के चार पाँच साल बाद पत्नी को एक काम करने वाली मशीन समझता है। (46) परन्तु इस स्थिति का बोध परम्परागत नारी को नहीं था। वह इसी तरह के जीवन की अभ्यस्त थी। हर पढ़ी-लिखी नारी की तरह सपन सोचती है - "शायद इसी वातावरण से बचने के लिए विदेशी अपना पार्टनर बदलते रहते हैं। वहाँ जीवन एक छलकता जाम है..हर आदमी ऊब से भरा जल्दी-जल्दी जीवन को खत्म करना चाहता है।" लेकिन कुछ समय के बाद अपने ही विचारों से वह बुरी तरह से थक जाती है। घबराकर वह अपने को झटकती है। सपन के द्वारा लेखिका ने नारी की नयी मानसिकता को उजागर किया है, जो अपने पति के ठण्डेपन और अजनबीपन से खीझती है। यहाँ पति-पत्नी के बदलते हुए सम्बन्धों को रेखांकित किया गया है। (47)

जरूरी नहीं है कि निम्नवर्ग की स्त्री जिस्मफरोशी के चक्रव्यूह में फँसे। श्रमिक वर्ग की रहकर वह आत्मनिर्भर जीवन जी लेती है और

उच्चमध्य वर्ग की स्त्री विष्णु प्रभाकर की 'ठेका' कहानी की नायिका की तरह अपनी नारी-देह का इस्तेमाल पासपोर्ट और फ्री-वीसा की तरह कर ले। स्त्री-पुरूष के बदलते सम्बन्धों पर दीप्ति खण्डेलवाल ने 'हव्वा' और 'जमीन' कहानी लिखी है। प्रसंगवश दीप्ति खण्डेलवाल ने 'जमीन' कहानी में परिस्थितिगत भिन्नता के बीच दो विवाहित जोड़ों की मानसिकता स्पष्ट की है। एक ओर अनाथों में पलने वाली फूला है, जिसका पति आर्थिक विपन्नता के बावजूद उसे नौकरी नहीं करने देता। दूसरी ओर 'वह' है, जिसका पति अपनी पदोन्नति के लिए उसे दूसरे के साथ नाचने को कहता है। फूला अभावों के बाद भी पति से जुड़ी है तथा वह संपन्नता के बाद भी पति से दूर है। वह भी फूला की तरह विपन्नता में भी निकटता की अनुभूति पाना चाहती है। (48)

महानगरों में आजकल आत्मनिर्भर स्त्री-पुरूष अपने मन चाहे साथी के साथ जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। परन्तु कुछ हफ्तों-महीनों के बाद उनकी दैहिक और वासना परक इच्छाएँ अपनी तृप्ति के लिए दूसरा पात्र चुन लेना चाहती है, तो अलगाव और नयी तलाश के परिच्छेद खुल जाते है। XXX फ्री लीविंग यानी शादी के बिना साथ रहने वाले स्त्री-पुरूषों की संख्या कहीं कम या ज्यादा है यानि मनुष्य यथार्थ को स्वीकार नहीं करता। ढोंग, पाखंड को बनाए रखता है। उसका मन कहता है कि स्वच्छंद प्रेम तथा काम सम्बन्ध बनाए परन्तु अनुभव सिखाता है कि प्रेम की रूमानी परत हमेशा नहीं रहती। सहवास हमेशा परम तृप्ति दायक नहीं रहता।

प्रेम और वासना का ज्वार उतर जाने के बाद यदि स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों में कुछ भावनात्मक लगाव शेष नहीं रह जाता है तो एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा और तीसरे के बाद चौथा सम्बन्ध तो स्त्री-पुरूष के सम्बन्ध जैसा भी नहीं रह जाता। यदि ऐसा होगा तब अकेली स्त्री और अकेला पुरूष के पास तो स्मृतियाँ भी जीने लायक नहीं बचेगी। (49) उनकी देह कमोबेश रूप से 'कोजागिर पुनव' के पुरूष पात्र की तरह रहेगी.. जो अक्सर होटलों के कमरों में बिछी सफेद चादर होती है, जिस पर न जाने कितने पर्यटक-यात्री आये और रात बिताकर चले गये। (50)

वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में,.. वेश्यावृत्ति संसार का पुरातन उपादान रहकर भी.. नये परिवेश और मूल्यचक्र में पुनः एशियाई देशों का उत्पादन और निर्यात कर्म रह गया है। कारण वैश्वीकरण के इस दौर में जनहित व जनकल्याण की भावना पूँजीवाद की उग्रता और विखंडित सम्बन्धों में बदल चुकी है। कात्यायनी ने अपनी पुस्तक 'दुर्गद्वार पर दस्तक' में लिखा है "निजीकरण और डिरेग्युलेशन और ढाँचागत समायोजन का एकमात्र उद्देश्य पूँजीवाद को उसके क्लासिकी रूप में एक बार फिर बहाल करना है जिसमें पूँजीवाद की जो बुनियादी प्रवृत्तियाँ शुरू से उसके भीतर मौजूद रही है, वे एकदम सतह पर उभर आई है। ये प्रवृत्तियाँ हैं -हर चीज को माल में तब्दील कर देना और अतिलाभ अर्जित करने और उग्र होती जा रही बाजार की प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए पूँजीपतियों के द्वारा सस्ते से

सस्ते श्रम के स्त्रोतों की तलाश और आज दुनिया में सबसे सस्ता श्रम है तीसरी दुनिया के देशों की निम्न मध्यवर्गीय और मेहनतकश स्त्रियों का जिस्म जिस पर तमाम बहुराष्ट्रीय निगम गिद्धों की तरह टूट पड़े हैं। (52) XXX अरब देशो और खाडी के प्रांतो में नियति होने वाली मुस्लिम औरतों पर कभी 'बाजार' फिल्म बनी थी तो कोंकणी में इस पर 'कार्मेलीन' उपन्यास दामोदर मावजों ने रचा है। कृष्ण बिहारी ने 'दो बहने' कहानी के माध्यम से पंचसितारा होटलों में होने वाले देह-व्यापार का पर्दाफाश किया है।

6.3 देह मुक्ति और नयी नैतिकता

स्त्री-पुरूष एकान्तिक क्षणों में जो समय देहराग के व्यतीत करते हैं वह भ्रांतिजनक रूप से एक साथ बिताया हुआ समय लगता है। किन्तु दोनों साथियों के लिए बिताये गये क्षणों का मूल्य एक सा नहीं होता। प्रेमी जो शाम अपनी प्रेमिका के साथ बिताता है, उसको वह अपने कैरियर और दोस्तों के साथ व्यावसायिक संबंधों को बढाने में लगा सकता था। पुरूष वर्ग चूँकि विधेयक रूप से समाज से जुड़ा है इसलिए उसके लिए समय का मूल्य अधिक है।[52]

"पुरूष को प्रेम के अलावा पैसा इज्जत और सुख सब चाहिए, लेकिन बेकार बैठी हुयी बोर होती हुई स्त्री के लिए समय एक बोझ होता है। उसे किसी न किसी प्रकार समय काटना है और जब वह येन-केन- प्रकारेण समय गुजार पाती है तो अपने को लाभान्वित समझती है। पुरूष की सबसे अधिक रूचि सेक्स में रहती है। यदि उसका वश चले तो सम्भोग में लगनेवाले समय के अलावा वह एक क्षण भी स्त्री के साथ न रहे जबकि औरत जितना भी बचा हुआ फालतू समय है, उसका पूरा फायदा इसी वक्त वसूलना चाहती है। (53) स्त्री अपनी देह तब तक समर्पित नहीं करती जब तक प्रेमी उससे घण्टों न बातें कर लें, उसकी मनोच्छाओं को पूरी न करे या कहीं विहार के लिए न ले जाये। देह-सम्पर्क और वासना पूर्ति के क्षणों में वह उद्दाम नदी की तरह बाँध तोड कर बहना चाहती है... वह अपने समर्पण का पूरा प्रतिदान चाहती है और तब पुरूष को लगता है ऐसे प्रेम संबंध से प्रेम संबंध न होना अच्छा। स्त्री की अपनी मांग अधिक होती है और पुरूष स्खलित होता हुआ निरूपाय महसूस करता है XXX दोनों के बीच दोहरे तनाव की कीमत पर संतुलन आता है। वह सोचती है सौदे में उसने अपनी देह समर्पित की है और पुरूष सोचता है ऐसे शरीर की वह महंगी कीमत आँक रही है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने प्लेटोनिक प्रेम की कहानी 'उसने कहा था' कभी बींसवी शताब्दी के प्रारंभ में रची थी पर अब इक्कीसवीं सदी में 'हुस्न खुद बेताब है अपना जलवा दिखाने के लिए ,जिसका परिणाम जयाजादवानी, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, दीप्ति खण्डेलवाल, और मैत्रेयी पुष्पा की कहानियाँ हैं।

स्त्री वर्ग अगर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और कमाऊ है तो कामना-त्मक जीवन और यौन-स्वच्छन्दता की बात 'नयी नैतिकता' के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण मानी जायेगी। परिणामतः सुरेन्द्र वर्मा कृत 'मुझे चाँद चाहिए' जैसी कृति सामने आयेगी। वैवाहिक सम्बन्धों में सम्भोग एक नारी के लिए कर्तव्य बन जाता है चाहे-अन-चाहे क्षणों में केवल कुछ आर्थिक सुविधाओं के बदले जो घृणित प्रथा है। स्त्रियों को ऐच्छिक मातृत्व मिले और बच्चों का भार सरकार सम्भाले बिना उन बच्चों को माँ की कोख से छीने, तो बात नयी नैतिकता की होगी।

समकालीन कहानी की विभिन्न रचनाओं में आत्मनिर्भर सुशिक्षित और आत्मचेतस नारियों के उदाहरण मिलते हैं जो स्वेच्छा से यौन संबंध स्थापित करती हुयी पुरूष वर्चस्व को नकारती है।" समकालीन कहानी ने नये नैतिकता बोध को ग्रहण कर प्रेम-विवाह और यौन सम्बन्धों में एक बहुत खुली दृष्टि अपनाई। पुरूष कहानीकार ही नहीं अपितु महिला कहानीकारों ने भी बहुत अधिक बोल्ड कहानियाँ लिखकर इस नई नैतिकता का परिचय दिया। इन कहानियों में काम-भावना, यौन को शरीर-धर्म के रूप में स्वीकृत कर नैतिकता के समस्त स्थापित प्रतिमानों को छिन्न-विछिन्न कर दिया गया। (54)

समकालीन कहानी की पूर्व पीठिका के दौर में प्रेमचन्द युगीन कहानियाँ आदर्शवादी सोच, आर्य समाजी सुधार भावना और प्रगतिशील आस्था से रची गयी थी। कहीं संयुक्त परिवार की अन्तर्जटिलताएँ स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में उभरती थी (विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक- ताई) कहीं आर्थिक विषमता से नग्न नारी और कुमारिकाएँ परदे में रहती थी। (यशपाल - 'परदा') कहीं प्रेम की टीस और विवशता थी। (चतुरसेन शास्त्री - 'दुखवा कासे कहूँ सजनी') पर नयी कहानी आन्दोलन में सामाजिक आर्थिक की परवशता मन्नू भण्डारी (यही सच है), उषा प्रियंवदा (वापसी), उभरकर आयी ... जिसकी कटु यौन परक अभिव्यक्ति कमलेश्वर कृत 'मांस का दरिया' कहानी में देखी जा सकती है और बौद्धिक परवशता का प्रमाण निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' रचना में उपलब्ध होता है।

वेश्यावृत्ति का चलन प्रेमचन्द के दौर में भी रहा है और गांधीवादी रचनाकार जैनेन्द्र के समय में भी। साध्य है अर्चना वर्मा और राजेन्द्र यादव की वार्ता का, "प्रेमचन्द परिवारी आदमी थे पर कैसे परिवारी आदमी थे। दो शादियाँ कर रखी थी। शिवरानी ने संकेत किया था। उस समाज में ये सुविधा थी कि आप इस तरह के संपर्कों के लिए बाजार जा सकते थे। क्योंकि समाज में इस तरह से मिलने-जुलने की सम्भावना नहीं थी। तो उस जमाने की रचनाओं में बहुत ईमानदार किस्म की समर्पित वेश्याएँ हैं। जैसा शरतचन्द्र में है। कम से कम बहस के स्तर पर शरतचन्द्र में ज्यादा खुला समाज है। (55)

'शेष प्रश्न' में कमल और गौरा की बहसें हैं। बौद्धिक रूप से उस समय समाज में जो चर्निंग हो रही थी, वह बाद में व्यवहार में आने लगी

तो दिक्कतें पैदा होने लगीं। थोड़ा कन्फेंस करूँ तो, यह गेम मुझे हमेशा एक नया कॉन्फीडेंस देता रहा, मानो आई.एम.ए परफैक्ट मैन, एनादर फेस ऑफ कॉन्फीडेन्स। यह एक क्रूर सच्चाई है कि अपोजिट सेक्स आपका मानसिक रूप से कायाकल्प करता है, यह कहूँ कि स्त्री का साथ , स्त्री की निकटता, घनिष्ठता आपको पुनर्जीवित करती है एक चमत्कार की तरह। अब संपर्क कितना रहता है, क्या रहता है, यह अलग बात है। वो संपर्क साल का भी हो सकता है और दो साल का भी, और आनी-जानी माया भी जिसको चिन्तकों ने अपने ढंग से जस्टीफाई किया है। जैनेन्द्र ने 'एक रात' कहानी में। एक रात वो उसके साथ लगभग निर्वस्त्र होकर गोदी में सोती है। पर ये सब गांधीवादी लोगों का काम था। (यह कथन प्रकारान्तर से रचनात्मक व्यंग्य है)

विवेच्य प्रसंग में सृजनात्मक प्रश्न यह है कि यौन प्रसंगों का चित्रण क्या रचनाकार चटकारे लेने के लिए करता है या वह कथा-रचना की अपेक्षित मांग है ? देह मुक्ति के प्रसंग , यौन कर्मो के वर्णन वास्तव में सेलेबल कामाडिटी है पर "कहानी के कहानीपन की सफलता का अर्थ है उसकी अर्थवत्ता या सार्थकता। नये कहानीकार कहानी की इस शक्ति से भली भाँति परिचित रहे हैं। 'राजा निरबंसिया' में कहानीपन की रक्षा करने वाले लेखक ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "केवल सोद्देश्यता की पृष्ठिभूमि में ही आज के लेखक की कहानियों का अध्ययन किया जा सकता है। (56)

'मांस का दरिया' कहानी हो या 'नीली झील'(कमलेश्वर), 'तीसरी कसम' हो या 'रसप्रिया' (रेणु), 'तिरिया चरितर' हो या 'कसाई बाड़ा' (शिवमूर्ति) 'चिन्हार' हो या 'गोमा हँसती है'(मैत्रेयी पुष्पा) XXX 'हव्वा' (दीप्ति खण्डेलवाल) हो या 'नौ साल छोटी पत्नी' (रवीन्द्र कालिया), एक समर्थ कहानीकार जीवन की छोटी-से-छोटी घटना के अर्थ के स्तर-पर-स्तर उद्घाटित करता हुआ उसकी व्याप्ति को मानवीय सत्य की सीमा तक पहुँच देता है। कहना न होगा समर्थ कहानीकारों राजेन्द्र यादव (टूटना), मोहन राकेश (सुहागिनें) कमलेश्वर (राजा निरबंसिया) आदि ने यौन-प्रसंगों ,देह-संपर्को और प्रेम-वर्णनों में मानवीय सत्य ही उजागर किया है। स्त्री-पुरूष के आत्यंतिक क्षणों का ।

कहा जा सकता है कि कमलेश्वर ने देह-प्रसंगों के चटकारे के लिए 'राजा निरबंसिया' कहानी लिखी है। वह कथा-संरचना की शर्त की तहत जगपति के नपुंसकत्व के लिए कार्य-कारण सम्बन्धों का तिलिस्म भी उकेरते हैं। XXX चन्दा के राजा निरबंसिया को रिश्तेदारी की एक शादी में जाना पड़ा था और वह यह कहकर गया था कि दसवें दिन जरूर वापस आ जाएगा। पर इससे पहले ही खबर मिली कि रिश्तेदार दयाराम का घर लड़कीवालों ने सोने-चांदी से पाट दिया है। इसके बाद दूसरी खबर भी मिली कि जिस रोज जगपति चलने वाला था, उसी रात डाका पड़ा। तेल पिलायी लाठियों के बल पर दनदनाती गोलियों से लड़ते रहे पर अंत में एक गोली जगपती की जांघ को पार करती हुई निकल गई। दूसरी उसकी जांघ

के ऊपर कूल्हे में समाकर रह गई। राजा निरबंसिया आखेट से सातवें दिन भी नहीं लौटे थे और उनके लिए सभी चिंतातुर हो रहे थे, चन्दा का जगपती दसवें दिन से पहले ही और उसे चिंता करने का पर्याप्त अवसर दिए बिना ही आहत होकर लौट आया था और चन्दा क्रूर नियति की चपेट में आ गई थी। (57)

कालान्तर में चन्दा कंपाउंडर बच्चन सिंह से आशनाई नहीं करती है। बल्कि वह उसके आर्थिक सहयोग टाल की लगवाई और तंगदस्ती के दौरान देह से विवश हो जाती है। xxx जगपति भी अन्तर्द्वन्द्व से सोचता है... क्या वह ठीक कहती थी .. जब तुमने बेच दिया क्या बचन सिंह ने टाल के लिए जो रूपये दिये थे, उसका ब्याज चुकता हुआ ? क्या सिर्फ वहीं रूपये आग बन गये जिसकी आँच में उसकी सहनशीलता, विश्वास और आदर्श मोम बन गये ?(58) कहानी संरचना में वह लकड़हारे से हरी पत्तीवाले वृक्ष को न काटने को कहता है तो लकड़हारा शकूटा कहता है यह तो उखड़ गया है। अब इसमें कौन से फल-फूल आयेंगे। चार दिन में पत्ती झुर्रा जायेंगी। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के दारूण अंत का दर्दनाक संकेत है यह। (59)

पुरूष प्रधान समाज में पुरूष की काम लोलुप दृष्टि, व्यंग्य-बाण, कटाक्ष, घृणित प्रस्ताव तक के प्रस्ताव का मुकाबला कामकाजी नारी को करना पड़ता है। निरूपमा सेवती की कहानियाँ (बद्धमष्टि, तलफलाहट, सबमें से एक, माँ यह नौकरी छोड़ दो) विभिन्न कोणों से रूपायित करती है। 'माँ यह नौकरी छोड़ दो' में एक निम्नवर्गीय माँ का चित्रण है, जो साहब की कोठी में काम करती है। और साहब को खुश रखने के लिए 'कुछ और' सम्बन्ध भी बनाए हुए है, जिससे उसका बेटा एक बड़ा अफसर बन सके । (60) मालती जोशी की 'मध्यांतर' कहानी कामकाजी नारी के मानसिक द्वन्द्व विवशता, मजबूरियाँ, बच्चों से दूरी, इतना कुछ कमाते हुए भी स्वयं अपने लिए कुछ नहीं की पीड़ा आदि का गहन साक्षात कराती है। महीप सिंह की 'घिरे हुए क्षण' कहानी में कामकाजी नारी से अधिक पति के मानसिक तनाव का चित्र पूरी सच्चाई से उभारा गया है। (61)

पत्नी कमाऊ हो और पति आर्थिक मामलों में उस पर निर्भर हो तो भी अपने अहम, अधिकार और डींग हाँकने के अधिकार को छोड़ना नही चाहेगा। पुरूष वर्ग अक्सर विवाहेत्तर सम्बन्धों की डींग हाँकता है। मर्दानगी दिखाने के लिए ..पर यही कार्य स्त्री अन्य पुरूषों से देह सम्पर्क, यौन प्रसंग की करने लगे तो परम्परागत रूढ़ियों में साँस लेने वाला पुरूष वर्ग उसे बर्दाश्त करने की मानसिकता में जीवित रह पायेगा ?

नारी-मुक्ति का अगर एक प्रारूप व्यक्तिवाद, विलासिता, मुक्त भोग की आकांक्षा से जुड़ा हुआ है तो वह आश्चर्यजनक नहीं है। मीडिया और मल्टीनेशनल की जुगलबन्दी ने नारी का व्यक्तित्व हरण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'न्यूड का बच्चा' (क्षमा शर्मा) की बीनू अपनी सुन्दरता पर विचार करती है तो हतप्रभ रह जाती है - "उसके बालों पर किसी हेयर डाई बनाने वाली कम्पनी का नाम लिखा था। उसके दाँतों पर टूथपेस्ट की

ट्यूबें जगमगा रही थी - और उसकी कमनीय त्वचा ... वहाँ तो क्रीम बनानेवाली कंपनियों का युद्ध छिड़ा था।" यह कहानी संकेत देती है कि अन्ततः टेक्नालॉजी को पूजीवादी मानसिकता ने 'हाइजैक' कर लिया है और अब वह पूँजीवादी स्वार्थों के अनुरूप नारी का इस्तेमाल कर रही है। 'हाशिए से बाहर' (सुनीता शर्मा), की पत्नी का प्रश्न -'आप थर्टी प्लस क्यों नहीं लेते - उसकी किसी जरूरत या समस्या से जुड़ा हुआ नहीं है। यह सिर्फ विज्ञापन दानव की माया है। (62)

चित्रा मुदगल की कहानी 'हस्तक्षेप' में नारी मुक्ति के नाम पर उच्छृंखलता की प्रतिष्ठा के प्रति सावधान किया गया है - "स्त्री आज भी इस्तेमाल हो रही है ...आज का अधिकांश पढ़ा लिखा, विचारशील होने का दावा करता हुआ स्त्री-समाज, स्त्री-स्वातंत्र्य, स्त्री-समानता और उसके अधिकारों की लड़ाई लड़ता हुआ नहीं जानता कि ये अधिकार वस्तुतः क्या है, कैसे होने चाहिए... ?" ऐसे धुँधल- के में यदि कहानीकार सकारात्मक मूल्यों की दिशा में प्रयाण की जरूरत को रेखांकित कर रहे हैं तो यह आकस्मिक नहीं है। अन्यत्र प्रसंग में चित्रा मुदगल की कहानी 'रूना आ रही है' की रूना प्रेम के भंग हो जाने के कारण आजीवन विवाह न करने का निर्णय लेकर कॉलेज में प्रिंसिपल के पद पर कार्य करती है। दो बार विदेश यात्रा कर चुकी है। नारी का जीवन आज थम नहीं गया है। कोई दुख अथवा अभाव उसे कुछ देर के लिए तोड़ना अवश्य है, परंतु फिर तुरंत वह संभल जाती है और अपनी कार्यकुशलता का परिचय देते हुए ऊँचे पद पर सफलतापूर्वक कार्य करती है। (63) कुसुम अंसल की अधिकांश नारी पात्र उच्च पदस्थ हैं। 'इंतजार' की देविशा आत्मनिर्भर नारी है और निजता को शादीशुदा होकर भी बनाए रखती है। 'अधबनी सड़क' की करूणा यूनीवर्सिटी. में रीडर है और उसका जीवन व्यस्त है। आत्मविश्वास भरा उसका जीवन है जो कथानायिका वसुधा को भी उद्वेलित कर जाता था क्योंकि वसुधा वैसी न बन सकी। 'संबंधों का दर्पण' की विन्नी एक लेखिका है जो फिल्मों के लिए लिखती है, उसका लेखन और व्यक्तित्व दोनों सुंदर है। आत्मसंघर्ष से जूझती आत्मविश्वासपूर्ण नारी है। 'अंधी यात्रा' की सीमा इंटीरियर डेकोरेटर है। बड़े-बड़े होटलों की सज्जा का काम करती है। "कौन-सा क्षेत्र है जहाँ स्त्री अपने अस्तित्व की छाप नहीं लगा सकती है, अपनी कलात्मकता, सामर्थ्य से नया नहीं रच रही।" (64) 'सन्नाटे की खीझ की पूर्वा एक मेधावी नारी है। अनेक भाषाएँ जानती है। वह एयर होस्टस है। कथा नायिका भी प्रोजेक्ट पर काम करती है। दोनों दोस्त हैं। किसी कारणवश पूर्वा की गूढ़ मृत्यु हो जाती हैं। उस पर बलात्कार किया गया था। परन्तु जब तक जीती रही, रफ्तार-भरा जीवन ही जीती रही है।

अलका सरावगी की कहानी 'मिसेज डिसूजा के नाम' की सुस्मिता गुप्ता एक संगीतकार है। जीवन में अपनी इच्छा और संघर्ष को मान्यता देने वाली और बेटी वंदिता पर भी इसी शिक्षा का संस्कार देने वाली नारी है। एक साथ बेटी और अपने कैरियर संगीत दोनों का निर्वाह करती है। ममता

कालिया की कहानी 'सेमिनार' की सुरेखा तथा बीना सेमिनार में आई हुई कलावादी लेखिकाएँ हैं। बीयर पीती हैं और सारे संकटों को पहचानने के लिए लेखन कार्य भी करती है। (65) इस प्रकार आधुनिक समाज में नारी एक साथ दो-दो मोर्चा पर टक्कर लेती प्रतीत होती है। एक तरफ पुरूष वर्ग से तथा दूसरी तरफ समाज में अपनी हैसियत स्थिर करने के लिए । विवेच्य कहानियों में प्राप्त नायिकाओं के संघर्षपूर्ण जीवन तथा आत्मनिर्भरता में पर्याप्त समानता परिलक्षित होती है। कहना गलत न होगा कि विवेच्य कहानियों की उच्च पदस्थ नारियों का उद्देश्य पुरूष समाज से बदला लेना अथवा स्पर्धा करना नहीं है, बल्कि उनकी अपनी कार्यक्षमता का परिचय देना मात्र है। इनमें से कुछ विवाहित हैं तो अधिकांश नारियाँ अविवाहित हैं। कुसुम अंसल की विन्नी, सीमा, पूर्वा तथा करूणा अविवाहित है तथा अपूर्व आत्मविश्वास एवं कार्यक्षमता से परिपूर्ण हैं। ममता कालिया, सुरेखा तथा वीना ऐसी लेखिकाएँ है जो आत्मविश्वास से भरी कहानी लिखने वाली तथा अपना निजी दृष्टिकोण रखनेवाली नारियाँ हैं। चित्रा मुद्गल की रूना भी अविवाहित रहकर अपनी पहचान आप है। अलका सरावगी की सुस्मिता गुप्ता अपनी इकलौती बेटी की देखभाल और अपने कैरियर का निर्वाह एक साथ आत्मविश्वास के साथ करती है।" (66)

आधुनिक जनजीवन में पुरूष शिकारी की भूमिका मे हो स्त्री शिकार होने वाली वस्तु है। कभी-कभी कोई धनादय स्त्री या कैरियर वाली स्त्री शिकारी होती है तो पुरूष मार्मिक यौन प्रसंगों में शिकार। प्रसंग वश 'यायावर' कहानी आधुनिकता के सन्दर्भ में पुरूष के 'छल' को जितना खोलती है उतना ही स्त्री के छल को भी। कहानी की स्त्री को भी पता है कि वह 'फँसाई' जा रही है। एक तथाकथित आधुनिक पुरूष के द्वारा चुस्त आधुनिक जुगलों में दार्शनिकता बधारने के पीछे क्या है, यह उसे अच्छी तरह पता है, उसकी पद्धति और परिणति को वह पहचानती है। पर इस समझ - "हरेक राज को मगर फरेब खाये जा' में भी एक 'थ्रिल' है। इस थ्रिल को स्वीकार करते ही वह अपनी भी एक बुनियादी कमजोरी को स्वीकार कर लेती है। xxx "लीक तोड़ना, संस्कारों से मुक्त होना इन मुहावरों का चारा डालने के लिए कैसी खूबसूरती से उपयोग किया जाता है। आजकल सचमुच आदमी तेज है और किसी को फँसाने के सारे हथकंडों से लैस भीतर-ही-भीतर कुछ कुलबुलाने लगा... मैंने बड़ी तौलती-सी नजर से एक बार उसे देखा। (67)

धीरे-धीरे कहानी का स्वर ऐसा बन जाता है कि कौन किसका इस्तेमाल कर रहा है - कहना मुश्किल हो जाता है। अगर छल है तो दोनों तरफ है और एक पूरी संवेदना का झूठ-उजागर हो जाता है। कहानी बिना किसी 'क्लिशे' के 'जिप्सी होना', 'यायावर होना' आदि रोमांटिक जुमलों को हास्यास्पद बना देती है। जबकि यह जानना दिलचस्प है कि कहानी में सारी बातचीत 'किल्शेज' में होती है - जिप्सी, यायावर, निरूद्देश्य, निरर्थक, भटकना, अतीत की छाया आदि। पर 'किल्शेज' का इस्तेमाल यहाँ 'किल्शेज'

साबित करने के लिए ही हुआ है। सारी बातचीत और संबंध में जो झूठ है उसे व्यक्त करने के लिए। सीमोन द बुआ ने 'द सेकण्ड सेक्स' (जिसका अनुवाद प्रभा खेतान ने 'स्त्री : उपेक्षिता' के नाम से किया है) में सच ही कहा है स्त्री-पुरूष अपने यौन-प्रसंगों में एक भ्रान्ति में जीते हैं। चाहे वे देह मुक्ति के हो या अभिलक्षित जीवन ऐषणा के। (68)

आधुनिक युग की पूंजीवादी-वैश्वीकरण की प्रक्रिया में स्त्री अगर आर्थिक रूप से सम्पन्न है तो इच्छित जीवन शैली अपना सकती है अन्यथा पराधीनता संत्रस्त भाव और आशंकाओं-पराभवों में उसे जीना पडेगा। इसीलिए कुसुम खेमानी ने कहा है कि "अगर विचार करना है तो स्त्री के संदर्भ में नहीं, शक्ति के संदर्भ में भी विचार करना होगा। क्योंकि मूलतः जो पीड़ा है वह शक्ति के असंतुलित वितरण से उपजी विभिन्न प्रकार की विसंगतियों एंवं कष्टों को लेकर है।" (69)

स्त्री को पुरूष के प्रतिरोध में खड़ा करना एक बौद्धिक जुगाली और सामाजिक-सांस्कृतिक तिलिस्म के अन्तहीन संघर्ष का मामला है। इसीलिए मृणाल पाण्डे 'स्त्री-जीवन के हाशिए' को परिभाषित करती हुयी कहती है कि नारी-विमर्श कतई स्त्रियों को बृहत्तर समाज से अलग-अलग रखकर देखने और हर क्षेत्र में पुरूषों के खिलाफ उन्हें प्रोत्साहित करने का दर्शन नहीं है यह तो एक समग्र दृष्टिकोण है। (70) क्योंकि नारी-विमर्श के बारे में चिन्तन करना या स्त्री के अधिकारों की वकालत करने का अर्थ "किसी एक वस्तु के बारे में लोगों के बातचीत करने के तरीके या सोचने की पद्धति से है। ये तरीके मिजुलकर लोगों की सामान्य धारणा को बनाते हैं। (71)

स्त्री की देह, स्त्री की आत्मा और स्त्री की मुक्ति कामना के बारे में आज भी अधिकांश लोगों की सोच व समझ परम्परागत रूढ़ियों से है। उदाहरणतः मृणाल पांडे की कहानी 'मुन्नूचा की अजीब कहानी' के मन्नूचा सात समुद्र पार से प्रेतकर्म करके अपनी अर्धांगिनी को मुक्ति दिलाने गाँव आते हैं। विदेश में मृत्यु को प्राप्त हुई उनकी पत्नी की आत्मा असंतुष्ट है। गाँव में पुजारी द्वारा जागर लगाकर मरी हुई की आत्मा को किसी के शरीर में बुलाकर उससे उसकी इच्छा पूरी हो जाती है। मृणाल पांडे ने इस प्रथा के माध्यम से नारी की असंतुष्ट आत्मा के मन तथा वेदना को विरोधी स्वर में अभिव्यक्ति दिलवायी है। औतरिया के शरीर में मुन्नूचा की पत्नी की आत्मा प्रकट होती है उसके मुख से जनानी आवाज फूटती है -".. नहीं किया रे मान... शाखा नहीं, प्रशाखा नहीं मेरी...बच्चे तुमने होने नहीं दिये ...मेरे आखिरी बखत तक पैसा ही कमाया... बेऔलाद मैं...हाय मैं अकेली मरी फिरंगियों के बीच... जनम लूँगी..यही जनम लूँगी...इसी गाँव में फिर से आऊँगी। (72) विदा हो रही प्रेतात्मा की आवाज सबने सुनी । असंतुष्ट और अतृप्त स्त्री -मन की यह आत्मा पुनः जनम लेना चाहती है। इस कथा का अर्थ स्त्री का पुरूष समाज के विरूद्ध पुनर्समाज का निर्माण करना भी है।

परम्परागत समाज का पुरूष नारी देह की मुक्ति उसकी इच्छाओं-संसर्ग की कामनापूर्ति में न मानकर मृतक संस्कारों के निर्वाह में मानता है। नारी

अगर वंध्या है, कन्याओं को ही जन्म देने का बानक है तो पुरूष अन्यत्र अपनी देह-वासना ऐषणा की पूर्ति करना चाहेगा। पर पत्नी को अपनी नपुंसक अवस्था में क्या पर पुरूष से सम्पर्क की छूट देना चाहेगा या पुरूष-परिवार के अन्य सदस्य इसकी सहमति देंगे ?

वर्तमान दौर में पुरूष अगर सम्पन्न है, आर्थिक- सामाजिक स्थिति में, तो वह अपनी देह-लिप्सा बार बाला से पूर्ण कर लेता है अथवा देह की मण्डी में जाकर वासना पूर्ति कर लेगा। यही हाल अधिकार सम्पन्न और आर्थिक रूप से खुशहाल महिलाओं का है जो अपनी वासनापूर्ति के लिए कोई 'गिगेलो' खरीद लेगी या मनचाहे पुरूष से सम्पर्क कर 'देह-मुक्ति' का उत्सव मना लेगी।

मृदुला गर्ग की एक कहानी 'खरीदार' है। जो गृह मंत्रालय के संयुक्त सचिव के रूप में, एक सीनियर आई.ए.एस अधिकारी के रूप में कार्यरत है वह मनचाहे प्रेमी को खरीदकर अपनी प्रेम व सेक्स की भूख को मिटाती है जिसका जिक्र 'खरीदार' काहानी में कलात्मक रूप से वर्णित है। कथासार यही है कि नीना बदसूरत नारी है। वह बीस हजार दहेज में तय होने वाले रिश्ते को नकारकर स्वयं आत्मनिर्भर जीवन जीना चाहती है। श्रम से आई.ए.एस की परीक्षा उत्तीर्ण करके वह कमिश्नर पद पर नियुक्त होती है। बाद में संयुक्त सचिव के पद पर पहुँच कर न तो स्त्री रह पाती है न पुरूष, अपनी पहचान-कुरसी पर विराजमान विवेकशील व कुशल कार्यकर्ता के रूप में पाती है।

मैसूर में अपनी नियुक्ति पर दुबली पतली नीना घोड़े पर बैठकर ए.एस.पी के लम्बाडियों के तोडे पर विद्रोह के दमन हेतु पहुँचती है। अचानक एक पत्थर लगने पर घायल होकर गिर जाती है पर अस्पताल में होश आने पर सवाल करती है कहीं गोली तो चलानी नहीं पड़ी। कालान्तर में यहीं नीना एक खूबसूरत कवि हृदय सुनील को अपना 'रखैल' बनाकर रख लेती है। अधिकार सम्पन्न होने से न कोई तनाव न दबाव और न कोई पारिवारिक जिम्मेदारी है। सुनील उसकी दिलजोई के साथ-साथ बागबानी का काम करता है जो नीना को पसन्द है। XXX

आज नीना के पास गाड़ी है, बंगला है, नौकर-चाकर है, और जो नहीं है, उसे वह कभी भी पा सकती है। वह सुनील को जब चाहे तब अपने पास बुलाकर रख सकती है। पहले जैसा मामला यहाँ नहीं है कि बीस-तीस हजार में दूल्हा खरीदो और जीवन भर उसकी चाकरी करते रहो। अपने कर्तव्य से वह संयुक्त-सचिव बनी है और जब चाहे तब दूल्हे खरीद सकती है।

आधुनिक युग में पढ़ी-लिखी कामकाजी नारी ने बता दिया है कि वह पुरूषों से किसी बात में कम नहीं है। इतने ऊँचे पद पर पहुँचने के बाद दूल्हे उसके पीछे भागेंगे नहीं, तो जायेंगे कहाँ ? एक जमाना था कि उस जैसी बदसूरत के लिए दूल्हा मिलना मुश्किल था और अब शादी ब्याह, प्रेम-वासना उसके लिए नाश्ते जैसी साधारण वस्तु रह गई है। [74] आज

अनेकों कहानियाँ ही इस परिवेश और कथ्य को प्रस्तुत नहीं करती हैं बल्कि यथार्थ घटनाएँ भी हमें सबल, सशक्त, आत्मनिर्भर नारी के द्वारा रचे गये प्रपञ्च व तिलिस्म से पुरूष वर्ग को किंकर्तव्यविमूढ़ करने में समर्थ है। नीना गुप्ता फिल्म एक्ट्रेस ने तो पिता का नाम न बताकर अपनी सन्तान को नकारा है।

वर्तमान दौर में आत्मनिर्भर स्त्री के लिए देह केवल वस्तु नहीं है, उसकी अस्मिता का एक हिस्सा है। उसे यौनिक रूप से गुलाम बनाने वाले पुरूष यह कभी नहीं चाहेंगे कि स्त्री की देह में सोई हुई इच्छाएँ उसकी मर्जी से सोयें-जागें इसलिए जब स्वतंत्रता की रोशनी उतरती है तो स्त्री सबसे पहले अपनी देह पर अपना अधिकार देखना चाहती है। पीड़ा जहाँ सबसे अधिक होती है, ध्यान सबसे पहले वहीं जाता है। नैतिकता का चाहे कितना ही अंकुश हो, नारी का विद्रोह उसकी देह से शुरू होगा। बेड़ी वहीं से टूटती हैं, जहाँ सबसे अधिक रगड़ रही होती है। (75)

अपने गर्भ एवं मातृत्व के प्रति निर्णय भी स्त्री को ही लेने का अधिकार है। शरद सिंह की एक कहानी 'घोर-घोर रानी कित्ता-कित्ता पानी' में देवयानी नामक नारी पात्र अपने अवांछित कुंवारे मातृत्व को स्वीकार करते हुए भी उसके प्रति निर्णय लेने का अधिकार स्वयं पर ही रखती है। यद्यपि नारी की स्थिति के प्रति उसके पास भी कटु अनुभवों की श्रृंखला है और वह इस तथ्य को स्वीकार करती है कि स्त्री का अपना व्यक्तिगत क्या है । वह तो सामाजिक होती है। वह कहती है "स्त्री होना भी सामाजिक है, वह घर में रहती है तो स्त्री होती है, बाजार में होती है तो स्त्री होती है, वह भी सैकण्ड सैक्स फर्स्ट नहीं। स्त्री का स्त्रीत्व भी सामाजिक संपत्ति होता है। अगर स्त्री अपना स्त्रीत्व लुटाती है तो समाज बौरा उठता है। स्त्री का व्यक्तिगत कुछ नहीं होता। (76)

विडंबना यही है कि पुरूष स्त्री को निरा स्त्री बनाए रखने में ही सुख अनुभव करता है और स्त्रियाँ भी स्वयं को पुरूषों के लायक बनाए रखकर खुश होती हैं। पारम्परिक ढाँचे में। (77)

फिल्म, मीडिया और पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यरत स्त्रियाँ अपना मनचाहा जीवन साथी न पाने की स्थिति में 'लिव-टुगेदर' अथवा फ्री-लिविंग की स्थिति में जीवन व्यतीत कर लेती है। पर यह स्थिति महानगरों में रहनेवाली शायद दो प्रतिशत महिलाओं की है। स्कूल-कॉलेज, अस्पताल, प्राइवेटफर्म, में कार्यरत महिलाओं की जिन्दगी में वे स्वयं सशंकित और संत्रस्त जीवन जीती है चाहे वे कुँआरी हो या शादी शुदा। यद्यपि दीप्ति खण्डेलवाल , कृष्णाअग्नि होत्री और निरूपमा सेवती ने नारी की पारम्परिक छवि से हटकर 'स्वतंत्रमना' और 'व्यक्तित्व की स्वतंत्रता' वाली नारी -छवियों को उकेरा है।

प्रसंग वश दीप्ति खण्डेलवाल की 'निर्बन्ध' कहानी एक ऐसी लड़की की कहानी है जो पारम्परिक सारी मान्यताओं को नकार कर निर्द्वन्द्व और उन्मुक्त जीवन जीने में विश्वास रखने वाली अति आधुनिक युवती है। इसमें

पौराणिक संस्कृति एवं नवीन सभ्यता का संघर्ष चित्रित किया गया है। कहानी में बूढ़ी नानी एकादशी का व्रत रखती है। क्योंकि उसे अपना परलोक सुधारना है। इधर नये परिवेश में जन्मी तथा 'मौड'बनने की तमन्ना संजोनेवाली अनीता इस बात को मूर्खता समझकर नानी की खिल्ली उड़ाती हुई कहती है - "परलोक ! माइ फुट ! सामने खड़ी जिन्दगी में इसलिए रोओ कि मृत्यु के बाद हँस सको ... हाउ फूलिश ! XXX हनीमून में थप्पड़ खाई हुई नानी की जगह अनीता होती तो थप्पड़ का जवाब घूंसे से देती। अनीता को तो जिन्दगी उस वक्त सार्थक लगती है, जब कोई उसकी कमर को कसकर कानों में कहता हो - "ओह, सो क्यूट यू आर। (78) अनीता और उसकी डॉक्टर ममी का सम्बन्ध भी तो नपा-तुला है। नानी ने नाना की जिस चोट को सह लिया , ममी ने उस चोट के खिलाफ विद्रोह कर दियाँ और अनीता 'जस्ट डजंट केअर' । अनीता सहज रहना चाहती है, उस हवा की तरह जिसके झोंके उड़ते है। वह तो सिर्फ प्यार करेगी और जियेगी नदी की निर्बन्ध धारा की तरह। वह अपने ढंग से ही जीना चाहती है।

कॉलेज में लड़के-लड़कियों पर प्रतिबंध लगाने की बात पर अनीता 'लीड' करती हुई कहती है - "यह हमारी पर्सनल लिबर्टी का सवाल है.. हम कॉलेज आते हैं पढ़ने के साथ कुछ अच्छा समय बिताने के लिए, योग साधना के लिए नहीं, हम जो चाहे पहनेंगे.. जैसे चाहे रहेंगे... जैसे चाहे जी...ये..गे ।" अनीता की तमन्ना है 'टु बी अ परफेक्ट मॉड ... कपड़ों में, विचारों में , जिन्दगी में। XXX सहपाठी मनीषा को घूंसा मारकर अनीता संजय की बाहों में झुमने, नाचने लगती है। इस देह, मन और प्राण को बेहोशी की लय में गूंथ देने के लिए वह पीती है, नाचती है और फिर पीती है। अनीता का तकिया-कलाम है। 'आय कीप नो इनहिबिशन्स' वह तो सिर्फ आज में जीती है कल की कोई चिन्ता नहीं। (79)

सुधी जन जानते हैं कि कई बार स्त्री-पुरूष का यौन-संबंध अनिच्छा के स्तर पर विवाहपूर्ण तथा विवाहेत्तर दोनों रूप में मिलता है। मैत्रेयी की विभिन्न कहानियों में पितृसत्ता का वहशी रूप स्त्री को भोगना पड़ता है। वेश्या रूप में यौन-संबंध जया जादवानी की कहानी 'रूपान्तरण' की रामकली के चरित्र में है। पाँच ट्रकवालों के साथ एक रात में वह संबंध बनाती है। पर छेदीलाल उससे एक बेटे की कामना कर अपने घर में बिठा लेता है। पति-पत्नी के पवित्र तथा सुखभरे आत्मिक आनंद के यौन-संबंधों का चित्रण ममता कालिया की 'अर्धांगिनी' कहानी में मिलता है। रूपा के ऑपरेशन के बाद अधूरापन का एहसास उसे सतत सालता तथा चिड़चिड़ा बना देता है। पर सौरभ का प्यार उसे इस ग्रंथि से बाहर निकालता है - "भूल गई रूपा अपना अधूरापन भूल गया सौरभ अपनी जड़ता। पति ने महसूस किया, वह सृजन का सार भी है और सिरजनहार भी। दोनों उस क्षण ईश्वर के प्रतिरूप थे। (80) इस प्रकार हम पातें हैं कि विभिन्न कहानियों में स्त्री-पुरूष के यौन सम्बन्ध विविध स्तर तथा धरातल पर चित्रित हैं।

विभिन्न वर्गो के स्त्री-पुरूषों में जीवन सपाटता या इकहरापन लिए हुए नहीं है। अन्तर्जातीय विवाह बेमेल विवाह, आर्थिक विवशता, स्त्री-पुरूष के आत्मीय रिश्तों को कडुवाहट और संत्रास बोध में बदल देते है। प्रसंगवश मृदुला गर्ग की कहानी "बीच का मौसम" चार सहेलियों के जीवन पर लिखी गई कहानी है। कथानायिका माया तलाकशुदा नारी है। जो अपनी सहेली क्षिप्रा के पति ओबोन के साथ जुड़ी हुई है । पर ओबोन उसके अलावा किसी तीसरी के साथ भी जुड़ा हुआ है। माया उम्र के जिस मोड़ पर है वहाँ उसे पूरक पुरूष की जरूरत कम होने लगी थी। दिन भर के काम के बाद, शाम दोस्तों , परिचितों के सहारे अथवा अकेले पढ़ते लिखते भी बखुशी कट जाती थी। ओबेन को लेकर वह ज्यादा सोचना नहीं चाहती है। बसंत के इस छोटे वक्फे को वह मौसम की तरह जीना चाहती है। लेखिका लिखती है -"दुनिया में कितना कुछ है, देखने करने को। दिलचस्प लोग, दर्शनीय स्थान,अधूरे उद्देश्य। सच ,पुरूष के साथ कदम मिलाकर चलने के किस्से में, बहुत-कुछ छूट जाता है, जीवन में।" (81) जीवन को अपनी शर्तों पर जीने की अभिलाषा पालने वाली कई आधुनिक नारी समाज में हमें मिल जाती हैं। कहना गलत न होगा कि यह पश्चिमी जीवन-शैली है जो बहुत पहले भारतीय जीवन में कुछ लोगों का अनिवार्य हिस्सा बन चुकी थी। राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र से जुड़ी कई महिलाएँ कुछ इसी प्रकार का जीवन जीती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। वे प्रकृति, पशु-प्राणी, जीव-जंतु, खेल-कूद तथा संसार के अन्य कार्य-व्यापारों से इस प्रकार जुड़ जाती हैं कि फिर उनके जीवन में पुरूष की सत्ता अथवा महत्व अधिक रह नहीं पाता है। अगर पुरूष जीवन में आता भी है तो एक मित्र की तरह । जिस प्रकार एक औरत सहेली के रूप में आती है। (82) लेकिन मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'उज्रदारी' की विधवा शांति की दयनीय स्थिति ढोर-पशुओं जैसी है। शांति के विधवा बन जाने के बाद अपने बेटे सोमू पर जेठ तथा जेठानी द्वारा किए अत्याचार को वह सहन नहीं करती है और बंटवारे की मांग कर बैठती है, परन्तु शांति को जब अपनी और सोमू की हत्या के षडयंत्र का पता चलता है तो रातों-रात गांव से भाग जाती है तथा आजादपुर आकर प्रधान की बाहों का सहारा लेती है - "पता नहीं कौन-सी औरतें मरे हुए पति को रोती हैं, मैं पंद्रह दिन से ज्यादा भरम रख न पाई... शायद पेट में जलती आग ने लुती लगा दी थी कि आग फैलती ही गई।" (83) शांति का विधवा रूप को मानने से इन्कार करना, जेल के अत्याचार को सहन करने से इन्कार करना, अपना हिस्सा मांगने तथा मौत की आशंका होने पर शांति का प्रधान के साथ अनैतिक संबंध को जिन्दगी जीने के लिए बनाए रखना, यह उद्घाटित करता है कि बदलते परिवेश और परिस्थिति के अनुकूल नारी कदम उठा रही है -"जब-जब पति का ध्यान आया, कड़वाहट भर गई छाती में -बैरी खुद तो परमधाम चला गया और हमें थमा सती की कंठी फेरती रह और पिट घरवालों से।" (84) परम्परा के प्रति विद्रोह और नयी सोच की कहानी है।

बकौल कात्यायनी के आज के दौर में देह-मुक्ति और स्त्री की अस्मिता का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। स्त्री को चयन का चुनाव मिले तभी उसकी अस्मिता कायम रह सकती है। नारी के अधिकार का प्रश्न केवल नारी का नहीं है, वरन् सम्पूर्ण मानवता का प्रश्न है। पुरूष से अलग रहकर संसार बसाने की कल्पना नारी करती है, ठीक उसी तरह समाज को भी स्त्री को अपनी मुट्ठी में कैद करने की महत्वाकांक्षा से मुक्ति देनी होगी।

प्रभा खेतान की तरह कात्यायनी का भी अभिमत है -" औरतों का पुरूषों एवं पूरे समाज से जितना अमानवीय पार्थक्य (सेग्रिगेशन) हिन्दुस्तान में है उतना मध्य-पूर्व के कुछ देशों को छोड़कर नहीं है। इस आधी आबादी के आर्थिक शोषण और परम्पराओं की दिमागी गुलामी, पार्थक्य और अलगाव (एलियेनेशन) की असह्य पीड़ा व्यथा के रसातल से बाहर निकलने की दिशा में निर्देशित होकर ही भारत का नारी आन्दोलन सार्थकता प्राप्त कर सकता है। [85] पर यह नारी आन्दोलन समता, सहभागीदारिता और सहयात्री के रूप में जीवन दृष्टि के अंगीकार है मात्र प्रतिरोध का नहीं। नयी नैतिकता का तकाजा यही है कि नारी के अस्तित्व को गरिमा विश्वास सहयोग और समानांत्तर अस्मिता के रूप में स्वीकारा जाये।

संदर्भ सूची : षष्ठम अध्याय

1. उषा कीर्ति राणावत : स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श पृ.25-26

2. वीरेन्द्र सक्सेना : काम सम्बन्धों का यथार्थ पृ.11

3. राजकिशोर सिंह : प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति पृ.369

4. रोहिताश्व : भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक विशिष्टता पृ.24

5. उषा कीर्ति राणावत : स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श पृ.29

6. प्रेमचन्द : विचार-प्रसंग पृ.61

7. वेदप्रकाश अमिताभ : हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य पृ.51

8. मंजुल भगत : प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.88

9. उषा कीर्ति राणावत : स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श पृ.

10. राजेन्द्र यादव : कहानी : स्वरूप और संवेदना पृ.77

11. रघवीर सिंन्हा : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यो से प्रयाण पृ.35

12. विवेकी राय : हिन्दी कहानी : समीक्षा और संदर्भ पृ.68

13. उषा झा : हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श पृ.100

14. धर्मवीर भारती : गुल की बन्नो पृ.71

15. महीप सिंह : कील : इक्यावन कहानियाँ पृ.231

16. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी विविध रूप पृ.91

17. विजय मोहन सिंह : धुँआ-धुँआ ऊँचाई सारिका 1982 पृ.28

18. वेदप्रकाश अमिताभ : हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य पृ.51

19. राजेन्द्र यादव : वर्तमान साहित्य 2005 पृ.18

20. उषा झा : हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श पृ.93

21. मैत्रेयी पुष्पा : चिन्हार पृ.138

22. नगेन्द्र : नई समीक्षा नए सन्दर्भ पृ.62

23. उषा कीर्ति राणावत : स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श पृ.140

24. पुष्पपाल सिंह : समकालीन हिन्दी कहानी : युगबोध का संदर्भ पृ.08

25. वेदप्रकाश अमिताभ : हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य पृ.52

26. मैत्रेयी पुष्पा : प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.89

27. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.104-105

28. हर्ष नारायण : हिन्दी साहित्य कोष भाग-2 पृ.986

29. अर्चना वर्मा : कथा देश जनवरी 2009 पृ.140

30. घनश्यामदास भुतडा : समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी विविध रूप पृ.163

31. पुष्पपाल सिंह : समकालीन हिन्दी कहानी : युगबोध का संदर्भ पृ.12

32. रघवीर सिंन्हा : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यो से प्रेरणा पृ.39

33. रघवीर सिंन्हा : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यो से प्रेरणा पृ.40

34. लूनिया : भारतीय संस्कृति का इतिहास पृ.81

35. रघवीर सिंन्हा : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यो से प्रेरणा पृ.38

36. महेश दिवाकर : हिन्दी नई कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ.321

37. कुसुम अंसल : इंतजार :स्पीड ब्रेकर पृ.37

38. पुष्पपाल सिंह : समकालीन कहानी : सोच और समझ पृ.13

39. चित्रा मुद्गल : चर्चित कहानियाँ पृ.99

40. अलका सरावगी : कहानी की तलाश पृ.72

41. अलका सरावगी : कहानी की तलाश पृ.30

42. चित्रा मुद्गल : चर्चित कहानियाँ पृ.97

43. शोभा निंदालकर	: हिन्दी कहानी और नारी विमर्श	पृ.100
44. ममता कालिया	: दो जरूरी चेहरे, छुटकारा	पृ.97-98
45. वेदप्रकाश अमिताभ	: हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य	पृ.52-53
46. मेहरून्निसा परवेज	: बंजर दुपहर : आदम और हव्वा	पृ.94
47. घनश्यामदास भुतडा	: समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी विविध रूप	पृ.73
48. अशोक भाटिया	: समकालीन कहानी का इतिहास	पृ.234
49. उषा कीर्ति राणावत	: स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श	पृ.20
50. रोहिताश्वे	: कोजागिर पुनव हंस 2004	पृ.91
51. रमनलाल देसाई	: एशिया में यौन दासियाँ	पृ.81
52. कात्यायनी	: दुर्गद्वार पर दस्तक	पृ.16
53. सीमोन द बोउवार	: स्त्री उपेक्षिता	पृ.380
54. पुष्पपाल सिंह	: समकालीन कहानी :सोच और समझ	पृ.14
55. अर्चना वर्मा	: कथा देश जनवरी 2009	पृ.140
56. देवी शंकर अवस्थी	: नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति	पृ.67
57. रघवीर सिंन्हा	: आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यो से प्रेरणा	पृ.37
58. कमलेश्वर	: राजा निरबंसिया	पृ.32
59. रोहिताश्व	: वर्तमान साहित्य सितम्बर 2007	पृ.73
60. निरूपमा सेवती	: प्रतिनिधि कहानियाँ	पृ.108
61. महीप सिंह	: प्रतिनिधि कहानियाँ	पृ.71
62. वेदप्रकाश अमिताभ	: हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य	पृ.56-57
63. चित्रा मुद्गल	: प्रतिनिधि कहानियाँ	पृ.106
64. कुसुम अंसल	: इकतीस कहानियाँ	पृ.131
65. ममता कालिया	: प्रतिनिधि कहानियाँ	पृ.61
66. शोभा निंदालकर	: हिन्दी कहानी और नारी विमर्श	पृ.163

67. विजय मोहन सिंह	: आज की कहानी	पृ.68
68. सीमोन द बोउवार	: स्त्री उपेक्षिता	पृ.381
69. कुसुम खेमानी	: वागर्थ दिसम्बर 2003	पृ.88
70. मृणाल पाण्डे	: परिधि पर स्त्री वागर्थ-दिसम्बर 2003	पृ.47
71. नामवर सिंह	: हंस अगस्त 2004	पृ.195
72. मृणाल पाण्डे	: चार दिन की जवानी तेरी	पृ.69-70
73. मृदुला गर्ग	: ग्लेशियार से	पृ.83
74. घनश्यामदास भुतडा	: समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी विविध रूप	पृ.130-131
75. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.170
76. शरद सिंह	: हंस नवम्बर 2002	पृ.37
77. उषा झा	: हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	पृ.170
78. दीप्ति खण्डेलवाल	: निर्बन्ध : सारिका अंक 173 सितम्बर 1975	पृ.74
79. दीप्ति खण्डेलवाल	: निर्बन्ध : सारिका अंक 173 सितम्बर 1975	पृ.75
80. ममता कालिया	: बोलने वाली औरत	पृ.88
81. मृदुला गर्ग	: प्रतिनिधि कहानियाँ	पृ.88
82. शोभा निंदालकर	: हिन्दी कहानी और नारी विमर्श	पृ.226
83. मैत्रेयी पुष्पा	: प्रतिनिधि कहानियाँ	पृ.114
84. शोभा निंदालकर	: हिन्दी कहानी और नारी विमर्श	पृ.163-64
85. कात्यायनी	: हंस , अगस्त 1991	पृ.87

7. भाषा-शैली एवं शिल्प विधान

समकालीन कहानी की विकास यात्रा में, विभिन्न कहीनी आन्दोलन के पक्षधर रचनाकारों ने भाषा-शैली और शिल्प को नयी तराश और गरिमा प्रदान की है। विभिन्न वर्गों, परिवेशों और आन्दोलनों से प्रभावित रचनाकारों ने भाषायी पक्ष के नये पहलुओं को रेखांकित किया है। शैली-परक अभिव्यंजना से सामान्य पाठक ही नहीं प्रबुद्ध पाठक भी चमत्कृत होता है। पुरूष रचनाकारों के बरक्स महिला रचनाकारों ने भाषा-शैली के अभिनव साँचों और पैटर्नो का इस्तेमाल किया है। जिसमें बिम्ब-प्रतीक और मिथक प्रयोग भी शामिल है।

समकालीन कहानी का सहसम्बन्ध युगीन परिवर्तन आन्दोलन और शैल्पिक प्रयोग व नवीनता से कम नहीं रहा है। कारण "समकालीनता अपने युगबोध इतिहास बोध और समसामयिक चेतना से जुड़े होने का भावबोध है। (1) नरेन्द्र मोहन भी समकालीनता को कालखण्ड तथा इतिहास दोनों से अनिवार्य सम्बन्ध मानते हैं, "समकालीनता का अर्थ किसी कालखण्ड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण, निरूपण या बयान -भर नहीं है, बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना, उनके मूल स्त्रोत तक पहुँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है। ... समकालीनता एक ठहरी हुई गतिहीन और जड़ स्थिति नहीं है, बल्कि ठहराव ,गतिहीनता और

जड़ता को सख्ती और निर्ममता से तोड़ने वाली यह गतिमान ऐतिहासिक प्रक्रिया और चेतना है।" (2)

समकालीन कहानी के विकास क्रम में मोहभंग, सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन ,नेहरू-सत्ता के युग का अंत, आपात काल, नक्सलवाद का उदय, वामपंथी शक्तियों की टकराहट, स्त्री विमर्श और दलित विमर्श जैसे प्रसंग उभरें हैं। जिससे भाषायी तेवर, भाषा प्रयोग अभिजात्य वर्ग की भाषा, मध्यवर्ग की अवसरवादी भाषा तथा निम्न वर्ग की स्लैंग-लांग्वेज याने गाली-गलौज की भाषा भी कहानी-विन्यास के नये रूप रचती है।

कहानी विधा के प्रमुख आलोचक पुष्पपाल सिंह भी मानते हैं कि समकालीन कहानी में भाषा को भी एक नई तराश और गद्य की नई लय प्राप्त हुई है। गद्य-भाषा की सहजता में जीवन धर्मी गंध लिए कितनी अर्थ-क्षमता हो सकती है। वर्तमान कहानी इसका प्रमाण है। प्रयोग में आ रहे शब्दों को गद्य की लय के अनुसार अर्थ-संगति देने के सुन्दर प्रयास ने भाषा को अपूर्व शक्तिमत्ता प्रदान की है। समकालीन कहानीकार भाषा प्रयोग के प्रति अत्यंत सजग और सचेत है। समग्रतः समकालीन हिन्दी कहानी आज साहित्य की सर्वाधिक सशक्त ओर समादृत विधा है। (3)

कहानी विधा की पहली शर्त रोचकता, पठनीयता और सम्प्रेषणीयता है। आलोचक धनंजय वर्मा ने भी 'हिन्दी कहानी का रचना शास्त्र' नामक ग्रंथ में औत्सुक्य प्रसंग में स्वीकारा है कि कहानी पढ़ते-सुनते हुए पाठक-श्रोता को यह लगना चाहिए कि 'ऐसा हुआ है' और 'ऐसा हो सकता है'।' यह सच है कि जीवन में असंभव और अप्रत्याशित भी बहुत कुछ होता है, लेकिन कहानी में उसे प्रस्तुत करते हुए वह अप्रत्याशित भी प्रत्याशित और असंभव भी संभव लगना चाहिए। कहानी में मानवीय संभावना ही उसकी विश्वसनीयता का आधार होती है। जीवन में होने वाली घटनाओं में संयोग का भी स्थान होता है और उनकी आकस्मिकताएँ भी होती हैं। (4)

कहानी विभिन्न वर्गो और मानसिक ऊहापोहों की जटिलता का मानस स्वरूप होती अपने बृहत्तर विन्यास होती है। इसलिए भाव प्रसंग कथानक और चरित्र के अनुसार कहानी के प्रतीक और संकेत, बिम्ब और रूपक आदि जीवन की परिस्थिति, पात्रों की मनःस्थिति और कहानी की केन्द्रीय अनुभूति को व्यंजित करनेवाले होना चाहिए। इनके अभाव में वे अनावश्यक अलंकरण और कहानी पर बाहरी या ऊपरी बोझ की तरह हो जाते हैं।

कभी-कभी कहानी के शीर्षक इतने आकर्षक होते हैं कि सामान्य पाठक तो क्या प्रबुद्ध पाठक भी कहानी को हृदय गम कर जानना चाहते है आखिर कहानीगत हकीकत क्या है। यह बात चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' से लेकर मेहरून्निसा परवेज की 'खेलावादी' और मैत्रेयी पुष्पा की 'चिन्हार' शीर्षक कम लागू होते हैं। वैसे कहानी के सन्दर्भ में तो कहाँ यह जाना चाहिए कि उसका नाम ही सब कुछ है।' वह कहानी के शीर्षक पर पूरी तरह लागू होती है। इसी तरह कहानी का आदि और अन्त भी महत्वपूर्ण है। कहानी के आदि से ही उसको पढ़ने की ललक

बढ़ती है और उसके प्रभावशाली अन्त से उसकी सार्थकता बढ़ती है। कहानी का घनीभूत अंत देर तक पाठक को याद रहता है और वह उसके दिल और दिमाग में गूँजती रहती है। किसी ने सही कहा है कि कहानी उस घुड़दौड़ की तरह है जिसमें आदि और अन्त ही देखा जाता है।

हिन्दी कहानियों की संरचना पर विदेशी कथा-भूमि औार शिल्प वैचित्र्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है बात चाहे वर्णनात्मक विवेचन, संवाद, और पत्र-शैली आदि कहानियों की हो या स्ट्रीम आफ अन्कान्शिय चेतना प्रवाह की अबाधित धारा अथवा फ्लैशबैक शैली की हो । क्योंकि बीसवीं शताब्दी की शुरूआत में पश्चिम में आधुनिक कहानी ने लगभग एक शताब्दी की यात्रा सम्पन्न कर ली थी। उसके अनेक रूप और परिभाषाएँ बन और टूट चुकी थी। अंग्रेजी के ओ हेनरी,फ्रांस के मोपासाँ और रूस के चेखव - ये तीन कालजयी कहानीकार कहानी को आधुनिक रूप प्रदान कर चुके थे।

प्रेमचन्द अपनी कहानी शिल्प की संरचना में एक ओर रतनलाल सरशार की किस्सागो शैली से प्रभावित थे, (जो उर्दू साहित्य के प्रारम्भिक सरताज रहे हैं) तथा दूसरी ओर अलेक्सान्द कुप्रिन के 'यामा द पिर' की अन्तजर्टिल भाषा-शिल्प शैली से, जिसका परिणाम हम 'सेवासदन' उपन्यास और 'दूध का दाम' व 'कफन' कहानी में देख सकते है। XXX प्रसंगवश राजेन्द्र यादव, डी.एच. लोरेन्स और चेखव की कथा-शैली से प्रभावित रहे हैं। तो निर्मल वर्मा और अज्ञेय डी.एच.लोरन्स के रोमांटिक अवसाद की भाषा-शैली से। राजकमल चौधरी की कहानियों में युवाचेतन प्रणाली धारा की आत्मगत शैली उभरकर आती है तो शिवमूर्ति और अरूण प्रकाश की कहानियों में 'दलित वर्ग - निम्न वर्ग की भाषा-शैली परिलक्षित होती है। (5)

भाषा-शैली शिल्प के आगामी अनुच्छेद में प्रसंगानुसार चर्चा की जायेगी। पर नयी कहानी आन्दोलन के छठवें दशक से वामपंथी- जनवादी कहानी संरचना में गुणात्मक अंतर दिखायी पड़ता है वकौल वेदप्रकाश अमिताभ के यह आकस्मिक नहीं है कि नवें दशक में या तो प्रचलित कथन पद्धतियों को कुछ संशोधन के साथ अपनाया गया है या कतिपय नई शिल्प-प्रविधियों को आजमाया गया है। कथित 'रसवाद' के नाम पर शिल्प की उपेक्षा की प्रवृत्ति इधर बहुत कम हुई है। हालाँकि नवें दशक में द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण', निर्मल वर्मा से लेकर सुनील सिंह, प्रेमकुमार जैसे एकदम युवा कहानीकारों की कहानियाँ एक साथ प्रकाशित हुई हैं और उनमें बोध और अन्तर्दृष्टि के स्तर पर काफी फर्क है, इसके बावजूद सभी पीढ़ियों के कहानीकार शिल्पविधान को लेकर उदासीन,नजर नहीं आते हैं यह अवश्य है कि बहुत-सी कहानियाँ, इसके बावजूद बुनावट के लिहाज से अधूरी और अनुपयुक्त लगती हैं। इस सन्दर्भ में ओम प्रकाश गेवाल का यह मत गौरतलब है : "रचना-प्रक्रिया में आनेवाला बदलाव नई वस्तु के दबाव के तहत कई बार काफी हद तक बिना किसी सचेत अथवा सुनियोजित प्रयास किए ही आरम्भ हो जाता है, पर कुछ कहानियों में वस्तु और रूप की

अन्तःक्रिया बहुत अधिक सधी हुई और अधिक निखरी हुई नहीं दिखाई देती।" (6)

कहा जा सकता है कि ओम प्रकाश ग्रेवाल की बात में, कहानी के रूप-विन्यास रचना प्रक्रिया और भाषा-शैली के संदर्भ में काफी दम है। कारण हमारे लेखकीय-वर्कशाप और लेखन शिल्प के प्रारूप नहीं के बराबर अस्तित्व में है। वैसे अमरीका से एक मासिक पत्रिका - 'दि राइटर' प्रकाशित होती है। उसमें अक्सर ऐसी समस्याओं पर जानकारी दी जाती है -राइटिंग ट्रेड, स्टोरी राटिंग फार प्राफिट, हाउ टू राइट स्टोरीज दैट सेल, टेल दैम व्हाट यू टोल्ड दैम। हिन्दी में कोई ऐसी पत्रिका या पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई हालाँकि कहानी पर अब तक प्रकाशित अधिकांश आलोचनात्मक पुस्तकें उन्हीं की भद्दी नकलें हैं। मगर जाने या अनजाने रमेश बक्षी की वे कहानियाँ उसी मार्ग पर चलती है और हिन्दी में उस कमी को पूरा करती हैं। (7)

सुधी पाठक जानते है कि चन्द्रधरशर्मा गुलेरी॰कृत 'उसने कहा था' कहानी का विन्यास अगर प्लोटोनिक प्रेम और भावाकुलता का है तो प्रेमचन्द अपनी कहानियों में इतिवृतात्मकता और विवेचन शैली का प्रयोग करते रहे हैं। लेकिन निर्मल वर्मा और राजेन्द्र यादव अन्तर्मन की विवशता मानसिक उहापोह के सजग चितेरे रहे हैं। शिवमूर्ति वर्ग-भेद , वर्ग-संरचना को पाठकों की संवाद शैली में उकेरते हैं चाहे वह कहानी 'तिरिया चरितर' हो 'कसाईबाड़'। XXX दीप्ति खण्डेलवाल अगर आंतरिक अनुभूतियों की कथाकार है तो नासिरा शर्मा अलगाव बोध और खण्डित आस्थाओं की कहानीकार हैं। मृदुला गर्ग ने बोल्डनेस से स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की व्यावसायिक-एप्रोच को रेखांकित किया है तो मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामीण-कस्बाई मानसिकता के नारी पात्रों की विवशता के साथ-साथ उनके दुःसाहस और अस्मिता को चित्रित करने का प्रयास किया है। (8)

कहा जा सकता है कि विभिन्न रचनाकारों की कहानियों में प्रयुक्त भाषा-शैली, भाव कहीं पात्रों के मानस संसार का प्रतिबिम्ब होते हैं और कहीं-कहीं रचनाकार के व्यक्तित्व और परिवेश के सवाहक भी। XXX नई कहानी एवं साठोत्तरी कहानी का संबंध जीवन के निकटतम यथार्थ से होने के कारण इनकी भाषा भी यथार्थ के स्पंदनों से गुंफित अनलंकृत भाषा है। इनके भाषागत प्रयोग का कैनवास बड़ा व्यापक एवं विविधोन्मुख है। यह विविधोन्मुखता कहानी की बदलती हुई संवेदना का परिणाम है। संवेदना के नए रूप ने कहानी के कथ्य, पात्र और वर्णन बदल दिये हैं। फलतः भाषा वैविध्यपूर्ण हो रही है। भाषा की इस विविधोन्मुखता में कहीं भी बनावटीपन या कृतिमता नहीं है।

डॉ.सुधा बालकृष्णन के विचारानुसार आज की कहानी की भाषा परिवेशजन्य स्थितियों के प्रति जागरूकता बिखेरती है। बिंब, संकेत एवं प्रतीकों के सहारे जीवन की जटिल उलझी हुई स्थितियों की सहज अभिव्यक्ति बड़ी सरल है। भाषा का यह नया रूप अपने आपको अलंकारिकता एवं

काव्यमय जगत से पृथक रखता आ रहा है। परिणाम स्वरूप भाषा के संस्कृतनिष्ठ विशेषणयुक्त शब्द लुप्त होते जा रहे हैं। इसलिए कहा जाता है कि साठोत्तरी कहानी ने सजावटी, बनावटी और अभिजात मुद्रा की भाषा का सर्वथा परित्याग कर दिया है और शिल्पहीन शिल्प का लिबास ओढ़ लिया है। आंग्ल प्रभाव जहाँ बढ़ा है वहाँ आंचलिक प्रभाव ने भी करामात दिखाई है। मध्य और निम्न वर्गीय जीवन के लिए जिस जीवंत भाषा की आवश्यकता है और हिन्दी कहानी जिसकी कमी महसूस करती रही है वह आज उसे उपलब्ध है.. आलोच्यकाल में बिना आडंबर सत्य और व्यंग्य के लिए जिस भाषा की आवश्यकता थी वह आज उसे उपलब्ध है। (9)

भाषा-शैली की नवीनता और भाव प्रसंगानुसार उनकी प्रयोग शीलता रचनाकारों के लिए चुनौती का प्रश्न और सम्बल रही है। कारण "परम्परागत बोध और रूचि को छोड़कर नई रूचि को अपना लेना उतना आसान नहीं है, जितना कि समझा जाता है। भाव-बोध का प्रश्न सारी मानसिक बनावट और संस्कारों का प्रश्न है और वहाँ किसी नये का प्रवेश तुमुल अन्तर्द्वन्द्व का कारण भी हो जाता है। (10) सुधी विद्वानों को ज्ञात होगा कि जब अकविता की तर्ज पर अकहानी आन्दोलन में रमेश बक्षी, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी और गंगाप्रसाद आदि ने कहानी संरचना में यौन-प्रतीकों का इस्तेमाल किया तो बहुत से आलोचकों ने अपनी नाक-भौं सिकोड़ी। जिस पर राजेन्द्र यादव ने कहा है कि कथ्य और शैली में जहाँ भी कुछ 'अलग' हुआ कि असामर्थ्य और पूर्वाग्रह के शिकंजों में कसी रूचि चीत्कार करने लगती है। अतः अधिकांश पुराने कथाकारों और आलोचकों को आज की कहानी 'ऊल-जलूल और बोर लगती है।' (11)

लेकिन नयी कहानी आन्दोलन के रचनाकारों और कहानी आन्दोलनों के हस्ताक्षरों ने परती जमीन तोड़ी है और सपाटबयानी इतिवृतात्मक तथा वर्णन शैली की राह छोड़कर प्रतीकात्मक शैली अपनायी। कहना न होगा हमारा संकेत दूधनाथ सिंह की 'रीछ' कहानी और निर्मल वर्मा के 'परिन्दे' की ओर ही नहीं है बल्कि अज्ञेय कृत 'रोज' कहानी तथा राजेन्द्र यादव की 'छोटे-छोटे तजमहल' कहानी की ओर भी है। (12) अशोक भाटिया ने भी माना है कि नयी कहानी के अधिकांश कहानीकार भाषा के प्रति विशेष सजग रहे। अमरकान्त (दोपहर का भोजन) तथा भीष्म साहनी (खिलौने) ने अत्यंत सहज तथा बोलचाल की भाषा का सजग प्रयोग किया। मोहन राकेश भी इसी कोटि में आते हैं। दूसरी ओर कमलेश्वर तथा राजेन्द्र यादव ने भाषा से जरूरत से ज्यादा काम लेने का प्रयास किया है। (13)

समर्थ आलोचक देवी शंकर अवस्थी ने भी 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति' के अन्तर्गत कहानी के नये शिल्प और संरचनात्मक तकनीक की ओर इशारा करते हुए कहा है कि जहाँ तक कहानी के शिल्प और तंत्र का प्रश्न है, यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि हम आगे बढ़े हैं। नये जीवन की विविधताओं को, मार्मिक प्रसंगों को सूक्ष्मतर समस्याओं का चित्रित करने के लिए कहानी के शिल्प ने विविध रूप अपनाए हैं। आज

अत्यंत सहज तथा बोलचाल की भाषा का सजग प्रयोग किया। मोहन राकेश भी इसी कोटि में आते हैं। दूसरी ओर कमलेश्वर तथा राजेन्द्र यादव ने भाषा से जरूरत से ज्यादा काम लेने का प्रयास किया है। (13)

समर्थ आलोचक देवी शंकर अवस्थी ने भी 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति' के अन्तर्गत कहानी के नये शिल्प औार संरचनात्मक तकनीक की ओर इशारा करते हुए कहा है कि जहाँ तक कहानी के शिल्प और तंत्र का प्रश्न है, यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि हम आगे बढ़े हैं। नये जीवन की विविधताओं को, मार्मिक प्रसंगों को सूक्ष्मतर समस्याओं का चित्रित करने के लिए कहानी के शिल्प ने विविध रूप अपनाए हैं। आज जीवन का कोई भी खण्ड, मार्मिक क्षण, अपने में अर्थपूर्ण कोई भी घटना या प्रसंग कहानी के तंत्र में बंध सकता है। (14) स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के संकेतात्मक चित्रण के लिए अधिकांश रचनाकारों ने बिम्ब और प्रतीक विधान की शैली अपनायी है, जिससे पाठकीय संवेदना और रचनात्मक क्षमताओं का विकास हुआ है।

7.1 भाषा-शैली सम्बन्धी विवेचन

रचनाकार अपनी कृतियों में पात्र एवं परिवेश के अनुकूल वर्ग संरचना के अनुरूप भाषा-संकेतों का प्रयोग करता है। वर्गीय चेतना के अनुरूप भाषा-शैली का प्रयोग सामान्य पाठक भी चीन्ह लेता है। प्रेमचन्द की रचनाओं में जहाँ सामान्य जन-जीवन, गाँव-कस्बे की बोली-बानी प्रयुक्त हुयी है, रोया दुखना ईश्वर का दरबार, कराहें भरना आदि। वहीं मैत्रेयी पुष्पा और शिवमूर्ति आज भी ग्राम-अँचल की भाषा-शैली का ,तदभव-देशज शब्द रूपों का प्रयोग पात्रों के भाव-प्रसंगों में करते है। पर यह बात निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव के पास सांकेतिक भाषा-शैली में उभरकर आयेगी। (15)

शैली रचनाकार की अभिव्यक्ति और जीवन-शैली की परिचायक नहीं होती है बल्कि उसके व्यक्तित्व और 'विजन' का प्रस्फुटन भी सांकेतिक ढंग से उभरकर आता है। बकौल बच्चन सिंह के "शैली अभिव्यक्ति की विशिष्ट पद्धति होती है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने भावों और विचार की अपेक्षा अपने को अधिक व्यक्त करता है। अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में रचनाकार के अपने उद्देश्य, स्वभाव, दृष्टिकोण, जीवन प्रणाली, आस्था-विश्वास, सन्देह आदि व्यक्त होते चलते हैं। यही उसकी अस्मिता होती है। (16) इसमें रचनाकार के मानस के साथ-साथ उसके जीवन मूल्यों और जीवन प्रणाली की अभिव्यक्ति किसी पात्र-विशेष में उभरकर आती है।

नयी कहानी आन्दोलन की रचनाओं में भाषा-शैली के परिप्रेक्ष्य में हम मोहभंग तनाव-कुण्ठा और संघर्षशील स्थितियों का जायजा ले सकते हैं तो अकहानी आन्दोलन में विक्षोभ नारी अंगो के वर्णन के साथ शाब्दिक खिलवाड़ भी देखने को मिलता है। संकेतपरक रूप में धनंजय वर्मा ने भी कहा है कि भाषा के स्तर पर भी निर्मल वर्मा, दूधनाथ सिंह मेम एक समान कृत्रिमता, ठण्डापन और निर्जीवता मिलेगी। ऐसी भाषा जिसकी संवेदना कब

की मर चुकी है। 'सुख नामी पीड़ा', 'अनाम-मारक व्यथा', 'अनन्त दुखभाव', 'अंधेरी नदियाँ', 'फेन उगलती लहरों का आक्रोश' और 'चांद सितारे डुबाती मेघाच्छन्न जलराशि' यह भाषा तो अब किशोर प्रेमी-प्रेमिकाएँ भी अपने पत्रों में इस्तेमाल नहीं करते। इसे अपनाने को वही मजबूर होते हैं, जो कलाकार की विशिष्टता के आग्रह में कृतिम बिलगाव की कृतिम यातना भोगते हैं और उस यातना के लिए ('आइसवर्ग' के बिन्नू की तरह) करूणा की माँग करते है जबकि हालत अब यह है कि सही लेखन जीती रही जा रही जिन्दगी का सीधा साक्षात्कार और उसे प्रस्तुत करने के लिए अपना मुहावरा साहित्य और काव्य की मृत भाषा से नहीं,सड़कों-गलियों और रोजमर्रा व्यवहार की भाषा से उठा रहा है। (17)

कमलेश्वर रोमांटिक अवसाद की अभिव्यक्ति के लिए 'राजा निरबंसिया' और 'नीली झील' शीर्षक का प्रयोग करते हैं तो मोहन राकेश मोहभंग की प्रक्रिया जतलाने के लिए 'सुहागिनें' और 'मवाली' शीर्षक से अभिव्यक्ति रचते हैं। प्रसंगवश आज की कहानी जीवन से आत्यन्तिक निकटता के कारण भाषा की सहजता के मार्ग में आयत्त प्रत्येक प्रकार के शब्दों को सहज स्वीकार कर रही है। इस कारण उसमें अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का बड़ा ही सहज प्रयोग मिलता है। समाज में शिक्षित वर्ग की बातचीत में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है। उच्च वर्ग के पात्रों के संवादों में अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग रहता है।

अधिकांश महिला कहानीकारों ने प्रेम और परिवार के सन्दर्भ में लिखी गई कहानियों में 'फ्लोर', डेटिंग', 'मीनू', स्मार्ट', 'कॉकटेल' आदि शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। अंग्रेजी शब्दावली का सामान्य प्रयोग लगभग सभी कथाकारों में मिलता है। इससे भाषा को अतिरिक्त सम्पन्नता प्राप्त हुई है। निरूपमा सेवती की कहानी 'तलफलाहट' का एक वाक्य दृष्टव्य है - "मुस्कुराहट में फैले होठों पर जैसे जड़ता का कोई टेप चिपका दिया गया है। (18) मन्नू भण्डारी भावात्मक उत्तेजना और मनःस्थिति के ठहराव के विरोधी विपर्ययों को 'एक प्लैट सैलाब' कहानी में रचती है तो आदिम यौन भावना की अभिव्यक्ति हमें दीप्ति खण्डेलवाल की 'हव्वा' कहानी की भाषा-शैली में परिलक्षित होती है।

कहा जा सकता है कि शानी, राही मासूम रजा, नासिरा शर्मा, मेहरून्निसा परवेज आदि अपनी कहानियों में मुस्लिम पात्रों का चित्रण करते हुए हिन्दी-उर्दू मिश्रित भाषा-शैली का प्रयोग करते हैं। हिमांशु जोशी ने भी माना है कि मुस्लिम समाज पर लिखने वाले कहानीकारों ने संस्कारों से प्राप्त उर्दू शब्दावली से हिन्दी कथा-भाषा को नयी कथन-भंगिमाएँ प्रदान की हैं। (19) नासिरा शर्मा इस दृष्टि से उल्लेखनीय है जिनकी भाषा में कहीं-कहीं एकाध शब्द अप्रचलित मिल जाता है किन्तु वहाँ भी भाषा की रवानगी मौजूद है। उनकी भाषा में उर्दू का रंग बहुत गाढ़ा है -"दो लड़कियाँ दिलाराम और शबतूर ऐसे पाक-साफ कि उनके दामन पर नमाज पढ़ लो.. चचा से कहो कि वह अब्बास और हैदर के लिए मुनासिब होगी दोनों के

कप को मशहद और इस्फाहान में नशे के इल्जाम में फाँसी पर चढ़ाया गया था, मगर उन दोनों का कहना है कि यह केवल आरोप था।" (20)

सुधी विद्वान इस तथ्य से परिचित हैं कि समकालीन कहानी की विकास यात्रा में, विभिन्न आन्दोलनों के समर्थ रचनाकारों ने अपने-अपने नई परिवेश पात्रानुकूल भाषा-शैली के प्रयोग साधे हैं। वैसे हर आन्दोलन के मुख्य रचनाकारों के भाषा-शैली संबंधी प्रयोगों और अन्विति प्रभाव के लिए अलग-अलग शोध कार्य रचे जा सकते हैं।

बहरहाल रूपविधान की सार्थकता का केन्द्र कहानी की भाषिक संरचना होती है। "कहानी की गहन और संश्लिष्ट अनुभूति,संवेदना और प्रयोजन के यथावत सम्प्रेषण के लिए भाषिक संरचना का आत्यान्तिक महत्व है। कहानी की अन्तर्वस्तु जिस समाज और आदमी की होती है, भाषा भी उसी स्त्रोत और परिवेश से आनी चाहिए। भाषिक संरचना की प्रमुख शर्त उसकी सहजता है। सहजता का मतलब सरलता नहीं है। उसका मतलब अभिव्यक्ति की सहजता है जो एक लम्बी रचना- प्रक्रिया और अनुभव या अनुभूति के दीर्घ संघर्ष से प्राप्त होती है। सीधी और सहज भाष एक बेहद परिपक्व, वयस्क और गहरे चिन्तन-मनन का परिणाम होती है।" (21)

कई रचनाकारों ने अज्ञेय और निर्मल वर्मा की तरह अपने-अपने भाषिक प्रयोंगों की चर्चा प्रसंगानुसार वार्ता-सेमिनार-संगोष्ठी आदि में की है। प्रसंगवश मोहन राकेश जैसे समर्थ नाटककार, उपन्यासकार और कहानीकार कहानी-संरचना में भाषा-शैली प्रयोंगों के साथ-साथ सांकेतिकता को महत्व देते हुए कहते हैं कि "सांकेतिकता आज की कहानी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है। यह सांकेतिकता आज की कहानी की या किसी एक भाषा की कहानी की ही उपलब्धि नहीं, कहानी मात्र की एक उपलब्धि है। पुरानी कहानी इस अर्थ में अलग होती है कि उसमें सांकेतिकता का विस्तार पहले से भिन्न स्तरों पर होता है। बात वहीं होती है और जीवन के उसी कैनवस से उठायी जाती है। मगर उसके सम्बन्ध में लेखक के अनुभव की निजता, जीवन के यथार्थ की उसकी व्यापक पकड़ और भाषा तथा शिल्प के क्षेत्र में उसकी अपनी प्रयोगात्मकता उसकी रचना को भिन्नता ओर एक और ही सार्थकता प्रदान कर देती है। (22)

भाषा-शैली के प्रयोग सांकेतिकता, बिम्ब और प्रतीक विधान का मुख्य लक्ष्य सम्प्रेषणीयता और प्रभावान्विती का होता है। इसीलिए धनंजय वर्मा ने भी स्वीकारा है कि कहानी की श्रेष्ठता और उसकी रचनात्मक समृद्धि का सबसे महत्वपूर्ण बिंदु उसका प्रभाव है। कहानी का आकार और आकर्षण उसकी प्रामाणिकता और प्रस्तुति सब मिलकर उसके प्रभाव को एकान्वित और एकाग्र करते हैं। कहानी का घटना- क्रम और स्थिति- विन्यास, चरित्र-सृष्टि और कार्य-व्यापार, रूप-विधान और कलात्मक निर्वाह, सबकी सार्थकता इसी बात में है कि इनका समग्र प्रभाव एकीकृत और समावेशी हो। किसी ने सही कहा है कि कहानी धनुष से छूटा हुआ एक ऐसा तीर है जो

सीधे अपना लक्ष्य वेध करता है। यह लक्ष्योन्मुखता ही कहानी की सार्थकता का केन्द्रीय बिन्दु है। (23)

विवेच्य शोध प्रबन्ध की अपनी सीमा है अतः हम प्रत्येक रचनाकार के भाषा-शैली प्रयोग और शिल्पविधान की विशिष्टता पर टिप्पणी नहीं कर पायेंगे। विगत अनुच्छेदों में हमने कतिपय रचनाकारों की रचनात्मक अभिव्यक्ति के भाषा-शैली प्रयोगों और अभिव्यक्ति शिल्प की सम्यक विवेचना करने की कोशिश की है। लेकिन वे सूत्र वाक्य हो सकते है विवेचन के सार रूप में। यही सूत्र-शैली धनंजय वर्मा अपनाते हैं, जो हमारे कथन का सार-प्रमाण भी है कि अज्ञेय और जैनेन्द्र से अधिक सामाजिक यथार्थ के लेखक है लेकिन यशपाल निकाय के लेखकों से अधिक गहनतर अभिप्रायों के भी। इसी तरह समकालीनों में भी जहाँ निर्मल वर्मा की काव्यात्मक, रूप और दायित्व-बोध-पूर्ण है, वहीं राकेश, शानी और अमरकान्त की 'इकहरी' बुनावट वाली कहानियों के विषय और पात्रों की तरह व्यक्ति और परिवेश की आन्तरिक चुनौतियों से कतराने की विवशता भी उनमें नहीं है। दरअसल वे इन दोनों ही रचना-संचेतनाओं के बीच एक सेतु की तरह है और यही पूर्व परम्पराओं का विकास, और उनमें कुछ नया संयुक्त कर जाना है।" (24)

अकहानी आन्दोलनों के रचनाकारों ने शब्दों के जैघन्य विस्फोट से, यौन प्रतीकों के प्रयोग से भाषायी अभिव्यक्ति की परती जमीन तोड़ी है वही वामपंथी-जनवादी रचनाकारों ने राजनैतिक चेतना से संवलित वर्ग चेतना की शब्दावली का प्रयोग किया हे। कहीं-कहीं पर स्त्री विमर्श की पक्षधर महिला लेखिकाओं ने अनेक स्थलों पर भावुकता और रोमानी-बोध से मुक्ति के प्रमाण दिए हैं। ऐसी भाषा की पृष्ठभूमि जयशंकर प्रसाद, निर्मल वर्मा आदि कहानीकारों ने निर्मित की थी। शिवानी की भाषायी सीमाएँ भी उनकी भावुकतापूर्ण दृष्टि के कारण बनती हैं। फिर भी इन महिला लेखिकाओं की भाषा में प्राणवत्ता है। दीप्ति खण्डेलवाल का उद्धरण है, " कविता से जुड़ती बात कमीज पर आकर टूट जाती है और आलिंगनबद्ध भुजाओं के बीच अनाम दूरियाँ फैल जाती है ...सबेरे के उजास में मुझसे फूटते उजास को देखें।" (25)

ममता कालिया प्रेम के सन्दर्भ में बिना भावुक हुए कहती है, "मैं पुरूषों में शायद ही कभी अप्रिय हो पाई थी।" (26) रूप चित्रण में पुरूष लेखकों की भाषा भी दृष्टव्य है। रमेश गुप्त के इस उद्धरण के उपमान बडे सांकेतिक तथा नूतन रूप में आए हैं, "राज ! तुम..!! अजन्ता की गुफा नम्बर पैंतीस से एक मूर्ति दीवाल से उतरी और चौखट के इस फ्रेम में आकर फिट हो गई।" (27) वास्तव में भाषा-शैली की नवीनता एक ओर रचनाकारों की क्षमता का विकास दर्शाती है वहीं पाठनीय संवेदना और संप्रेषण का सशक्त माध्यम बनती है।

कहानी के शिल्प विधान और शिल्प प्रयोगों की चर्चा एक दुश्कर कार्य है। शिल्प विधान की संरचना में भावों विचारों के अभिव्यक्तिगत पैटर्नो में प्रतिबद्ध रचनाकारों ने अपनी संवेगात्मक तीव्रता और सामाजिक व्यापकता के

मुताबिक जिन विभिन्न शैली रूपों को अपनाया है ; अपनी वैचारिक और शिल्प वैविध्य अभिव्यंजना रची है। वे निम्न प्रकार से वर्णित है :

1. इतिवृतात्मक (वर्णनात्मक) शैली
2. विवेचन शैली
3. भावाभिव्यंजन शैली
4. फ्लैश बैक शैली
5. व्यंग्यात्मक शैली
6. वार्तालाप शैली
7. वक्तव्यपूर्ण शैली
8. तर्कपूर्ण शैली
9. कथा-किस्सागो शैली
10. पत्र शैली
11. बिम्बात्मक शैली
12. प्रतीकात्मक शैली
13. चेतना-प्रवाह की शैली
14. फैण्टेसी शैली

इतिवृतात्मक कहिए या **वर्णनात्मक शैली** दोनों को वाटर टाइट कम्पार्टमेण्ट में रखा नहीं जा सकता है। कारण वर्णनात्मक शैली कहानी की विशिष्ट शैली है। "इसमे कहानीकार एक तटस्थ दृष्टा की भाँति कहानियों में आई घटनाओं, स्थितियों और पात्रों की मनःस्थितियों का विवरण चुस्त-दुरस्त भाषा में देता जाता है। इस प्रकार की कहानियों में लेखक को अपनी बात कहने की पूरी छूट रहती है, उसकी अभिव्यक्ति पर किसी भी प्रकार का अंकुश नहीं रहता।" (29)

इतिवृतात्मक रूप में पात्रों के परिवेश जीवन शैली और विचार प्रणाली का परिचय मुख्य बात होती है, जिसे कथाकार वर्णन करते हुए पाठकों को पात्रों का स्वाभाविक रूप दर्शाता है। प्रसंगवश वर्णनात्मक शैली में लिखनेवाली लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वर्णनात्मक शैली में लिखी उनकी एक कहानी है 'अकेली' ! मन्नू जी की इस शैली का उदाहरण निम्नलिखित है " सोमा बुआ का जवान बेटा क्या जाता रहा ? उनकी अपनी जवानी चली गई। पति को पुत्र-वियोग का ऐसा सदमा लगा कि वे पत्नी, घर-बार तज कर तीरथ वासी हुए औए परिवार में ऐसा कोई सदस्य नहीं था जो उनके एकाकीपन को दूर करता । पिछले बीस वर्षो से उसके जीवन की एकरसता में किसी प्रकार का कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ, कोई परिवर्तन नहीं आया। यों हर साल एक महीने के लिए उनके पति उनके पास आकर रहते थे।" (30) एक प्रकार की नीरसता और इतिवृतपरक विवेचन कहानी में उपलब्ध है जो पाठकों में हम दर्दी जगाता है मन में टीस भर देता है।

इतिवृतात्मक परिवेश के सम्पूर्ण चित्रण के लिए ख्यात है तो वर्णनात्मकता पाठकों को सम्पूर्ण रूप दर्शाती है। इतिवृतात्मक और वर्णनात्मक शैली में

लिखी दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी प्रेत का उदाहरण दृष्टव्य है "नीलिमा ने सपनों के भार से झुकती पलकें ऊँची की तो देखा- वह एक कोठरीनुमा कमरे में है- बदरंग दीवारें, मकड़ी के जाले, दौड़ लगाती, छिपकलियाँ। कोने में काफी कबाड़ भी पड़ा था। तो यह है उसका मिलन स्थल... और सुहाग सेज ? एक खटिया पर मैली-सी चादर और दो तकिए। नीलिमा ने चादर का कोना उठाया चादर के नीचे और भी मैली दरी थी, गद्दा नहीं। नीलिमा रूआँसी हो गई। पसीने से उसका सारा बदन चिपचिपा रहा था नीलिमा ने अपने आप को देखा- गुलाबी रंग की बनारसी साड़ी, जड़ाऊ गहने, जिनके बोझ से वह दबी जा रही थी।" (31)

विवेचन शैलीः मैत्रेयी पुष्पा और नासिरा शर्मा की कहानियों का शिल्पविधान विवेचन शैली का है। उदाहरण के लिए मैत्रेयी पुष्पा की 'ललमनियाँ' और नासिरा शर्मा की 'प्रोफेशिएनल वाईफ' कहानी का हवाला काफी होगा। नासिरा शर्मा ने 'बनी' नायक युवती का जिक्र विवेचन शैली में किया है। बनी के बारें में वह पृष्ठभूमि बुनती है कि "अपवाद रूप में लड़कियाँ और औरतें भी जो प्रोफेशन से अलग इमोंशन में जीना चाहती थी। वह बॉस या कुलीग की इच्छा को मानने से इन्कार करने लगी थी। (दूसरा ताजमहाल पृ.89) कहानी में बनी कथा नैरेटर के सामने कन्फेशन करती है विवेचन शैली में - " मेरे जिस्म में न सेक्स की चाहत बची है और न ही किसी से मुझे प्यार हो सकता है। मेरे साथ एक-दो बार नहीं बल्कि कई बार मेरा बलात्कार हुआ है, मैं अन्दर से टूटी हुई हूँ। सर बहुत चाहते हैं मुझसे शारीरिक संबंध स्थापित करना, मगर मुझमें उमंग नहीं जगती।(32)

भावाभिव्यंजन शैली -आत्मकथात्मक शैली : कहानी का नैरेटर अगर रचनाकार खुद हो वह आत्मकथात्मक शैली में विषय-वस्तु पेश करेगा और अगर वह प्रौढ़ और मेच्योर मस्तिष्क का होता तो भावाभिव्यंजना के रूप में चित्रित करना चाहेगा। आत्मकथात्मक शैली में कहानीकार आत्म परिचय के द्वारा कहानी कह कर पाठकों से आत्मीयता स्थापित कर लेता है। कहानी की सारी घटनाएँ एवं सारी परिस्थितियाँ एक ही पात्र के अर्थात कहानीकार स्वयं के इर्द-गिर्द घूमती रहती है, जिस कारण कहानी के दूसरे पात्र अनदेखे रह जाते हैं। इस शैली के अन्तर्गत चरित्र का आत्मविश्लेषण उत्कृष्ट ढंग से होता है। आत्मकथात्मक शैली को अपनाते समय लेखक को बड़ी सुविधा मिलती है। मन में सूक्ष्म से सूक्ष्म कोने में झाँकने की कोशिश वह सफलतापूर्वक करता है। इस कारण उसकी अनुभूति ज्यादा यथार्थपूर्ण बनती है।

आत्मकथात्मक शैली में कहीं-कहीं पाठक को ऐसा आभास होने लगता है कि प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्धित अनुभूतियाँ लेखक की अपनी ही हैं। कहीं-कहीं भोगे हुए क्षणों की अभिव्यक्ति का आभास होने लगता है। ऐसे प्रसंगों में अनुभूति की सक्षमता आत्माभिव्यंजनात्मक स्थिति से जुड़कर हमारे सम्मुख प्रस्तुत हो जाती है। इस कारण आत्मकथात्मक शैली में लिखी

कहानियाँ गहरी आत्मीयता के बोध को लेकर पाठक के मन में प्रभाव की सृष्टि करती हैं।

निरूपमा सेवती की कुछेक कहानियाँ आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है। जैसे "मैंने कुछ ऐसा ही महसूस किया, एक युग बीत गया है और हम दोनों चलते जा रहे हैं और बस चलते ही जा रहे हैं। उस संकरी पगडंडी पर चलते हुए जब पिछले मोड़ पर वह कुछ आगे निकल गई तो एक निर्वसन सी चुप्पी हमारे बीच आ ठहरी थी...मैं लगातार महसूस कर उठा कि हम जाने कब से शायद हमेशा से यूँ ही चले आ रहे ।" (33)

फ्लैश बैक शैली : सामान्य पाठक और आलोचक फ्लैश बैक शैली को पूर्व दीप्त शैली कहते हैं। लेकिन यह मानना होगा कि लेखन कला में पूर्व दीप्ति शैली हिन्दी कहानी की एक विशिष्ट शैली है लेकिन कहानियों में इस शैली को पूर्ण रूप से स्वीकृति नहीं मिली है। कहानी के आदि या मध्य कहीं इसका प्रयोग किया जाता है। "पूर्वदीप्ति शैली में कथा-सूत्र अतीतोन्मुख होता है, वर्तमान से सम्बद्ध घटना चक्र पात्रों की स्मृति से जुड़कर किसी विगत घटना का अंग बनता है और इन्हीं स्मृतिखण्डों में कहानी का रूप-विधान किया जाता है। इस पद्धति का मूलाधार अतीत की वे घटनाएँ तथा स्थितियाँ हैं जो स्मृति के सहारे वर्तमान से जुड़ती हैं और उससे एकमेव होकर कहानी में जीवंतता लाती है।", (34)

फ्लैश बैक शैली का प्रयोग अनेक समर्थ रचनाकारों ने प्रसंग व कथ्य की मांग के रूप में किया है। शिवमूर्ति की 'केशर कस्तूरी' और मैत्रेयी पुष्पा की 'ललमनियाँ' फ्लैश बैक शैली का सर्वोत्तम उदाहरण है। फ्लैश बैक का एक कलात्मक उदाहरण उषा प्रियंवदा की कहानी 'मोहबन्ध' में अभिव्यक्त हुआ है। "अचला का मन छटपटाने लगा -किसी को इतना अनुराग, सुख और मान, किसी के भाग्य में कुछ नहीं ...बहुत दिनों पहले का एक सपना, एक याद दबे पाँव उसकी आँखों में आकर खड़ी हो गई है। अचला को लगा कि नीलू उसके पास के पलंग पर लेटी है कमरे में अँधेरा है, दोनों जाग रही हैं, पर दोनों मौन हैं। ... अचला ने मुँह में आंचल दबा रखा है - नीरव अश्रु उसकी कनपटियों से होकर तकिए पर गिर रहे हैं -निःशब्द क्रन्दन से उसका शरीर काँप रहा है। नीलू ने कुछ देर बाहर से आकर कपड़े बदले हैं- नीलू के तकिए के नीचे एक पत्र है मुझे इस बात की खुशी है कि मुझे प्यार भी मिला तो तुम्हारी सी सुन्दर लड़की का -"लिपि देवेन्द्र की है पत्र नीलू के लिए।" (35) इस प्रसंग में अचला, नीलू के वर्तमान के सुखपूर्वक जीवन को देखकर अतीत की एक घटना को अपने स्मृति पटल में साकार करती है।

व्यंग्यात्मक शैली : व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग हरिशंकर परसाई और शरद जोशी की विशेषता है। वैष्णव की फिसलन में व्यापारी वर्ग की स्वार्थी और दोहरेपन की प्रवृत्ति को व्यंग्यपरक शैली में दर्शाया गया है। परसाई की व्यंग्य शैली का निर्वाह कालान्तर में नरेन्द्र कोहली, सुधा अरोड़ा, और संतोष

श्रीवास्तव आदि ने किया है। सुधा अरोड़ा की कहानी "महानगर की मैथिली' अपने आप में नारी-नियति पर त्रासद व्यंग्य है।

वार्तालाप-संवाद शैली तो अनेकानेक रचनाकार प्रयोग करते हैं। राजेन्द्र यादव के 'छोटे-छोटे ताजमहल' और मैत्रेयी पुष्पा की 'चिन्हार' कहानी तथा रोहिताश्व कृत 'दोना पावला और तीन औरतें' कहानी में संवाद शैली में भावत्मक रीतापन और रोमांटिक अवसाद तलाशा जा सकता है। निर्मल वर्मा की परिन्दे कहानी में भी लतिका और उसके अतिथि की संवाद शैली लाक्षणिक अर्थ की प्रतीत कराती है। (36)

वक्तव्यपूर्ण शैली पाठकों में कभी-कभी ऊब की प्रतीति करा देती है। पर पुराने ढंग के रचनाकर कहानी से उपदेश और वक्तव्य का कार्य लेना चाहते हैं। भगवतीचरण वर्मा कृत 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' और विष्णु प्रभाकर की कहानी 'ठेका' में वक्तव्य की भरमार है।

तर्कपूर्ण शैली कहानी की विषयवस्तु की स्वाभाविक माँग बनकर आये तो यह शिल्पपरक कारीगरी का प्रमाण होता है। नसिरा शर्मा ने सगोत्रीय विवाह की पेचदगी पर 'पंचनगीनावाले' कहानी में दादाजी के तर्क का माहौल रचा है - "पन्ना की बहू, तुम्हारे मरने के बाद यह लड़की तुमको कोसेगी। अपनी खण्डहर जिन्दगी देखकर वह हमारी पूजा नहीं करेगी। पहले हमको अपने बच्चों की खुशियाँ देखनी है फिर जात बिरादरी और खोखले ढकोसले।" (37)

कथा-किस्सागो शैली : कथा-किस्सेगो शैली प्रचीन शैली भी है तिलिस्मी जासूसी रोमांच उपन्यासों के दौर की भी और यह अर्वाचीन कथा-शैली में भी समर्थ रचनाकारों द्वारा प्रतीत होती है। कमलेश्वर ने 'राजा निरबंसिया' कहानी में किस्सागो शैली और लोक-कथा की प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया है। शिवमूर्ति (कसाईबाड़ा), संजीव (कामरेड का कोट) आदि रचनाकार प्रायः किस्सागो शैली का प्रयोग कर लेते हैं।

पत्र-शैली : कहानी-कला-विन्यास में पत्र शैली का प्रयोग काफी पुराना है। राजेन्द्र यादव ने 'पुराने नाले पर नया फ्लैट' (38) में इसका नवीन ढंग से प्रयोग किया है। मोनोलाग शैली में एक पात्र अपनी बात अपने ढंग से करता है तो दूसरा पात्र प्रश्नोत्तर, अन्य घटनाएँ और आत्मकथन अपनी शैली में कहता है। पत्रात्मक शैली में कहानीकार पत्रों को माध्यम बनाकर कहानियों का रूप विधान करता है। इस शैली के अन्तर्गत कहानीकार एक या एक से अधिक पात्रों के माध्यम से कहानी प्रस्तुत करता है। पत्रात्मक शैली तभी प्रभावात्मक बनती है जब किसी विशेष परिस्थिति के दबाव से उत्पन्न मानसिक संघर्ष की स्थिति में लेखक लिखने को विवश होता है। इस शैली में कभी-कभी अस्वाभाविकता उत्पन्न होती है, क्योंकि बहुत सारी अंतरंग बातों को और पूर्व घटनाओं को स्थितियों को व्यक्त करने में कठिनाई उत्पन्न होती है। इस कारण कोई एक विशेष मानसिक अवस्था के प्रतिपादन से और तजन्य प्रतिक्रियाओं के अंकन में कहानीकार को ध्यान देना पड़ता है। वैसे पत्रात्मक शैली उतनी लोकप्रिय नहीं है। दीप्ति

खण्डेलवाल की कहानी का उदाहरण - "डियर घोष, मेरे हमदम मेरे दोस्त।"

जब तक यह पत्र तुम्हारे हाथों में होगा, तुम्हारी आँखें इसे पढ़ रही होगी, तब तक मैं सदा के लिए आँखें मूँद चुका होऊँगा, तुमसे , सबसे ...बहुत दूर... । पता नहीं मृत्यु के उस पार क्या होता है ? तुम जरूर सोचोगे कि मेरा दिमाग चल गया है, यानी कि तुम्हारा यह दोस्त, शहर का सबसे काबिल प्रसिद्ध सर्जन... पागल हो गया है... तुम्हारा जय।" (39)

बिम्बात्मक शैली : निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर ने जहाँ मध्यवर्गीय जीवन की विसंगति को दर्शाने के लिए कथा-साहित्य में बिम्ब का प्रयोग किया है। जो ऐन्द्रिय संवेदन ही नहीं होते बल्कि दो विरोधी भावनाओं और विचारों के तनाव को भी रेखांकित करते है। 'परिन्दे', 'टूटना', 'राजा निरबंसिया', तथा 'सुहागिनें' आदि कहानियों से लेकर मैत्रेयी पुष्पा की 'चिन्हार' आदि कहानियाँ इस संदर्भ में उद्घृत की जा सकती है।

प्रतीकात्मक शैली : बिम्ब कल्पनाजन्य रूप होते है, जो अमूर्त को मूर्त करते हैं, वे कवि कल्पना और रचनाकार के मानस के प्रतिरूप होते हैं, विशेषकर व्यक्तिजन्य। लेकिन प्रतीकों का रूढ़ अर्थहोता है। उदाहरण के लिए - वटवृक्ष पर्धाम होता है प्रतीकार्थ के दृढ़ता का, कमल सांस्कृतिक चेतना का, परिन्दा उन्मुक्त भावना का, हनुमान सेवाभाव का, (40) कृष्ण लोकरंजक रूप का, राधा का प्रेम एकान्तिक राग का। समकालीन कहानीकारों ने अपनी सांकेतिक अर्थ प्रतीति के लिए अपनी विभिन्न रचनाओं में प्रतीकों का प्रयोग किया है। मुक्तिबोध आत्मा की छटपटाहट के लिए 'ब्रह्मराक्षस' प्रतीक व लीजेण्ट का प्रयोग करते हैं तो दूधनाथ सिंह पुरूष वर्ग का यौन लिप्सा का प्रतीक 'रीछ' कहानी में उकेरते हैं। रोमांटिक अवसाद का प्रतीक 'नीली झील'. कहानी है कमलेश्वर की तो 'राजा निरबंसिया' कहानी लोक कथा और आधुनिक विसंगतिबोध का समानान्तर पर्याय अपने प्रतीकार्थ में जगजाहिर है।

अवचेतन की चेतना प्रवाह शैली : स्ट्रीम आफ अनकांशियस के अर्थ में चेतना प्रवाह शैली का प्रयोग अधिकांश लेखिकाओं ने किया है। मृदुला गर्ग की कुछेक कहानियों में इस शैली का सार्थक निर्वाह हुआ है जैसे- "उसने सोचा था, महेश न जाने कितना चंचल और संत्रप्त हो उठेगा, कहीं रो न दे, तब वह भी रूंधे गले से हाथों से मुख ढांपकर कहेगी ... महेश, मैंने तुम्हें प्यार किया है, अभी भी करती हूँ, अपने से लड़ती रही हूँ, अविरल, निरन्तर, पर हर बार मेरी हार हुई है। जैसे मैं दो भागों में विभक्त हूँ, हारी हूँ अपने ही इस नूतन रूप से, मैं क्या करूँ प्यार किया नहीं, हो जाता है यह मुझे खींचे लिए जा रहा है। मुझे माफ करो मैं तुम्हें बहुत दुख दे रही हूँ, पर मुझे जाने दो .. पिछले दो वर्षो से अनेक क्षण आये है जब उसने स्वयं यही सोचा है कि शारीरिक सुख के अलावा इसमें कुछ नहीं है। (41)

राजेन्द्र यादव की कहानी 'अभिमन्यु की आत्महत्या' और नसिरा शर्मा की 'दूसरा ताजमहल' कहानी अवचेतन की अबाधित धारा और चेतना प्रवाह की कहानियाँ है। वास्तव में शिल्प प्रयोग की छानबीन और शिल्प-पैटर्नो का व्यावहारिक विश्लेषण एक जटिल कार्य है। शोध कार्य की अपनी सीमा है अतः हम कहानी-संरचना में प्रयुक्त बिम्ब एवं प्रतीक विधान की विवेचना अगले अनुच्छेद में अपनी सीमाओं के अन्तर्गत करना चाहेंगे।

7.2 बिम्ब और प्रतीक सम्बन्धी विश्लेषण

समकालीन कहानी के विभिन्न रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में बिम्ब और प्रतीक संकेतों का व्यापक प्रयोग किया है। युग की उलझन और विसंगतिपूर्ण स्थितियों की जटिलता को अभिव्यक्त करने के लिए बिम्ब और प्रतीक शैली की पद्धति को अंगीकार किया गया है। परमानंद श्रीवास्तव ने भी माना है कि "मानसिक प्रतिक्रियाओं को अधिक गहरे स्तर पर व्यक्त करने के लिए असम्बन्ध और टूटे हुए बिम्बों को सम्पूर्ण सार्थकता में उपलब्ध करने का प्रयत्न आज के कुछ आत्मचेता कहानीकारों में है। इसमें संदेह नहीं हो सकता है। [42] वर्तमान दौर की कहानियों में बिम्ब संश्लिष्ट अर्थ का और प्रतीक विधान सांकेतिक अर्थ के संवाहक होते हैं।

वस्तुतः कहानी के सफल रूपविधान और सार्थक निर्वाह की यह शर्त है कि वह पाठक की गहरी तल्लीनता और सक्रिय हिस्सेदारी ले सके। उसके प्रभाव की समग्रता, तीव्रता और अन्विति अर्जित की जा सके। उसमें प्रसंग और घटनाएँ, चरित्र, गतियाँ, यथार्थ स्थितियाँ, कलात्मक तनाव और रचनात्मक संतुलन में अनुस्यूत हों। एक सफल और सार्थक कहानी पाठक की इतनी अपनी हो जाती है कि वह उसे हमेशा याद रखता और उसका हवाला देता है। वह उसके अनुभव और चेतना, दृष्टि और विवेक का अंग हो जाती है। [43] और यह बात बिम्ब की सांकेतिकता और प्रतीकार्थ अर्थ पर ज्यादा निर्भर होती है। राजेन्द्र यादव कृत 'छोटे-छोटे ताजमहल' कहानी और कमलेश्वर कृत 'राजा निरबंसिया' कहानी की प्रतीकात्मकता जगजाहिर है। यही हश्र उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी और मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' की बिम्ब सृजना का है जो एक लम्बे दौर तक पाठक वर्ग के मनमस्तिष्क पर छायी रहती है।

बिम्ब प्रयोग : बिम्ब की परिभाषा अनेकानेक पाश्चात्य और भारतीय आलोचकों ने रची है जो उसके वस्तुगत अर्थ को अलग-अलग आयामों में उकेरने में समर्थ है। यथा बिम्ब अंग्रेजी शब्द image का हिन्दी रूपान्तर है। उसका सीधा अर्थ यह होगा "किसी पदार्थ को, विचार-अनुभूति को मूर्त रूप प्रदान करना, भावों को चित्रबद्ध करना अथवा मानवीय संवेदनाओं में रूपाकृति प्रदान करना। [44] अन्यान्य परिभाषाएँ इस प्रकार है -

1. बिम्ब एक प्रकार का शब्द चित्र है। [45]
2. बिम्ब वस्तुओं के आंतरिक सादृश्य का प्रत्यक्षीकरण है। [46]

3. बिम्ब ऐन्द्रिय माध्यम के द्वारा आध्यात्मिकता अथवा तार्किक सत्यों तक पहुँचने का एक मार्ग है। (47)
4. बिम्ब एक अमूर्त दिचार अथवा 'भावना' की पुनर्रचना है। (48)
5. बिम्ब दो विरोधी संवेदनाओं अथवा अनुभूतियों का आंतरिक तनाव (टेन्शन) है । (49)

आई.ए.रिचर्डस ने कालरिज के कल्पना सिद्धांत को विकसित करते हुए कहा है कि बिम्ब एक दृश्य चित्र, संवेदना की अनुकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार दो भिन्न अनुभूतियों के तनावों से बनी एक भाव स्थिति कुछ भी हो सकता है। (50) रिचर्डस के अभिमत पर केदारनाथ सिंह की टिप्पणी है कि "बिम्ब एक ओर स्पष्ट और स्थूल रूप से दृश्य और दूसरी ओर नितान्त गहन और अमूर्त भी हो सकता है। पूरे संवेग और वासना 'पैशन' के साथ रखता हुआ एक सीधा-सादा विचार (आईडिया) भी बिम्ब हो सकता है। (51)

एजरा पाउण्ड का अभिमत कहानी संरचना में ज्यादा मौजूँ माना जायेगा कि बिम्ब वह है जो काल की तात्कालिकता में बौद्धिक और भावात्मक संसृष्टि उपस्थित करता है। (52) उदाहरणतः उषा प्रियंवदा की 'स्वीकृति' कहानी के दृश्य बिम्ब का अंश दृष्टव्य है "तट के किनारे सघन वृक्ष, जिनके पत्ते पतझर के आगमन की सूचना देते हुए हल्के पीले पड़ गये है, दाई ओर एक सार्वजनिक टेलीफोन बूथ, तट से सटा एक कैफे का, जिसकी दीवारों का सफेद रंग पानी में धुल-धुल कर मैला हो गया है। (कितना बड़ा झूठ पृ.82) यहाँ लेखिका ने सूक्ष्म विवरणों के माध्यम से दृश्य को जीवन्त बनाया है। इस तरह के दृश्य बिम्बों के माध्यम से कहानी की भाषा का सौन्दर्य तो बढ़ता ही है साथ ही साथ बिम्ब-सादृश्यता से कहानी के पाठ और आस्वादन की सीमाएँ भी गहराने लगती हैं।

नयी कहानी आन्दोलन में 'नयी कविता' की तर्ज पर समान्तर रूप से कथ्य एवं रूप में बदलाव समसामयिक परिवेश और मानसिक विक्षोभ से गहराये है। कारण रचना जब कथ्यगत दबाव से संचालित होती है, तो संरचना-स्तर पर भी अनेक परिवर्तन सहज़ रूप में आते है। वास्तव में 'नयी कहानी' ने कहानी के तात्विक ढाँचे को तोड़ा। कथानक के परम्परागत,वर्णनात्मक रूप का स्थान अब किसी जीवन स्थिति, प्रसंग या विचार ने ले लिया। इसमें लेखकीय क्षमता भी उजागर हुई। परिवेश केन्द्रित होने के कारण नयी कहानी के अन्त में लेखकीय टिप्पणियाँ विलुप्त हो गयी। कहानियों में काव्यात्मक बिम्ब परकता तथा प्रतीकात्मकता ने स्थान बना लिया।" कहानियों के शीर्षकों पर प्रतीकात्मकता का वर्चस्व रहा। 'जिन्दगी और जोंक' (अमरकान्त), 'छोटे-छोटे ताजमहल' (राजेन्द्र यादव) इसका प्रमाण है। लोक कथाओं, पुराण कथाओं की शैली को भी यहाँ समुचित महत्व दिया गया। (53)

कहा जा सकता है कि राजेन्द्र यादव की कहानी 'अभिमन्यु की आत्महत्या' और कमलेश्वर की राजा निरबंसिया' के शीर्षक में पुरातन प्रतीकों की गन्ध समायी हुई है। प्रतीक अभिव्यक्ति रूढ़-अर्थ अपनाये हुए होते है, नये पैटर्नो में उन्हें डी-कार्ड करना पड़ता है जबकि कहानियों में ताजगी 'बिम्बधर्मिता' से उभरती है। वर्तमान दौर की कहानियों में बिम्बों का व्यापक प्रयोग हो रहा है। युग की उलझन भरी स्थितियों की जटिलता को व्यक्त करने के लिए साहित्य में बिम्बों के प्रयोग पर विशेष बल दिया जा रहा है। बिम्ब मुख्यतया दो प्रकार के होते है -स्थूल संवेदनात्मक और सूक्ष्म संवेदनात्मक। सूक्ष्म संवेदनात्मक बिम्ब पाँच प्रकार के है -1. दृश्य या चाक्षष बिम्ब 2. श्रव्य या नादात्मक 3. स्पर्श 4. गंध या प्राण विषयक 5. आस्वाद्य बिम्ब। स्पर्श बिम्ब का एक उदाहरण - "वह गाड़ी के साथ कदम आगे बढ़ाता है और मेरे हाथ पर धीरे से अपना हाथ रख देता है। मेरा रोम-रोम सिहर उठता है। मन करता है चिल्ला पड़ूँ - मैं सब समझ गई निशीथ, खूब समझ गई।" (54) प्रसंगवश यहाँ के स्पर्श के साथ रोम-रोम के सिहरने में बिम्बात्मकता है। इस बिम्ब के माध्यम से नायिका की मानसिक प्रतिक्रियाओं की स्पष्ट झलक मिल जाती है। नायक एवं नायिका की अनुभूतियाँ स्पर्श के कारण एक चरम बिन्दु पर केंद्रित होती दिखाई पड़ती हैं।

अकविता आन्दोलन के रचनाकारों ने मानसिक तनाव विक्षोभ और प्रेम सम्बन्धों में विवशता बोध पर अनेक कहानियाँ लिखी है। यह सच है कि व्यर्थता का बोध आज के नये लेखक को पुराने लेखकों की तरह विपुल मात्रा में लिखने नहीं देता। आज कल लेखक सुन्दरता के बिम्ब से तो ऊब ही चुका है, अब वह असुन्दरता से भी ऊब रहा है। यह व्यापक व्यर्थता बोध कहीं उसे बोहेमियन बना रहा है, और कहीं ड्रगएडिक्ट। व्यर्थता एवं विसंगति का यह बोध राजीसेठ की 'तीसरी हथेली' की नन्दिता के भी अनुभव के अन्तर्गत आता है, जब वह यह कहती है - " अपनी भूख-प्यास अपनी ही रहती है, बाँट लेने का गुमान हो जाता है अक्सर ... कभी देर तक बना रहता है .. कभी जल्दी टूट जाता है। (55)

लेकिन सुधी जन जानते है कि व्यर्थता, विसंगति, अकेलेपन एवं संत्रास के बोध की तीव्रता जितनी पाश्चात्य परिवेश में विद्यमान है उतनी अभी भारत में नहीं। वहाँ के प्रभाव के फलस्वरूप कतिपय कुछ कहानीकार एवं कुछ कहानियों के पात्रों का उपरोक्त बोध कभी-कभी आरोपित अवश्य लगता है, क्योंकि सारे मूल्यों आस्थाओं एवं आदर्शों के टूट जाने एवं सम्बन्धों, रिश्तों, की गरिमा ढह जाने पर एक परम्परा एवं रूढ़ि भारतीय परिवेश में अभी भी विद्यमान है जहाँ ये बातें कभी-कभी बेमानी लगने लगती हैं, या अगर यह बोध है भी तो सिर्फ कुछ स्तरों पर या आंशिक रूप से, किन्तु वह भी भारतीय संस्कारों को साथ लेकर चलता है। (56)

प्रतीक के सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि यह बिम्ब का सर्वाधिक निकटवर्ती शब्द है। कहा तो यहाँ तक गया है कि बिम्बों से ही

प्रतीक का आविर्भाव होता है। वस्तुतः बिम्ब अपने मूल में बार-बार प्रयुक्त होकर जब किसी निश्चित अर्थ के वाहक बन जाते हैं तब प्रतीक का निर्माण होता है। बिम्ब अपने प्रभाव से चाहे जितना ऐन्द्रिक और संवेगात्मक हो, पर अन्ततः उसकी परिणति किसी प्रतीकात्मक अर्थ की अभिव्यंजना होती है। (57)

प्रतीक, प्रतिरूप या पुनः-रूत्पादन (रिप्रोडक्शन) नहीं होता है। वह निरूपण या प्रतिनिधित्व (रिप्रेजेन्टेशन) होता है। बिम्ब के समान ही सम्प्रेषण का माध्यम होता है। कलाकार अपनी भावनाओं के उद्रेक व तूफान को अभिव्यक्त करने के लिए कुछ दूरवर्ती अप्रस्तुतों को मूर्त समान बनाकर प्रस्तुत करता है। यों यह प्रतीक सामान्य जीवन और व्यवहार में भी दिखाई पडता है। राष्ट्रीय ध्वज, सिक्का, लिपि, वृक्ष, फूल-फल आदि प्रतीक रूप में व्यवहृत होते हैं। (58) तिरंगा ध्वज भारतीय राष्ट्र का, वट वृक्ष विद्या का , कमल भारतीय संस्कृति का, जयचंद देशद्रोही का, कालिदास कवि का , कामदेव वासना का, बृहस्पति ज्ञान का, और गांधी शांति का प्रतीक है। प्रतीक पद्धति का प्रयोग प्राचीन काल से वर्तमान काल तक प्रसंगानुसार व्यवहृत होता रहा है। वास्तव में समकालीन कहानियों में प्रतीकों के सार्थक प्रयोग से अप्रस्तुत अथवा अमूर्त का चित्रण अधिक स्पष्ट एवं प्रभावात्मक हो जाता है। प्रतीकों की अर्थवत्ता कहीं-कहीं गहरी और सारगर्भित हो जाती है जिससे सम्प्रेषणीयता का स्तर ऊँचा उठ जाता है। आधुनिक कहानीकार सामयिक जीवन के जटिल यथार्थ को व्यंजित करने के लिए नए एवं अनुकूल प्रतीकों का अन्वेषण करता है और प्रतीक पात्रों की मानसिकता को समझाने के साथ-साथ रचनाकार की रचना -प्रकिया का सीमित शब्दों के माध्यम से पाठक को बोध कराते हैं। विशेषकर आधुनिक रचनाकार के संदर्भ में प्रतीकों का अर्थ अधिक व्यापक एवं गहरा होने लगा है। जीवन की वास्तविकता को परखने या उसकी सूक्ष्म अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों को साधन के रूप में ही स्वीकारना चाहिए।

प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग मृदुला गर्ग की कहानी 'लिली ऑफ द बैली' में देखा जा सकता है। " वह कैक्टस के खिले हुए उस पुष्प के समान थी जिसे घर-घर फूलदान में नहीं सजाया जा सकता है।" (59) यहाँ कैक्टस का फूल प्रतीकात्मक शब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है। कैक्टस के फूल में सुंदरता होती है लेकिन खुशबू नहीं होती। एकांत में सबसे तिरस्कृत होकर खिलने के कारण इस फूल को तोड़ने वाले भी कम होते हैं। यहाँ लेखिका ने नायिका के जीवन की सभी समस्याओं का और उसके जीवन के एकाकीपन का अप्रस्तुत चित्रण कैक्टस के फूल के माध्यम से किया है।

कहा भी गया है कि प्रतीक के द्वारा जहाँ अप्रस्तुत विषय को प्रस्तुत किया जाता है वहाँ संकेत के माध्यम से अप्रस्तुत की ओर इशारा ही किया जाता है। इस प्रकार संकेत और प्रतीक एक से लगने पर भी दोनों में भिन्नता है।

सांकेतिकता का स्पष्ट उदाहरण उषा प्रियंवदा की कहानी , 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में दृष्टव्य है -"प्यार से बड़ी एक और आग होती है, भूख की, पेट की, वह आग धीरे-धीरे सब लील लेती है।" इस प्रसंग में उषा जी ने जीवन की वास्तविकता की ओर संकेत किया है। यह जीवन यथार्थ के ठोस धारातल पर आधारित है। आदर्शात्मक पहलू यथार्थ के कठोर धरातल से टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं अर्थात पेट की आग (भूख) के समक्ष न माँ की ममता होती है न प्रेमिका का प्रेम और न ही स्वयं का अहं ! यह एक ऐसी आग है जो जीवन के सारे संबंधों को जलाकर राख कर देती है। (60)

प्रतीकों के द्वारा द्वन्द्वग्रस्त स्थिति को आँकने का प्रयास दीप्ति खण्डेलवाल ने किया है। "वह तीसरा" एक प्रतीकात्मक कहानी है जिसमें "तीसरा" प्रतीक व्यक्तिगत अहं का , जो तलवार की भाँति पति-पत्नी के बीच लटका रहता है। इस कहानी का एक उद्धरण दृष्टव्य होगा- "सुहाग सेज पर हम दोनों के बीच कोई तीसरा इतनी जगह घेर चुका था कि हम दूर-दूर जरा-सी जगह-पर टिके भर रह गये थे। और मुझे लगता था, मैं किसी भी क्षण शय्या से गिर सकती हूँ। यह डर मेरी आँखों की नींद ले गया, मेरे मन का चैन भी। (61)

विवेच्य प्रसंग में सुहाग सेज प्रतीक है , जिन्दगी रूपी सेज की, जिस पर दो अहंग्रस्त पति-पत्नी दूर-दूर लेटे हुए है। और उनके बीच अहं पड़ा हुआ है, जो किसी भी पल उन्हे नीचे गिरा सकता है। यहाँ टूटते सम्बन्धों का कलात्मक चित्रण उपलब्ध है।

प्रसंगवश 'राजा निरबंसिया' में सिर्फ शिल्प का नयापन देखने वाले यह भूल जाते हैं, कि वह बोध और संवेदना के नए कोण की अनिवार्य परिणति है। दुहरे और समानान्तर कथानक के माध्यम से उसमें एक ओर अनुभवस्त्रोतों की पहचान है तो दूसरी ओर बदलते सन्दर्भ की चेतना भी। 'मांस का दरिया' या 'खोई हुई दिशाएँ' में व्यक्ति की त्रासद स्थितियों और विसंगतियों को समय और व्यवस्था के सन्दर्भ में देखने-समझने की कोशिश है तो 'बयान', 'नागमणि', 'आसक्ति', या 'उस रात' का प्रयोग समकालीन आदमी की यातनाओं में शामिल उसकी अनुभव-यात्रा में से गुजरने का संकल्प। यह सच है कि कलात्मक रचाव की शर्तो पर कई बार कई कहानियाँ खरी नहीं उतरती, उन्हें अपने मन्तव्य और प्रयोजन के लिए काट-छाँट दिया जाता है और अन्तिम परिणति में वे आरोपित भी लगती हैं, लेकिन वे जो कहना चाहती हैं, उसे पूरी मुखरता से कहने का आग्रह उनमें जरूर होता है। (62)

दाम्पत्य सम्बन्धों में बिखराव और तनाव अकहानी आन्दोलन सहज कहानी आन्दोलन और समानांतर कहानी आन्दोलन का मुख्य विषय रहा है। पर अकहानी के दावेदारों ने यौन प्रतीकों का कुछ ज्यादा ही भदेस प्रयोग रचा है। दूधनाथ सिंह की 'रीछ' कहानी सामान्य पाठकों के लिए तो क्या बहुत से डिग्रीयाफ्त अध्यापक-अध्यापिकाओं के लिए एक दुःसह्य रचना रही

है। दूधनाथ सिंह ने अपनी कहानी में 'रीछ' प्रतीक की सम्भावनाओं को अन्तिम बिन्दु तक निचोड़ा है। उनकी भाषा के संस्कार में पहली बार 'बिचली पीढ़ी' से अलग का परिवर्तन दिखायी देता है और वह अपनी वीभत्स, दुर्गन्ध और जुगुप्सात्मकता में दरअसल प्रभावपूर्ण बन गया है और वह कहानी के उस 'गोपनीय बिन्दु' से पूरी तरह जुड़ा हुआ है। जिसे कहानीकार और तरह से 'कला-रूप' दे ही नहीं सकता था ! यह दूधनाथ सिंह की विशेषता ही कही जायेगी कि पुराने सड़े प्रतीकों को जिन्हें सामयिकता बेजान और बेकार समझकर घूरे पर डाल चुकी है, वे उठा लेते हैं और उन्हे बेहद जानदार चमकदार बना देते हैं - आज के सन्दर्भो से पूरी तरह जोड़ते हुए। (63)

कहानीकार और कवि परम्परागत प्रतीकों का इस्तेमाल करते हैं और पौराणिक-सांस्कृतिक चेतना के रचनाकार पारम्परिक प्रतीकों के। 'परम्परागत' प्रतीक हजारों वर्षो से मनुष्य के भावों, विचारों और कल्पनाओं का वहन करते हैं अलग-अलग देशों की अलग-अलग परम्पराएँ होती है। इसलिए उनके परम्परागत प्रतीक भी अलग-अलग होते हैं। उषस, वरूण, त्रिशूल, शरद, चेतक, सिंह और चक्रव्यूह भारतीय प्रतीक है तो बुलबुल, गुलशन, शमा, अरब देशों के , मोर, चील और क्रास आदि पश्चिमी देशों के। (64) कहानी संरचना में प्रयुक्त प्रतीक ट्रान्सफार्मर का कार्य कर सकते हैं। कारण सुसान के लैंगर ने प्रतीक को 'कन्सेप्चुएल लाइन' की संज्ञा दी है। और कहा है - "प्रतीक सृजन में मनुष्य का मस्तिष्क केवल ट्रान्समीटर का ही कार्य नहीं करता बल्कि ट्रान्सफार्मर का कार्य करता है। XXX प्रतीक मूर्त भी हो सकता है और अमूर्त भी। (65) अगर अमूर्त प्रतीकों का प्रयोग ज्यादा हो तो वह सम्प्रेषण हीनता का पर्याय हो सकता है। प्रसंगवश दूधनाथ सिंह की 'रीछ' कहानी की दुर्बलता दूसरे स्तर पर है- वह है इसकी प्रतीकात्मकता और वास्तविक स्थितियों में सामंजस्य का अभाव ! कहानीकार जब 'रीछ' की बातें कहता है तो वह बिलकुल दूसरी भाषा और संवेदना में बोलता है, लेकिन वहीं जब अपनी पत्नी से बातें करता है तो कहानी का प्रतीकात्मक अशरीरीपन बिलकुल नष्ट हो जाता है और वह सीधे-सीधे घरेलू कलह की भाषा में बात करने लगता है। इसलिए विजयमोहन सिंह का अभिमत है कि 'रीछ' फिर भी दबाव की अन्तिम स्थिति तक पहुँचने और 'निर्वाह' की अपूर्व क्षमताओं के कारण पिछले वर्षो की स्मरणीय कहानी मानी जायेगी। (66)

कहा जा सकता है कि प्रतिबद्ध-जनवादी रचनाकारों शिवमूर्ति, संजय, संजीव, अखिलेश, उदयप्रकाश, मैत्रेयी पुष्पा, सिम्मी हर्षिता और कल्पना मिश्र आदि ने जन प्रचलित प्रतीकों का सार्थक और सम्प्रेषणीय प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ शिवमूर्ति ने 'कसाईबाड़ा' कहानी में परधान जी के घर के समक्ष धरना दिए बैठी शनीचरी के बारे में कहा है - "किसी मोटे प्रश्न चिन्ह-सी बैठी है शनीचरी। (67) सिम्मी हर्षिता इन्टरव्यू के लिए आए प्रत्याशियों की भीड़ का यह सार्थक बिम्ब प्रस्तुत करती हैं, "प्रत्याशी ही प्रत्याशी -प्रार्थी ही

प्रार्थी। कमरे के अन्दर कमरे के बाहर-बरामदे में, परिसर के फैशनेबुल-फ्रिज से निकले, मॉडलिंग करते आवेदक-प्रेशर कुकर की तरह शटिंग करते धक्कामार आवेदक- निराशा-अशा में पेण्डुलम की तरह हरदम झूलते।" (68) वे उपमान भी इसी जीवन से चयनित किए गए हैं, अतः अधिक प्रभाव शाली हैं।

सिम्मी हर्षिता की ही 'उसका मन' कहानी में मन की उधेड़बुन के लिए यह सादृश्य विधान प्रस्तुत किया है, "कॉलेज-जीवन में मन ने जो भावना अनजाने में बुननी शुरू कर दी थी, कभी-कभी उसके सारे फन्दे मन की सलाई से एक झटके के साथ उतर जाते हैं - सारा कुछ बुना हुआ उधेड़ने लगता है। पर उसे यूँ उधेड़ता देख मन सह नहीं पाता और उन फन्दों को फिर अपने में पिरो लेता है -फिर बुनने लगता है, सीधा-उलटा...उलटा सीधा। (69) बद्री सिंह भाटिया की 'तबादला' कहानी में पति-पत्नी के कमजोर पड़ गये सम्बन्धों के संदर्भ में अनुपमा का यह उपमान सार्थक है -" प्रेम एक ऐसी वस्तु है जो थोड़ा-थोड़ा प्रयोग करने के बाद साबुन की टिकिया-सा घिसता जाता है।" (70)

बिम्ब और प्रतीक विधान के प्रयोग के संदर्भ में शिवमूर्ति की 'कसाईबाडा' एक कलात्मक संरचना की कहानी मानी जायेगी। कारण नारी-शोषण दमन और दुःख की 'कसाईबाड़ा' कहानी प्रकारान्तर गाँव में प्रधान, लीडरजी और दरोगा के षडयंत्र में पिसती शनिचरी का बयान है। सामूहिक आदर्श विवाह की बेदी पर शनीचरी की बेटी को वेश्या बना देनेवाले प्रधानजी और इसका विरोध करने के लिए उसे इस्तेमाल करने वाले लीडरजी में कोई अन्तर नहीं। एक उसकी बेटी को हड़प गया, दूसरा कोरे कागज पर अँगूठे का निशान लेकर जमीन डकार गया। अधपगला अधरंगी शनीचरी की मदद भी क्या कर सकता है ? सिवा गाँव के लोगों को प्रधान और लीडर की करतूतें बताने अथवा शनीचरी की लाश ठिकाने लगाने के। यहाँ अन्यायी शक्तियों के आगे व्यक्ति विवश असहाय और मूक है। राजनीतिक यथार्थ की इस प्रकार की अभिव्यक्ति मानवीय संघर्ष की सामान्य स्थिति से आकर जुड़ती है। कहानी में अधरंगी भारतीय जनता का प्रतीक है, जो अत्याचारियों को सजा देने की मांग करता है।

7.3 **शिल्प की नवीनता और सीमान्त :** कथ्य के रूपाकार हेतु शिल्प माध्यम है लक्ष्य नहीं। शिल्प कथ्यगत अभिव्यक्ति के लिए होता है रचनाकार की मानस छवियों का रूपाकार ही 'शिल्प कहलाता है। शैली और शिल्प के सम्बन्ध आत्यन्तिक रूप से जुड़े होते हैं। रचनाकार अपनी अनुभूति, भावप्रवणता और आवेगमयता की सटीक अभिव्यंजना के शिल्प-पैटर्न, रूप-पैटर्न का चयन कर लेता है। वर्णन शैली विवेचन शैली संवाद शैली फ्लैश बैक शैली अवचेतन की अवबाधित धारा का प्रयोग वह अपनी इमेजशक्ति और चयन पद्धति के आधार पर कर लेता है। (72)

शैली-शिल्प की नवीनता शैली (शिल्प) में लेखक का व्यक्तित्व ही नहीं उभरता समसामयिक लेखन प्रणाली भी उभरती है। लेखके के अपने व्यक्तित्व

और समसामयिक चिन्तन प्रणाली का संघर्ष भी उभरता है। यह संघर्ष जितना तीखा और सन्द होगा अभिव्यक्ति उतनी ही सशक्त होगी। [73] कहना न होगा नयी कहानी आन्दोलनों के तीन तिलंगे (थ्री-मस्किटियेरस) कमलेश्वर, मोहन राकेश, और राजेन्द्र यादव ने स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के परिवर्तित रूप 'लेखकीय संघर्ष' और 'शिल्प-शैली' की टक्कर पर अच्छी रचनाएँ लिखी हैं। वे हमदम भी रहे हैं और रकीब भी लेखन के संघर्ष स्तर पर कमलेश्वर की भाषा-शैली,शिल्प लाघवता 'राजा निरबंसिया', 'नीली झील' में उभरकर आयी है तो मोहन राकेश 'सुहागिनें' और 'आज के साए' में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की अन्तर्जटिलता को रेखांकित करते हैं। राजेन्द्र यादव 'छोटे-छोटे ताज महल' और 'टूटना' में रिक्तताबोध को उद्घाटित करते हैं। पर उन्हीं के समानान्तर निर्मल वर्मा 'परिन्दे' और पिछली गर्मियों में एक अनजाने अनचीन्हे अवसाद, रिक्तताबोध और अलगाव बोध सांकेतिक बिम्ब-शैली में उभारते हैं। विवेच्य रचनाकारों की विषय-वस्तु स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के लगाव-बिखराव की वितान तानती है।" (शोध कर्त्री की निजी वार्ता दिनांक 7 सितम्बर 2009)

कृष्णा सोबती 'यारों के यार तीन तहाड़' में बोल्ड भाषा-शैली का प्रयोग करती है तो दीप्ति खण्डेलवाल,मृदुला गर्ग आन्तरिक अनुभूतियों को संवेदना व शिल्प के धरातल पर सांकेतिक रूप रचती है। नयी कहानी के मुकाबले अकहानी में रमेश बक्षी, जगदीश चतर्वेदी, और गंगाप्रसाद विमल ने यौन-प्रतीकों और विसंगतिबोध को उभारा है। अतः समकालीन कहानी के नायक की मुद्रा अत्यन्त रोषपूर्ण और स्वर विद्रोही बनी है। कहानीकारों ने अपने चतुर्दिक राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों को भ्रष्ट पाया तो उसमें उसके प्रति रचनात्मक धरातल पर एक तीव्र रोष का भाव उत्पन्न हुआ। राजकमल चौधरी और श्रीकांत वर्मा की कहानियाँ इसकी साक्ष्य हैं।

प्रसंगवश समकालीन कहानी अपने समय की राजनीतिक गतिविधियों से बेखबर नहीं अपितु वह उससे पूरी तरह जुड़ी हुई है। यद्यपि आज कहानीकार की प्रतिबद्धता किसी राजनीतिक पार्टी से जरूरी नहीं है किन्तु फिर भी उसकी कहानियों में जीवन का राजनीतिक पक्ष बहुत अच्छी तरह उजागर हुआ है। सृंजय , संजय, शिवमूर्ति की कहानियाँ इसकी सही मिसाल है।

आज लेखक राजनीति को अपने लेखन से इसीलिए अलग करके नहीं देख सकता कि उसके जीवन-यथार्थ की स्थितियों को गढ़ने में राजनीति का बहुत बड़ा हाथ है। [74] शिवमूर्ति की कहानियों और मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में इसके मौन-मुखर पक्ष को अवलोका जा सकता है।

समकालीन कहानी के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में भाषा की दृष्टि से मुख्यतः दो प्रकार के कहानीकार दिखाई देते हैं। आठवें दशक में हिन्दी कहानी में महिला लेखिकाओं की पर्याप्त संख्या मिलती है। उन्होंने प्रायः पारिवारिक संदर्भों को कहानियों में उठाया है। उनकी भाषा में एक भावनात्मक संस्पर्श आद्योपान्त मिलता है, जो अवसर पाकर भावुकता में बदल जाता है। इस

कारण इनकी भाषा में कथ्य के अनुरूप कोमलता, आभिजात्य, काव्यात्मकता के गुण मिलते हैं। कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, मैत्रेयी पुष्पा, जैसी लेखिकाएँ इस अभिजात्य की परिधि में नहीं आती। दूसरे प्रकार के कहानीकार वामपंथी विचारधारा को सृजनात्मक परिधि में उतारने वाले हैं। इस वर्ग के लेखक आज सर्वाधिक हैं। इनकी भाषायी तराश का उद्देश्य सामाजिक संघर्ष है, अतः भाषा की सूक्ष्मता भी उसी सन्दर्भ में लक्षित होती है। (75) सृंजय, संजीव और शिवमूर्ति आदि रचनाकार वामपंथी जार्गन्स मुहावरों का संयत प्रयोग कर लेते हैं।

रेणु की रोमांटिक शैली रवीन्द्र कालिया, की आत्मविमर्श और मनोविश्लेषण वाली शैली सृजनात्मक व्यक्तित्व के नये हाशिए रचती है। धर्मवीर भारती की 'गुल की बन्नो' निम्नवर्ग की नारी की मानसिक सोच सीमान्तों की गवाही देती है।

शिल्प-शैली के सीमान्त शिल्प-शैली और सृजनात्मक सीमांत के संदर्भ में धनंजय वर्मा का प्रश्न स्वाभाविक मुद्रा का है कि "क्या व्यक्ति का सारा अंन्तर्बाह्य उसके सारे परिवेश की संश्लिष्ट प्रक्रिया नहीं है ? क्या इस सापेक्षिकता के जगत में भी व्यक्ति नितांत निरपेक्ष और 'इंडिपेन्डेंट' सत्ता है ? तब फिर परिवेश से कटी, नितांत मनोविलासी स्वैर-कल्पना , क्या अनुभूति का दर्जा पा सकती है ? सन्दर्भो से हीन, नितांत असम्पृक्त और ऐकान्तिक ऐन्द्रिय संवेदना क्या अनुभूति कहला सकती है ? आत्मानुभूति के दर्शन (अभिव्यंजनावाद) की ही शब्दावली में, वह तो केवल ऐन्द्रियता और जमुहाई मात्र होगी। ऐसी स्वाभानुभूति के अतिरिक्त सबका निषेध, आत्मरति और मनोविलास से निकला साहित्य (?) जिसमें चाहे जितनी ऊँची कलाकारिकता-आद्रिस्ट्री हो, शिल्प और रूप के चाहे जितने पेचो-खम हों, कला का चाहे जितना नवीनतम प्रयोग हो ; परिवेश (जो निरन्तर बदलता हुआ भै देश काल की सापेक्षिकता से शासित है) की निहित शक्तियों के परिचय के अभाव में न केवल सन्दर्भहीन और निष्प्राण होगा, वरन् निरर्थक भी होगा। उसका महत्व एक 'स्कूप' से अधिक कुछ भी नहीं होगा। (76)

अज्ञेय और निर्मल वर्मा की आन्तरिक अनुभूति, आत्मविश्लेषण की शैली सांकेतिक बिम्बधर्मिता में उभारकर आयेगी तो मैत्रेयी पुष्पा और शिवमूति ग्रामीण-आंचलिक जीवन की त्रासदी लोकभाषा और प्रतीकात्मक संकेतों में रचेंगे जो शिवप्रसाद सिंह, रेणु, मार्कण्डेय की कहानियों का परवर्ती विकास दर्शाता है।

रघुवीर सिन्हा ने कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' कहानी में अभिव्यक्त, परम्परा, अवसाद, लोकशैली और आधुनिकता बोध के साथ-साथ तनाव और विडम्बना आदि प्रतिमानों की चर्चा करते हुए कहा है कि कमलेश्वर एक सफल कथाकार की अंतर्दृष्टि से संक्रान्ति के इन घनीभूत क्षणों में व्यक्तिमन में उठ रहे अंतर्द्वन्द्व, आवेग-संवेग, अच्छे-बुरे भावों, कटुता और मधुरता को पूरी तरह विश्लेषित करते हैं। (77) वह खामोशी से खड़ा ताकता रहा। चन्दा के चेहरे पर नारीत्व की प्रौढ़ता आज उसे दिखाई

दी। चेहरे की सारी कमनीयता न जाने कहाँ खो गई थी उसका अछूतापन न जाने कहाँ लुप्त हो गया था, उसके खुले पर उसकी निगाह पड़ी तो सूजा-सा लगा। एड़ियाँ भरी, सूजी-सी और नाखूनों के पास अजब-सा सूखापन। और यहाँ जगपती के चरित्र के कोमल अंश का अच्छा विश्लेषण मिलता है। जगपती का दिल एक बर मसोस उठा। उसने चाहा कि बढ़कर उसे उठा ले। अपने हाथों से उसका पूरा शरीर छू-छू कर सारा कलुष पोंछ दे, उसे अपनी सांसों की अग्नि में तपाकर एक बार फिर पवित्र कर ले, और उसकी आँखों की गहराई में झांककर कहे-देव -लोक से किस शापवश निर्वासित हो तुम इधर आ गई ? यह शाप तो अमिट था। (78)

कमलेश्वर ने यहाँ फिर जगपती की संस्कारशीलता की ओर संकेत किया है। शाप-अभिशाप, देव-देवत्व, लोक-देवलोक और अग्नि को पवित्र कर देने की अपूर्व शक्ति आदि के विचार जगपती की भारतीय संस्कृति की गहरी संस्कारशीलता को ही प्रमाणित करते हैं।

'राजा निरबंसिया' का अंत एक कसक और कचोट पाठक के मन - मस्तिष्क में धर देता है। प्रसंग है कि "जगपती ने रात को दो परचे लिखे, एक चन्दा के नाम, दूसरा कानून के नाम। उसने चन्दा को लिखा था - "चन्दा मेरी अंतिम चाह रही है कि तुम बच्चे को लेकर चली आना .. अभी एक-दो दिन मेरी लाश की दुर्गति होगी, तब तक तुम आ सकोगी। चन्दा आदमी को पाप नहीं पश्चाताप मारता है। मैं बहुत पहले मर चुका था। बच्चे को लेकर जरूर चली आना। कानून को लिखे पत्र का स्वर दूसरा था उसने लिखा - " किसी ने मुझे मारा नहीं है किसी आदमी ने नहीं - मैने अफीम नहीं रूपये खाए हैं। उन रूपयों में कर्ज का जहर था। उसी ने मारा है। और कानून से उसने मांगा था : 'मेरी लाश तब तक न जलाई जाये जब तक चन्दा बच्चे को लेकर न आ जाए। आग बच्चे से दिलवाई जाए। बस !'उसी रात जगपती अपना सारा कारोबार त्याग अफीम और तेल पीकर स्वेच्छा से दुनिया से चल बसा। कहानी का अंत करूणा और वितृष्णा पर होता है।

"कथाकार उस अत्यंत त्रासदी अंत पर कथा को लाकर कचोटती हुई उक्ति के साथ अपनी 'राजा निरबंसिया' की कहानी समाप्त करता है कि 'माँ जब कहानी समाप्त करती थी , तो आसपास बैठे बच्चे फूल चढ़ाते थे। मेरी कहानी भी खत्म हो गई पर .. यहाँ कथाकार ने अपने समय की नारी अंतर्भूत पीड़ा को व्यक्त कर दिया है ऐसा लगता है। (79) पर अपने भाषायी तेवर और शिल्प में यह कहानी लोक-शैली और विवेचन शैली की प्रतीकात्मकता में लासानी है। यहाँ कथ्य ही अपने द्वैत रूप को लेकर स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की अन्तर्जटिलता को उभारता है।

विगत दो-तीन दशकों से भारतीय सामाजिक परिवेश में पारंपारिक मूल्यों को लेकर जो अरूचि का भाव बनने लगा था, उसने धीर-धीरे व्यक्ति चेतना में एक अंतर्द्वन्द्व पैदा कर दिया था। पचास तक आकर यह अंतर्द्वन्द्व मूल्यों के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण अपनाता हुआ प्रतीत होता है। और

यह दृष्टिकोण मूल्यों के प्रति अस्वीकृति भाव का बोध कराता है, संवेदना, भावना से जुड़े हुए सारे सामाजिक , पारिवारिक, नैतिक मूल्य शिथिल पड़ने लगते है वे आज के आपाधापी के वातावरण और जटिल अर्थव्यवस्था में धीरे-धीरे समय के विपरीत पड़ते जा रहे है और अपनी सार्थकता क्रमशः खोते जा रहे हैं। इसी पृष्टभूमि के आधारपर 'सुहागिनें', 'मिसपाल', और 'कसाईबाड़ा' आदि कहानियों की विवेचना की जा सकती है।

महानगरीय और नगरीय परिवेश में मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण पहले बदलता है, फिर धीरे-धीरे अपने सांसर्गिक एवं निरंतरता के प्रभावों के माध्यम से बाद में पहुँचता है और धीमी गति से क्रमशः स्वीकार होता है। कहानी छठे दशक में भारतीय ग्राम्य परिवेश में पारंपरिक मूल्यों के प्रति उभरते हुए नए बदलते हुए दृष्टिकोण, आस्था के स्थान पर उभरती हुई अनास्था,सम्बन्धों की सार्थकता के प्रति संशयात्मक दृष्टि, अस्वीकृति के संबन्धों को अपने समय की संपूर्ण संचेतना एवं कुशल संप्रेषण द्वारा रूपायित करती है। जिसके साक्ष्य हेतु रेणु, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, मन्नू भण्डारी, और कृष्णा सोबती की कहानियाँ रखी जा सकती हैं।

काशीनाथ सिंह ने जहाँ 'अकाल-कथा' राजनैतिक भावबोध से रची है वहाँ प्रारम्भिक दौर मानवीय जीवन संघर्ष की दास्तानों को मूर्त रूप दिया है। रामचन्द्र तिवारी ने भी स्वीकारा है कि काशीनाथ सिंह प्रगतिशील चेतना के प्रतिबद्ध लेखक हैं। अपने लेखन के प्रत्येक दौर में वे सामान्य आदमी के पक्षधर रहे हैं। नगरीय जीवन के छल-छंद से परे उनका, सहज ग्रामीण मन अपने खरे स्वभाव के साथ निरन्तर उनके साथ रहा है। 'लोग बिस्तरों पर', 'सुबह का डर', 'आदमीनामा', 'नयी तारीख', 'कल की फटेहाल कहानियाँ', 'सदी का सबसे बड़ा आदमी', आदि आपके कई कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी कहानियों में व्यवस्था द्वारा आम आदमी के शोषण, ग्रामीण और नगरीय जीवन मूल्यों की टकराहट, मानवीय मूल्यों का विघटन और मनुष्य का नैतिक पतन तथा गाँवों के बदलते सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य के साथ सहज मानवीय सम्बन्धों के निःशेष होते जाने की पीड़ा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण और प्रभावी किया गया है। सबसे बड़ी बात यह है कि विचारधारा के अन्तर्वर्ती प्रवाह से आपकी कला कहीं भी आक्रान्त नहीं हुई है और आपका कहानीकार निरन्तर कलात्मक समृद्धि की ओर अग्रसर है।[80] और अपनी अभिव्यक्ति शैली में प्रसंगानुसार विवेचन शैली और संस्मरण शैली और संवाद शैली अपना लेता है।

स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के टकराव अवमूल्यन और विसंगतिबोध में आन्तरिक भाव और व्यक्तित्व की स्वतंत्रता के मूल्य ज्यादा सक्रिय होते है। अतः विभिन्न रचनाकार कथा-सृजन की विभिन्न शैलियों-पैटर्नो को कथ्य के अनुरूप अपनाते हैं। कहना न होगा कि आधुनिक परिवेश तथा जीवन-मूल्य के परिवर्तन ने प्रेम की परिभाषा ही बदल डाली है। आज प्रेम एक सहज प्रक्रिया है जिसे कभी भी जोड़ा या तोड़ा जा सकता है। इस प्रकार के स्वच्छंद प्रेम का चित्रण हिन्दी कहानीकारों ने क्षणवादी जीवन के प्रति

आस्थाशील नारी पात्रों द्वारा किया है इस सन्दर्भ में मन्नू भण्डारी(यही सच है) कहानी की दीपा 'क्षणवादी' जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति देती है। आज प्रेम की असफलता में युवती आँसू नहीं ढरकाती बल्कि आदि और अन्त का विचार करके स्वेच्छा से सम्बन्ध तोड़ लेती है। आज स्वच्छन्द वातावरण में पलनेवाली युवती प्रेम भी बिलकुल स्वच्छन्द होकर करती है, तथा किसी प्रकार का प्रतिबन्ध वह नहीं स्वीकार करती।

दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी 'निर्बन्ध' की अनीता स्वच्छन्द प्रवृति की युवती है। आधुनिक युवती प्रेम सम्बन्धों की सार्थकता मित्रता में पा लेना चाहती हैं। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने प्रेमी से बँधकर जिए। उषा प्रियंवदा की 'सम्बन्ध' कहानी की श्यामला उस सर्जन से प्यार करती है। जो तीन बच्चों और पत्नी के साथ रहता है। श्यामला उसके साथ एक मित्र के नाते ही रहना पसन्द करती है। (81) परवर्ती विकास में हम प्रभा खेतान, मृदुला गर्ग और चित्रा मुद्गल की रचनाओं में अभिव्यक्त नारी के स्वतंत्र अस्तित्व और सजगता बोध को परिलक्षित कर सकते हैं।

रमेश बक्षी ने अकहानी आन्दोलन के दौरान 'मेज पर टिकी हुई कहानियाँ' और 'अमूर्त तकलीफ' जैसी स्त्री-पुरूष के परिवर्तित सम्बन्धों की रचनाएँ लिखी है तो रवीन्द्र कालिया ने 'नौ साल छोटी पत्नी' और 'काला रजिस्टर' जैसी रचनाएँ आन्तरिक अनुभूति और बाह्य परिवेश के द्वन्द्व के आधार पर लिखी है। सदाअत हसन मण्टों की 'राह व परम्परा' का अनुसरण करते हुए देवेन्द्र इस्सर ने 'वह एक क्षण' कहानी लिखी है। दरअसल 'वह एक क्षण' एक ऐसी लड़की की कहानी है जिसे जीवन में रिसेप्शनिष्ट और टाइपिस्ट के रूप में कार्य करते हुए, कई लपलपाती हुई भेड़ियों की नजरों से गुजरना पड़ता है। XXX निवेदक की नजर एक ऐसी लड़की पर पड़ती है जो भीड़भाड़ में भी जबरदस्ती से बस में सवार हो जाती है। कनॉटप्लेस की सड़क पर निवेदक उसे अपने साथ चलने के लिए राजी कर लेता है। शराब और सिगरेट पेश किये जाने पर वह झिझकती हुई पीती है। उसका यौवन और सौन्दर्य कई गुना बढ़ जाता है। वह पेशेवर लड़की होने के बावजूद उसके शरीर में नवपुलकित कली की-सी ताजगी है। औरत चाहे कितनी ही गिरी हुई हो, उसके मुँह पर यह कहना कि वह वेश्या है, उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाता है। निवेदक का कहना है कि "कोई आदमी दिमाग बेचता है, कोई शरीर बिजनेस तो बिजनेस है... इसमें बुराई क्या है। (82) लड़की रेबा सारी पुरानी मान्यताओं को तोड़ देती है। हर औरत यही कहती है कि जिसके साथ वह आई है, वही उसके लिए पहला पुरूष है, मानो वह तो लाजवन्ती छुई-मुई है।

किसी फर्म में रेंबा रिसेप्शनिस्ट की नौकरी करती है। मैनेजर उसे ऑफिस के बाद अक्सर रोक लेता है। बॉस के नाराज होने का अर्थ है, नौकरी से छुट्टी ! रेंबा को आगे जहाँ भी नौकरी मिलती है, वहाँ के मैनेजर (बॉस) की आँखें, उसे भूखे भेड़िये की तरह लाल-लाल दिखाई देती हैं। कहानी में वर्णन है कि अपने दामन में आग लगाये बगैर वह छोटे भाइयों

का पालन-पोषण करती है। मृत्युशय्या पर पड़ी अपनी बीमार माँ की दवा लाने के लिए वह निकली है। निवेदक के मुँह पर थप्पड़ मारकर वह पूछना चाहती है कि क्या वह उसे वेश्या नजर आ रही है ? गम में डूबी हुई रेंबा व्हिस्की मुंह को लगाती हुई कहती है.. "भूल जाने दो .. मैं एक अजनबी के घर में बिस्तर पर नग्न पडी हूँ एक वेश्या के रूप में ... अब शराब क्या और इज्जत क्या ?'(83) तथ्य यह है कि नारी स्वयं गिरना नहीं चाहती, किन्तु परिस्थितियाँ उसे ऐसे मोड़ पर ले जाती हैं। यदि बॉस उसके साथ इज्जत व गरिमा के साथ से पेश आता तो वह कॉल गर्ल न बनती।

उषा प्रियंवदा ने कभी 'वापसी' कहानी में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में आये रिक्तता बोध और अलगाव को चित्रित किया था। उसकी अगली कड़ी में मृदुला गर्ग की कहानी 'लौटना और लौटना' के पिता विदेश में काम करने वाले बेटे के सामने बिलकुल पराया बन जाता है। पिता के आग्रह करने पर बेटा बढ़िया घर बनवाता है और विदेश जाते समय उसे किराए पर दे देता है। पिता बेचारा बेटे की नीयत को देखता ही रह जाता है।

दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी 'आधुनिक' का सुधीर विदेश से शिक्षा ग्रहण कर एक मेम पत्नी के साथ भारत लौटता है। सुधीर का पिता उसके स्वागत के लिए एयरपोर्ट पर देखकर सुधीर झुँझला उठता है। अपनी मेम पत्नी के समक्ष बूढ़े पिता को पिता कहने में वह सकुचाता है। मेम पत्नी के पूछने पर वह कहता है 'जस्ट एन ओल्ड सर्वेन्ट ऑफ अवर हाउस होल्ड।' बेटे के मुँह से यह वाक्य सुनकर पिता की आँखें भर जाती हैं। (84) जो संयुक्त परिवार के बिखराव का कार्य-कारण है।

स्त्री-पुरूषों के जीवन में घटनेवाली मूल्यों की टकराहट को भी अनेकानेक कहानीकारों ने रेखांकित किया है। मन्नू भण्डारी, दीप्ति खण्डेलवाल, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, उषा प्रियंवदा आदि अनेक कहानीकारों ने इसका जीवंत चित्रण अपनी कहानियों में किया है। जिसका विवेचन हम विगत अध्यायों में कर चुके हैं।

भाषा-शिल्प के नये तेवर हर समर्थ रचनाकार ने तलाशे ही नहीं है बल्कि अभिव्यक्ति के स्तर पर उन्हें तराशा भी है। सुधी जन जानते हैं कि ज्ञानरंजन की भाषा प्रचलित शब्दों को ही नये अर्थ प्रदान करने में सक्षम है। मनःस्थितियों को वाणी देने में उनकी भाषा विशेष रूप से सफल हुई है। "पिता को यह हद से गुजरा हुआ लग रहा है, पहले वह मोढ़े पर बैठे-बैठे सहते रहे। अब उठ गए हैं। इस कमरे से उस कमरे, उस कमरे से बरामदे, बरामदे से आँगन और आँगन से वापस मोढ़े पर। जब भी माँ को देखते हैं, उनकी आँखें अँगार हो जाती हैं और ये साफ चिल्लाने लगती है कि तारा की लापरवाह और ढीठ प्रवृत्तियों की समस्त जिम्मेदारी अम्मा के ऊपर है। (85) कथानायक स्वयं की मनःस्थिति को सूक्ष्मता से इस प्रकार कहता है, "मुझे अनुभव होता रहा है, जैसे उनकी इस निःशब्दता में ढेर सारी आँधियाँ उनके भीतर इकट्ठी हो रही हैं।" (86)

शोध प्रबन्ध की अपनी सीमा है अन्यथा प्रत्येक रचनाकार की विशिष्ट कहानी अपने अपने कथ्य और शिल्प की विवेचनापरक संभावनाएँ तलाशती है, रचनाकार की अपेक्षित दृष्टि भी समर्थ शोधार्थी और आलोचक का मुँह है पर कहना न होगा कि रचनाकार का व्यक्तित्व परिवार और जीवन शैली का प्रभाव कहानी की संरचना में कहीं-ना-कहीं किसी पात्र के प्रसंग में उभर कर आ जाता है। शिवमूर्ति मूलतः ग्रामीण चेतना को कहानियों में व्यक्त करते हैं। किन्तु आंचलिक शब्दावली के प्रयोग के प्रति वे बहुत सजग रहे हैं। उन्होंने कम से कम आंचलिक संवादों का प्रयोग पात्रों से करवाया है। 'कसाईबाड़ा' कहानी में
परधान, लीडर, दरोगा, आदि पात्र आंचलिक शब्दों से परहेज रखते हैं। केवल दरोगाईन, शनीचरी और अधरंगी ही ऐसे संवाद बोलते हैं। इन पात्रों के संवाद कहानी में बहुत कम हैं। दरोगाईन "का हल्ला मचाये हो जी ? दरवज्जे पर आए मेहमान से कोऊ ऐसन बोलत है ?"XXX शनिचरी- "अन्याय कै हद होत है तौ ई धरती फाटि जात है अधरंगी बेटवा ।" (87)
इस प्रकार के संवादों से शिवमूर्ति ने अपनी कथा-भाषा को शक्तिमत्ता तथा नयी भंगिमाएँ प्रदान की हैं।

सारांशतः समकालीन कहानी के विभिन्न रचनाकारों ने अपनी वर्गीय चेतना, परिवेश और व्यक्तित्व के साथ-साथ जीवन शैली के अनुरूप भाषा-शैली और शिल्प विधान को तलाशा, तराशा और विकसित किया है।

संदर्भ सूची : सप्तम अध्याय

1. रोहिताश्व : समकालीनता और शाश्वतता पृ.177
2. नरेन्द्र मोहन : समकालीन कहानी की पहचान पृ.7
3. पुष्पपाल सिंह : समकालीन कहानी :सोच और समझ पृ.67
4. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र पृ.115
5. रोहिताश्व : शोधकर्त्री की निजी वार्ता 27 जुलाई 09
6. वेदप्रकाश अमिताभ : हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य पृ.35
7. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.202
8. रोहिताश्व : कथा साहित्य के प्रतिमान पृ.76
9. सुधा बालकृष्णन : भाषा जनवरी फरवरी 98 पृ.14
10. राजेन्द्र यादव : कहानी : स्वरूप और संवेदना पृ.72
11. राजेन्द्र यादव : कहानी : स्वरूप और संवेदना पृ.73
12. रोहिताश्व : कथा साहित्य के प्रतिमान पृ.27
13. अशोक भाटिया : समकालीन कहानी .क़ा इतिहास पृ.29
14. देवी शंकर अवस्थी : नयी कहानी : संदर्भ और प्रवृत्तिपृ.56
15. रोहिताश्व : शोधकर्त्री की निजी वार्ता 27 जुलाई 09
16. बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज पृ.113
17. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.85
18. निरूपमा सेवती : आतंकबीज, तलफलाहट पृ.57
19. हिमांशु जोशी : पच्चीस श्रेष्ठ कहानियाँ पृ.2
20. नासिरा शर्मा : गूँगा आसमान पृ.77
21. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र पृ.123
22. मोहन राकेश : नयी कहानी : नये संदर्भो की खोज पृ.18
23. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र पृ.117
24. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र पृ.235

25. दीप्ति खण्डेलवाल	: धर्मयुग 23 दिसम्बर 1973	पृ.18
26. ममता कालिया	: सीट नम्बर छह	पृ.18
27. रमेश गुप्त	: अपरिचय धर्मयुग 7 सितम्बर 1975	
28. रोहिताश्व	: आलोचना के हाशिए	पृ.110
29. शिवशंकर पाण्डेय	: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : कथ्य और शिल्प	पृ.160
30. मन्नू भण्डारी	: मन्नू भण्डारी की श्रेष्ठ कहानियाँ	पृ.58
31. दीप्ति खण्डेलवाल	: प्रेत, वह तीसरा	पृ.61
32. नासिरा शर्मा	: दूसरा ताजमहल	पृ.91
33. निरूपमा सेवती	: खामोशी को पीते हुए	पृ.11
34. शिवशंकर पाण्डेय	: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : कथ्य और शिल्प	पृ.165
35. उषा प्रियंवदा	: मेरी प्रिय कहानियाँ	पृ.100
36. रोहिताश्व	: शोधकर्त्री की निजी वार्ता 27 जुलाई 09	
37. नासिरा शर्मा	: प्रतिनिधि कहानियाँ	पृ.88
38. राजेन्द्र यादव	: मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ	पृ.11
39. दीप्ति खण्डेलवाल	: दो पल की छाँव	पृ.79
40. रोहिताश्व	: समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र	पृ.312
41. मृदुला गर्ग	: टुकडा-टुकडा आदमी	पृ.44
42. परमानन्द श्रीवास्तव	: नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति (द्वारा. देवी शंकर अवस्थी)	पृ.133
43. धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र	पृ.122
44. रोहिताश्व	: नयी कविता : सम्प्रेषण की समस्या	पृ.62
45. सी.डे. लेविस	: द पोएटिक इमेज	पृ.19
46. टी.एस हुल्मे	: स्पेकुलेशन	पृ.281
47. सुसान के लैंगर	: प्राब्लम्स आफ आर्ट	पृ.132

48. जार्ज वैली : पोएटिक प्रोसेस पृ.145
49. एलेन टेट : सेलेक्टेड एस्से पृ.83
50. आई.ए. रिचर्डस : इमेजिनेशन पृ.84
51. केदारनाथ सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान पृ.71
52. एजरा पाउण्ड : एस्सल्स केस्टल पृ.5-6
53. अशोक भाटिया : समकालीन कहानी का इतिहास पृ.29
54. मन्नू भण्डारी : यही सच है पृ.170
55. नरेन्द्र मोहन : हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा पृ.80
56. राजी सेठ : तीसरी हथेली पृ.51
57. शांति स्वरूप गुप्त : पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत पृ.399
58. रोहिताश्व : नयी कविता : सम्प्रेषण की समस्या पृ.73
59. मृदुला गर्ग : प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.44
60. उषा प्रियंवदा : जिन्दगी और गुलाब के फूल पृ.131
61. दीप्ति खण्डेलवाल : वह तीसरा पृ.22
62. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का सफरनामा पृ.182
63. विजय मोहन सिंह : आज की कहानी पृ.92
64. बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज पृ.70
65. सुसान के लैंगर : (द्वारा) काव्य में अभिव्यंजना वाद पृ.10
66. विजय मोहन सिंह : आज की कहानी पृ.93
67. शिवमूर्ति : केसर कस्तुरी पृ.71
68. सिम्मी हर्षिता : संचेतना दिसम्बर 1973 पृ.76
69. सिम्मी हर्षिता : उसका मन पृ.60
70. बद्रीसिंह भाटिया : तबादला पृ.11
71. अशोक भाटिया : समकालीन कहानी का इतिहास पृ.119
72. रोहिताश्व : शोधकत्री की निजीवार्ता 7 सितंबर 2009
73. बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज पृ.114

74. पुष्पपाल सिंह	: समकालीन कहानी :सोच और समझ	पृ.15
75. अशोक भाटिया	: समकालीन कहानी का इतिहास	पृ.256
76. धनंजय वर्मा	: हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र	पृ.24
77. रघवीर सिन्हा	: आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यो से प्रयाण	पृ.43
78. कमलेश्वर	: राजा निरबंसिया	पृ.88
79. रघवीर सिन्हा	: आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यो से प्रयाण	पृ.46
80. रामचन्द्र तिवारी	: हिन्दी का गद्य साहित्य	पृ.318
81. घनश्याम दास भुतड़ा	: समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप	पृ.62
82. देवेन्द्र इस्सर	: काले गुलाब की सलीब	पृ.41
83. देवेन्द्र इस्सर	: काले गुलाब की सलीब	पृ.31
84. सुधा बालकृष्णन	: भाषा जून 2005	पृ.110
85. ज्ञानरंजन	: सपना नहीं	पृ.174
86. ध्रुव जायसवाल	: धर्मयुग 16 दिसम्बर 1973	पृ.23
87. शिवमूर्ति	: केसर कस्तूरी	पृ.23

उपसंहारः

समकालीन कहानी : परिवर्तित स्त्री-पुरूष सम्बन्ध

समकालीन कहानी विगत पाँच दशकों से चर्चा के केन्द्र में है। समकालीन और समकालीनता से तात्पर्य अपने युगबोध, ऐतिहासिक बोध, तात्कालिक जीवन बोध और समसामयिक राजनैतिक-सांस्कृतिक बोध से सम्पृक्त होना है। यह सच है कि एक ही कालखण्ड, समय, और युगबोध में विभिन्न प्रवृत्तियों, विचारों और दार्शनिक भावबोध के रचनाकार सक्रिय रहते हैं। जो विभिन्न धाराओं में लिखते हैं। कोई रचनाकार आन्तरिक मनोवृत्तियों का सजग चितेरा होता है तो कोई कथाकार बाह्य परिवेश और युगबोध विशेष को महत्व देता है। निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव जहाँ आन्तरिक अनुभूतियों के रचनाकार हैं तो उसी दौर के नये कहानीकारों में भीष्म साहनी, मोहन राकेश,और कमलेश्वर मध्यवर्गीय संवेदनाओं को प्रतिबद्ध भाव से रूपायित करते हैं।

समकालीन कहानी के विकास में विभिन्न कहानी-आन्दोलनों, प्रवृत्तियों और रूझानों की चर्चा आवश्यक है। कारण विगत पचास वर्षो में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में लोमहर्षक और युगान्तरकारी परिवर्तन आये हैं। अतः विभिन्न कहानी आन्दोलनों के अन्तर्गत उनकी चर्चा और विश्लेषण सम्बन्धी कार्य एक दुःसाहस भरा कार्य माना जायेगा। समकालीन कहानी के स्वरूप और क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्वपीठिका के रूप में नयी कहानी आन्दोलन और योगदान की चर्चा अवश्यम्भावी है। समकालीन कहानी के क्षेत्र में एक ओर

समसामयिकता, तात्कालिकता और युगबोध के जुड़ाव की भावना है तो दूसरी ओर आंचलिक, ग्रामीण बोध के समानांतर महानगरीय जनजीवन की विषमता और त्रासदी से भी दो-चार होना है।

वास्तव में समकालीनता केवल समसामयिक बोध से सम्पृक्त होना ही नहीं है बल्कि समकालीनता एक मूल्य दृष्टि है, विचार दृष्टि है, जिसमें या तो अपने देश-काल, इतिहास बोध से तटस्थता अपनाकर प्रेम अध्याम, प्रकृति सम्बन्धी सुन्दरता के शाश्वत बोध की कल्पना की जाये। जो वस्तुतः समकालीनता के यथार्थबोध एवं अन्तर्विरोधों से अलग होकर अज्ञेय, निर्मल वर्मा, धर्मवीर भारती व अन्य कलावादी चिन्तकों का भाववादी-अध्यात्मवादी भाव है। वास्तव में समकालीनता का सही तात्पर्य अपने समसामयिक इतिहासबोध, वैश्विक विजन और राजनैतिक संक्रमण में सामाजिक, पारिवारिक मूल्यों से जुड़ाव और जन संघर्षो चेतना की प्रतिबद्धता का है। (1) जिसका प्रतिबिम्ब हम मोहन राकेश (मलबे का मालिक), भीष्म साहनी (चीफ की दावत), राजेन्द्र यादव (छोटे-छोटे ताजमहल), मन्नू भण्डारी (यही सच है) आदि रचनाकारों के पास साक्ष्य रूप में पाते हैं। कहना न होगा कमलेश्वर, रेणु और शानी ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में ग्रामीण संवेदनाओं और रागात्मक बोध को अपनी रचनाओं में प्राथमिकता दी है।

यशपाल, नागार्जुन, मार्कण्डेय आदि ने नयी कहानी के प्रारम्भिक दौर में युगीन सन्दर्भो और वैचारिक परिवर्तन को महत्व दिया है यह उनकी अपनी राजनैतिक और सांस्कृतिक अवधारणाओं को महत्व दिया जाना है। कहना न होगा कि कहानी न केवल वैचारिक फ्लैश होती है, न केवल आत्मगत भावों की अभिव्यक्ति है और न केवल किसी तटस्था गवाह का हलफनामा है। क्योंकि 'कहानी अब किसी घटना का वर्णन मात्र नहीं है, उसकी संरचना की आन्तरिक प्रकृति केवल 'मनोरंजन' और 'कौतूहल' या 'तुष्टि वादी' नहीं है, और न 'जीवन की यथार्थताओं का संघर्ष' या 'जीवन के स्वाभाविक चित्रण' तक ही वह सीमित है। वह चित्रण ही नहीं करती है बल्कि एक नये कला संसार की सर्जना भी करती है क्योंकि अन्य कलारूपों की तरह ही वह मनुष्य की जीवन सिसृक्षा का ही एक प्रकार है। (2)

विवेच्य शोध प्रबन्ध में समकालीन कहानी के विभिन्न आन्दोलनों, प्रवृत्तियों प्रमुख रचनाकारों और रचनाओं की चर्चा की गयी है। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बीच जो अभूतपूर्व बदलाव विगत पाँच दशकों में आये हैं उन्हें संयुक्त परिवार तथा नारी जीवन की अस्मिता स्वतन्त्रता में देखने का प्रयास किया गया है। वर्तमान दौर में औद्योगिक विकास तथा परिवर्तित जीवन शैली में अलगाव, ऊब, तनाव एवं परिवेश विडम्बनाएँ भी प्रमुख समस्याएँ बनकर उभरी है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय **'समकालीन कहानी : स्वरूप, क्षेत्र एवं युगीन सन्दर्भ'** का विवेचन किया गया है। साथ ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों-आंचलिक, ग्रामीण, पहाड़ी एवं महानगरीय के रेखांकन में उनकी

विशिष्टता दर्शायी गयी हैं। विभिन्न बदलते हुए सन्दर्भो को भी रेखांकित किया गया है।

'समकालीन कहानी का विकास : विभिन्न आन्दोलन एवं प्रवृत्तियाँ' नामक द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत नयी कहानी और प्रगतिशील कहानी की चर्चा की गयी है। साथ ही विभिन्न कहानी आन्दोलन-अकहानी, समांतर कहानी, वामपंथी और जनवादी कहानी आन्दोलन और इनकी प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना की गयी है। अक्सर हिन्दी कहानियों की आलोचना में ग्रामीण-आंचलिक कहानियों और महानगरीय बोध की चर्चा की जाती है, जो विभिन्न कहानी आन्दोलन की सीमा में विश्लेषित नहीं होती है। संकेत यहाँ रेणु, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर, शिवमूर्ति और मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों के बरक्स मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद्य, मन्नू भण्डारी और उषा प्रियंवदा आदि की रचनाओं के सन्दर्भ में है। बेशक ग्रामीण जीवन के रेखांकन हेतु मार्कण्डेय की ग्राम्य जीवन की कहानियाँ और कमलेश्वर की 'अपनी बस्ती' की कहानियाँ उनके उदाहरण में रखी जा सकती हैं। यहाँ लेखक की अपार संवेदनशीलता तथा बदलते हुए जीवन के भीतर असत पक्षों तथा ह्रसोन्मुख अंधशक्तियों के प्रति उनका कटू व्यंग्य तथा विद्रोह, इस प्रसंग के बड़े महत्वपूर्ण तत्व है।

मार्कण्डेय का 'भू-दान', 'दाना भूसा', 'आदर्श कुक्कुट गृह'-कमलेश्वर की 'नीली झील', 'बदनाम वस्ती', 'सलमा'। [3] तथा फणीश्वरनाथ रेणु की 'अच्छे आदमी' [4] और 'तीसरी कसम' कहानी इस नए क्षेत्र की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। यहाँ एक ओर महत्वपूर्ण तत्व है इन कहानियों में परम वैविध्य। कहीं भी, किसी भी स्तर से एकरसता और दुर्बोधता का नामोनिशान नहीं। ऋजु कौशल और सहजता ही इनकी शक्ति है तथा एक निश्चित अभिप्राय है संघर्षशील, बदलते हुए जीवन के भीतर युद्धरत शक्तियों से डटकर जूझने और सीधे चुनौती देने का उद्देश्य।

'समकालीन कहानी : प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ' नामक तृतीय अध्याय के अन्तर्गत 'नयी कहानी बनाम समकालीन कहानी' की चर्चा की गयी है। सुधी विद्वान जानते है कि 'नयी कहानी आन्दोलन के रचनाकार ही कालान्तर में समकालीन कहानी के पुरस्कर्ता माने गये हैं। हालाँकि दावा राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, शानी और मन्नू भण्डारी आदि को अधिक दिया गया है। हमारा विचार है कि नई कहानियों के श्रेष्ठ उदाहरण में आने वाली ये कहानियाँ-कृष्णा सोबती की 'बादलों के घेरे', रांघेय राघव की 'गदल', अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', मोहन राकेश की 'मिसपाल', 'आर्द्रा', मार्कण्डेय की 'उत्तराधिकारी' राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो', मन्नू भण्डारी की 'यही सच है', फणीश्वर नाथ रेणु की की 'मारे गये गुलफाम', उषा प्रियंवदा की 'जिन्दगी और गुलाब' और 'वापसी', शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार'

आदि जहाँ एक ओर वैचारिक स्तर पर नई हैं,वहाँ दूसरी ओर ये शिल्प के स्तर पर भी नयी परम्परा के रेखांकन में सक्षम हैं।

'अकहानी आन्दोलन' व्यवस्था के प्रति विक्षोभ, गुस्सा और प्रतिकार व्यक्त करता है। कहानी आन्दोलन में स्त्री-पुरूष प्रसंगों का बैलोस चित्रण किया गया है। महेन्द्र भल्ला, रमेश बक्षी, इब्राहिम शरीफ, गंगाप्रसाद विमल, निरूपमा सेवती आदि ने दिल्ली बम्बई और कलकत्ता के संघर्षपूर्ण जीवन में नारी की स्थिति को विभिन्न कथा-प्रसंगो से दर्शाया है। सुधा आरोड़ा दीप्ति खण्डेलवाल और से.रा.यात्री आदि ने समांतर कहानी आन्दोलन में अपनी सृजनात्मक भूमिका निभायी है। जिसमें 'एक औरत की कथा', 'हव्वा', 'सागर के तट पर' कहानियों का एक विशेष महत्व है।

सुधी पाठक जानते हैं कि राज कमल चौधरी के बोहेमियन चरित्र और महेन्द्र भल्ला के कथा-चरित्रों में ज्यादा अंतर नहीं है। महेन्द्र भल्ला की अन्यान्य कहानियों की तरह 'पुल की परछाई' की भी अधिकतर कहानियाँ एक मूल्य निरपेक्ष दुनिया की कहानियाँ हैं जिनमें परिवेशगत सामाजिक-राजनीतिक दबावों के लिए लगभग कोई गुँजाईश नहीं है। कुल मिलाकर ये गृहस्थी की ऊब और खातें-पीते खुशहाल परिवारों में वयःसंधि के यौनाकर्षणों की रहस्यमयी दुनिया की कहानियाँ ही अधिक हैं। 'फुंसियाँ', 'असली शुरूआत' और 'पुल की परछाई' आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। पढे जाने के दौरान ये थोड़ी देर को पकड़ती जरूर हैं, कभी-कभी ये खूब स्मार्ट भी लगती है, लेकिन किसी भी स्तर पर ये किसी गंभीर अन्वेषण का बोध जगा पाने में असफल रहती हैं। 'एक पति के नोट्स' के संदर्भ में देवीशंकर अवस्थी ने कभी महेन्द्र भल्ला को 'विकसित यथार्थ और बड़ी कलात्मक क्षमता' का कहानीकार कहकर प्रतिष्ठित किया था। महेन्द्र भल्ला के पात्र कहीं भी जीवन के व्यापक संदर्भो और मूल्य-दृष्टि से नहीं जुड़ते। सेक्स और उपभोक्ता संस्कृति के दबाव ही उनकी सबसे बडी चिन्ता है।

समकालीन कहानी के क्षेत्र में वामपंथी चेतना के सतीश जमाली, वेणु गोपाल ,(सहयात्री, अन्तयक्षरी) सृंजय (कामरेड का कोट) आदि अपना हस्तक्षेप रखते हैं तो जनवादी कहानी आन्दोलन में शिवमुर्ति, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा और नमिता सिंह की कहानियों का अपना विशिष्ट महत्व है।

'स्त्री-पुरूष सम्बन्ध : परिवर्तित समाज और विश्लेषण' नामक चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत संयुक्त परिवार बनाम एकल परिवार : शहरी और ग्रामीण जीवन को विश्लेषण सम्बन्धी आधार बनाया गया हैं। उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी संयुक्त परिवार की गाथा है तो मोहन राकेश की 'सुहागिने' कहानी पति-पत्नी सम्बन्धों में आयी रिक्तता और व्यर्थताबोध को दर्शाती हैं। कहना न होगा कि विवाहपूर्व और विवाहोत्तर सम्बन्धों के रेखांकन में राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, से लेकर मैत्रेयी पुष्पा , नासिरा शर्मा, मृदुला गर्ग, ने कई अभिनव प्रसंग रचे हैं।

राजेन्द्र यादव की कहानियों में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों वाली कहानियों की संख्या काफी बड़ी हैं। इनमें प्रेम की अशरीरी धारणा के तीखे प्रतिसाद से लेकर संबंधों के टूटने की पीड़ा तक की कहानियाँ शामिल हैं। तन और मन के दो अलग खानों में ,जैनेन्द्र की नायिकाओं की तरह बाँटकर स्त्री को देखने का 'नयी कहानी आन्दोलन' ने विरोध किया हैं। राजेन्द्र यादव भी इस छद्म को स्वीकार नहीं करते। 'मेरा तन तुम्हारा हैं', 'एक कमजोर लड़की की कहानी', की नायिकाओं के मुकाबले 'नीरंजना' की नीरंजना अपनी अर्जित आत्मसजगता के कारण ही अपने प्रेमी के प्रति अधिक ईमानदार हैं। 'पुराने नाले पर नया फ्लैट' में यह नाला दीरू के पति के पूर्व प्रेम का है और नया फ्लैट उनके दाम्पत्य सम्बन्धों को दर्शाता है जो कालोनी में नये मकान की तरह ही हवा के हर झोंके के साथ बदबू का भभका भी साथ लिये हैं। नारी जीवन की अस्मिता और स्वतंत्रता संदर्भ में मोहन राकेश की कुछ अन्य कहानियाँ 'आखिरी सामान', 'मिसपाल', 'भूखे' और 'सुहागिने' आदि स्त्री को पूरे सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत करती हैं। 'आखिरी सामान', की बेला भण्डारी मूल्यविहीन, भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था में उसके मुख प्रतिशोध का प्रतीक बन जाती है। मूल्यों के इस व्यापक ह्रास की सिथति में 'मिसपाल' की तिक्तता और हताशा उसके लिए अनिवार्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य तैयार करती हैं। उसकी सबसी बड़ी आकांक्षा यही है कि दफ्तर के इस गलीज माहौल से निकल कर , किसी साफ सुथरे निर्जन स्थान पर बैठकर, अपने मन के दो चार चित्र बना सके । इस माहौल की सारी कटुता को पी और पचाकर भी उसकी आधारभूत सौंदर्य वृत्ति कुंठित होने से बची रह सकी हैं। इस तरह 'भूखे' में वास्तविक भूखे एवलीन और उसका बच्चा नहीं हैं। अपने भारतीय पती की असामयिक मृत्यु के बाद एवलीन अपनी और अपने बच्चे की जरूरते क्रमशः कम करती जाती हैं। कलाकार पती की तस्वीरे बिक जाने की आशा में वह स्वयं अपने को और बच्चे को बहलाती रहती हैं। इसके चारो ओर जो लोग हैं - सड़क पर, होटलों में और सब कही - वे ही दरअसल भूखे लोग हैं जो उसकी मजबूरी की बिना पर उसे ही अपनी खुराक बना लेना चाहते हैं, और वह भरसक गरिमामय ढंग से इस सबका प्रतिरोध करती हैं।

'अलगाव, तनाव और विडम्बना सम्बन्धी विमर्श' नामक पंचम अध्याय में समसामयिक जीवन की त्रासदी को रेखांकित किया गया हैं। निःसंदेह अज्ञेय की 'रोज' कहानी राजेन्द्र यादव 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' और शिवमूर्ति की 'कसाईबाड़ा',सुधा अरोडा की 'महानगर की मैथिली', नासिरा शर्मा की 'संगसार' आदि कहानियाँ हमारे आसपास के अलगाव, तनाव और विडम्बना वाले संसार का ही प्रतिबिम्बित ताना-बाना हैं।

विसंगति बोध और नारी जीवन की त्रासदी स्थिति को जहाँ कमलेश्वर 'माँस का दरिया' और राजा निरबंसिया' में उकेरते हैं वही दीप्ति खण्डेलवाल 'हव्वा' कहानी में स्त्री-पुरूष के बीच आये रिक्तता बोध व्यावसायिक दृष्टिकोण तथा यौन मुक्ति को दर्शाती है। कहा जा सकता है कि

राज निरबंसिया का उल्लेख उसके प्रकाशन से लेकर आज तक उसके दोहरे कथा-शिल्प के कारण होता रहा हैं। लेकिन फिर भी कहानी में लोक-कथात्मक शैली का समानान्तार उपयोग दो भिन्न युगों की संवेदना को , उसमें घटित परिवर्तन को ,पर्याप्त सर्जनात्मक ढंग से उभारता हैं। बीमारी से उपजी जगपती की आर्थिक मजबूरियाँ उसे धीरे-धीरे उसकी पत्नी चंदा से दूर करती जाती है। वस्तुतः यह तथ्य ही कहानी में परिवर्तन संवेदना और मूल्य-बोध का वाहक बन जाता हैं। लेकिन आत्महत्या से पूर्व चंदा और कानून के नाम छोड़ा गया उसका संदेश अपनी रोमानी प्रकृति के कारण कहानि में निहित क्षीण से विचार को भी आहत करता हैं।

नई कहानी में आधुनिक नारी की उपस्थिति के संदर्भ में कमलेश्वर की टिप्पणी हैं -आधुनिक नारी अब अपनी पूरी गरिमा,देह-संपदा और वास्तविक सम्मान के साथ आई हैं (नई कहानी की भूमिका पृ.18) इसी संदर्भ में थोड़ा आगे चलकर लिखते है - औरते अब औरतें हैं ,वे झूठी सती या वेश्याएँ नहीं है, इसलिए नई कहानी खलनायिकाओं से शून्य है.....संशयग्रस्त सम्बन्धों के बिजबिजाते दलदल अब नहीं हैं। नारी की देह अब उसके अपने निर्णय की वस्तु हैं [6] कमलेश्वर द्वारा रचित कहानियाँ 'एक अश्लील कहानी', 'एक थी विमला', प्रेमिका, 'राते', 'माँस का दरिया' आदि कहानियों में स्त्री या तो सामाजिक विसंगतियों की शिकार है या फिर एक संत्रास भरा जीवन जीने को विवश है।

से.रा.यात्री की कहानी 'अंधेरे का सैलाब' दो परिवारों का समानान्तर चलने वाली काफी कुछ कृत्रिम और आरोपित स्थितियों की कहानी हैं। इस कहानी में 'मैं' के दूर के सम्बन्धी का इंजीनियर से ऐन दीवाली के दिन भेंट का संयोग जुटता गया हैं। जो 'मैं' के पूरे परिवार को अपने घर ले जाते हैं -जैसे दीवाली के मौके पर डॉली के तौर पर आई रिश्वत का प्रदर्शन जरूरी है। ईन चकाचौंध और भेटवाली दीवाली की तुलना में 'मै' के अपने घर की दीवाली अंधेरे का सैलाब बनकर रह जाती हैं। दीवारों और मुंडेरों पर दिये रखने के बाद ,रोशनी दिखाने के ख्याल से जब 'मैं' बच्चों को पुकारता है तो अंदर से कोई निकल कर नहीं आता.... 'अंदर जाकर देखा तो पापा के दोनों बच्चे फर्श पर टेढे-बेंगे होकर पड़े थे और पसीजी हुई मिठाई के टुकड़े उनकी मुट्ठियों में जकड़े हुए थे - नए कपडों में सजी उसी नन्ही सी मासूम बच्ची को गोद में उठाकर मैंने लाख जगाने की कोशिश की पर उसने आँखे एक क्षण के लिए मुलमुलाकर फिर बंद कर लीं और फुझड़ियों का बंडल उसकी पकड़ से छूटकर फर्श पर गिर गया [7]

'समकालीन कहानी का विकास : अद्यतन संदर्भ' नामक षष्ठ अध्याय के अंतर्गत परम्परा और आधुनिकता बोध की चर्चा की गयी हैं। जिसके परिप्रेक्ष्य में राजेन्द्र यादव की कहानी 'अभिमन्यु की हत्या', धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो' से लेकर मैत्रेयी पुष्पा की 'ललमनियाँ' भी शामिल हैं। स्त्री-पुरूष के बदलते आयाम में निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', मोहन राकेश की 'सुहागिने', से लेकर निरूपमा सेवती की 'दहकन से परे' कहानी तक की

चर्चा अवश्यम्भावी हैं। हाल ही कमलकुमार और चित्रा मुदगल ने देह मुक्ति और नयी नैतिकता के संदर्भ में यौन विमुक्ति और भारतीय परिवेश एवं परम्परा पर आधारित विलक्षण कहानियाँ लिखी हैं।

समकालीन कहानी के प्रगतिशील परिदृश्य से लेकर जनवादी आन्दोलन विकास तक नारी जीवन में गुणात्मक परिवर्तन आया है। जिसकी गवाही मधुरेश भी देते है कि वर्तमान कहानी की मूल चिन्ता किसी न किसी स्तर पर मनुष्य की मुक्ति से जुडी है । इसमें एक ओर जहाँ भारतीय समाज में हाशिए पर जीवन जी रहे लोगों की अभावों और विविध रूपों में उत्पीडन से मुक्ति शामिल है वहीं पुरूष वर्चस्व वाले समाज में स्त्री की अपनी अस्मिता और मुक्ति का सवाल भी उतना ही महत्वपूर्ण है। मानवीय अस्मिता की इस लडाई में लेखक की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए संजीव इसे 'ऋण मुक्ति की छटपटाहट' के रूप में व्यक्त करते हैं। (8) उनकी इस रचनात्मक छटपटाहट में ही कला की स्वायतता और उपभोक्ता अप-संस्कृति वाले समाज में कला की वास्तविक भूमिका तय होती है। अनेक स्तरों पर स्त्री के शोषण को संजीव पर्याप्त संजीदगी से देखते हैं। उनके यहाँ स्त्री खेत, फैक्ट्री में काम करती है। वह रखैल भी है और वेश्या भी। जसी बहू की बहू चुनौती की तरह चुभते व्यक्तित्व की युवती है जो गाँव के क्षितिज पर नई भोर की तरह उगती है। लेकिन उसके सारे संघर्ष के बावजूद न तो उसकी यातना का अंत है और न ही विडम्बना का। विगत अध्यायों में की गयी है पर भाषा शैली और रस शिल्प की चर्चा बगैर हमारा अध्ययन एकांगी कहा जा सकता हैं। अतः 'भाषा-शैली एवं शिल्प विधान' नामक सप्तम अध्याय में पचास वर्षो के विभिन्न कहानी आन्दोलनों और प्रवृत्तियों की विशिष्ट रचनाओं तथा रचनाकारों की शैली सम्बन्धी विशिष्टता पर भी सांकेतिक चित्रण रचा गया है। समकालीन कहानी में विशष वस्तु और संदर्भ के अनुरूप परंपरा और आधुनिकता बोध की टकराहट भी देखी जा सकती हैं। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के परिवर्तित आयामों में देह मुक्ति और नयी नैतिकता के हाशिए सक्रिय हुए हैं। शोध प्रबंध की अपनी सीमा हैं लेकिन विषय-वस्तु और रूप में अन्योन्याश्रीत सम्बन्धों की चर्चा भाषा-शैली ,बिम्ब और प्रतीक तथा शिल्प संबंधों के अभाव में पूर्ण नही मानी जाती हैं अतः उस दिशा में भी मूल्यांकन और विश्लेषण कार्य रचा गया हैं।

पूर्ववर्ती कहानियों की सांकेतिकता से नई कहानी की सांकेतिकता को अलग करते हुए मोहन राकेश लिखते है - 'बात वही होती है और जीवन के उसी कैनवास से उठाई जाती हैं। मगर उसके सम्बन्ध में लेखक के अनुभव की निजता, जीवन के यथार्थ की व्यापक पकड़ और भाषा तथा शिल्प के क्षेत्र में उसकी अपनी प्रयोगात्मकता उसकी रचना को भिन्नता और एक और ही सार्थकता प्रदान कर देती हैं।' इस सांकेतिकता के लिए मोहन राकेश ने ही नई कहानी से 'चिफ की दावत' और 'दोपहर का भोजन' का उल्लेख किया और टिप्पणी की है , 'चिफ की दावत' का संकेत माँ के चरित्र के माध्यम से उभरता है और 'दोपहर का भोजन' में अभावग्रस्त घर

की एक साधारण सी दोपहर के वर्णन मात्र से। कहना न होगा कि रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपनी विशिष्ट शैली के साँचे निर्मित कर लेता हैं। जिससे रेणु की 'तीसरी कसम' रोमांटिक अवसाद का माध्यम बनती हैं और शिवमूर्ति की 'कसाईबाड़ा' कहानी हमारे चिंतन व मर्मव्यथा पर प्रश्न चिन्ह अंकित करती हैं।

धनंजय वर्मा ने भी हिन्दी कहानी के रचना शास्त्र संदर्भ में कहा है कि –'कहानी विधा के रूपात्मक साँचे निर्मित हुए और एक लम्बे अरसे तक कहानी की पहचान और परख इन्ही साँचो से होती रही। 'कहानी की आलोचना और मूल्यांकन में इन्हे एक रीति और कालान्तर में रूढ़ि का स्वरूप मिल गया । कथानक, चरित्र-चित्रण, देश-काल- वातावरण, शैली और उँश्य के पाँच तत्वों पर कहानियों की परख जारी रही। कथानक और चरित्र(पात्र) के अतिरिक्त संकलन त्रय (स्थान,कार्य और समय की एकता) की अवधारणाएँ भी नाट्य विवेचन से ज्यों-की-त्यों उठा ली गयी और संवाद को भी कहानी के तत्व के रूप में मान्यता मिली। इस सबका परिणाम यह हुआ कि कहानी की आलोचना और मूल्यांकन के अपने स्वतंत्र प्रतिमान विकसित नहीं हो पाए। (9)

राजेन्द्र यादव जहाँ मध्यवर्ग की भाषा शैली को बर्हिमुखी पात्रों के रूप में चित्रित करते हैं वहाँ मोहन राकेश मन के संवेदनशील पक्षों को निम्नमध्य वर्गीय पात्रों के परिवेश में। कमलेश्वर की बहुमुखी प्रतिभा कस्बे-ग्राम ,महानगर और आन्तरिक भावों के पात्रों को संपन्न करती हैं। सच है कि शहरी जीवन की अपेक्षा ग्रामीण अंचल और कसबाई जीवन शैली का चित्रण रचनाकार और पाठक् आलोचक के लिए एक चुनौती हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश ,राजस्थान, छत्तीसगढ, महाराष्ट्र और आन्ध्र में प्रचलित लोक शैलियों की छाप भी अनेकानेक रचनाओं में उपलब्ध हैं। जिसके लिए एक पृथक शोध प्रबंध की आवश्यकता होगी। प्रसंगवश कहना होगा कि फणीश्वनाथ रेणु के 'ठुमरी' कहानी संग्रह में संकलित अनेक कहानियों में कला और कलाकार की गिरावट के प्रति जो पीड़ा अभिव्यक्त हुई हैं। वह इस संकलन की एक कहानी 'भित्तिचित्र की मयूरी' में उभरती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। इसी प्रकार 'आदिम रात्रि की महक' में संकलित अनेक कहानियों में सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन के अन्तर्वर्ती रसगंधो का जो मुग्ध चित्रण हुआ है तथा जिनमें लोक जीवन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और लोक चेतना का फैलाव दृष्टिगोचर होता हैं।

शिवमूर्ति ,शैवाल और नमिता सिंह की कहानियों में अभिजात्य वर्ग की भाषा की जगह सहज बोल चाल की भाषा का निर्वाह पाया जाता है। हालाँकि नारी-उत्पीड़न ,पीढ़ियों का संघर्ष,छुआछूत व साम्प्रादायिक विद्वेष के प्रति आक्रोश तथा दृढता का व्यवहार, प्रेम-संबंधों के विभिन्न स्तरों का इनकी कहानियों में कहानीकार की सोच व संवेदना के अनुसार चित्रण हुआ है। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों को अधिकांश रचनाकारों ने भावुकता के मकड़जाल से बचाकर उन्हें सहज भाव-भूमि पर प्रस्तुत किया है। यथार्थ के बहुआयामी

सन्दर्भ इन कहानीकारों ने प्रस्तुत किए हैं। यहाँ भयावह यथार्थ है तो सहज शिल्प से उद्‌भूत जादुई यथार्थ भी है। अधिकांस कथाकारों ने जनधर्मी भाषा को अपनाया है। (10)

प्रसंगवश नमिता सिंह की कहानियों में आत्मविश्लेषण और मनोविश्लेषणवादी पहलू भी दृष्टिगोचर होते हैं। नमिता सिंह की कहानी 'या देवी सर्वभूतेषु' की देवयानी अपने शरीर से अपने मन से तथा मस्तिष्क से अपने पति रोहन नामक रक्तबीज को अलग करना चाहती है। वह कहती है कि "रक्तबीजों को नष्ट करना ही होगा वरना आप स्वयं नष्ट हो जायेगी। (11) ममता कालिया की निर्मोही कहानी की नायिका भी स्त्री-अस्मिता की पक्षधर बनकर उभरती है वह अपनी दादी से भड़ककर निजी मूल्यों को रखती है "ये क्या दादी तुम्हारी कहानी में औरत हमेशा हारती है। ऐसी थोड़ी ही होती है कहानी। कहानी में नया भावबोध और आधुनिकता का वहन है। महानगरीय जीवन और पहाड़ी-परिवेश को चित्रित करती हुई निर्मल वर्मा की गद्य भाषा काव्याभिव्यक्ति के नये साँचे निर्मित करती हैं तो मैत्रेयी पुष्पा के पास बुन्देलखण्ड़ की भाषा शैली हैं। सारांशतः नयी कहानी के शिल्प सौंदर्य में उसके कथ्य के अनुरूप जैसे कहानी का सारा शिल्प ही उदार से उदारतम हो गया। उसका बँधा - बँधाया शास्त्रीय रूप अपने आप ही उदार और महिम हो गया। कथा, लोकतत्व, संस्मरण, यात्रा-वर्णन की शैली, डायरी की कला, ह्यलैशबैक पद्धति ये सबके सब तत्व मिल-जुलकर ऐक ही कहानी में उजागर महाज हो गया। यह सर्वथा एक नया शिल्प ही बन गया।

वर्तमान दौर तक जैसे भारत का समग्र जीवन ही कहानी शिल्प में कहानी की अन्तरात्मा में जैसे रूपायित हो गया हैं। शिल्प उसकी आत्मा में डुबकर एक हो गया और इस तरह कहानी कला बड़ी नाजूक और मर्मस्पर्शिनी बन गयी हैं। दूसरी ओर वह कहानी की ऊर्जा शक्ति का वाहन हो उठी हैं। इस सहज प्रक्रिया में शिल्प की अपनी बारीकी- कहानी के स्वभाव और शक्ति के साथ एकाकर होकर अपने सही रूप में संवेदित हो उठी। इसके लिए उसे भाग्यवश पाठकों का प्रबुद्ध वर्ग विरासत रूप में ही मिला जो कहानी की प्रकाशित संवेदना तथा बारीकियों की व्याख्या और सराहना कर सके। विवेच्य शोध प्रबंध अपनी सीमाओं के समकालीन कहानी के विभिन्न आन्दोलनों प्रवृत्तियों और विशिष्ठ मनोवृतियों की रचनाओं का विश्लेषण भर है। विषय की व्यापकता , गंभीरता और गहनता सुधी विद्वानों के सामने स्पष्ट हैं।

शोध प्रबंध में विवेचन की अपनी सीमा है और समकालीन कहानी के वर्तमान परिदृश्य में ग्राम जीवन, कस्बाई जीवन , विदेशी परिवेश तथा महानगरीय जीवन के जीवन के कई नये पुराने रचनाकार सक्रिय है। अतः गत्यात्मक दौर में कथ्य,विषय वस्तु, भाषा-शैली और शिल्प के नये क्षितिज और सिमान्त भी कालान्तर में मुखर हो सकते हैं।

पर कहा जा सकता है कि विगत पचास वर्षो में पुरूष-जीवन के बरक्स स्त्री-जीवन में अभूतपूर्व सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक बदलाव आये हैं। नारी अब न तो देवी है और न ही कर्तव्य परायण समर्पिता पात्र। वह महानगरों के जीवन में स्पर्धापूर्ण जीवन व्यतीत करती है तो कस्बों-गावों में अपने निजी विकास के लिए सन्नद्ध है। परम्परा की पगडण्डी से आगे चलकर अब वह विकास,अस्मिता और निजी मूल्यों की पक्षधरता के राजमार्ग पर आ गयी है।

उपसंहार परिशिष्ट : संदर्भ सूची

1. रोहिताश्व : समकालीनता और शाश्वतता पृ.177

2. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र पृ.85

3. कमलेश्वर : नई सदी सितंबर 1962

4. फणीश्वरनाथ रणु : धर्मयुग : कहानी विशेषांक पृ.49

5. मधुरेश : हिन्दी कहानी का विकास पृ.180

6. कमलेश्वर : नई कहानी की भूमिका पृ.19

7. से.रा. यात्री : सारिका अक्टूबर 1974 पृ.23

8. संजीव : हिन्दी कहानी का विकास 'उदघृत' पृ.182

9. धनंजय वर्मा : हिन्दी कहानी का रचनाशास्त्र पृ.198

10. अशोक भाटिया : समकालीन हिन्दी कहानी का विकास पृ.132

11. नमिता सिंह : 'या देवी सर्वभूतेषु' प्रतिनिधि कहानियाँ पृ.84

संदर्भ ग्रंथ सूची

क्र.	लेखक	ग्रंथ	प्रकाशन	वर्ष
1.	अमरकान्त	प्रतिनिधि कहानियाँ	राजकमल प्रकाशन	1984
2.	अशोक भाटिय	समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास	भावना प्रकाशन दिल्ली	2000
3.	अजिता के. नायर	सत्तरोत्तर हिन्दी कहानियों में बदलते मानवीय संबंध	जवाहर पुस्तकालय, मथुरा	2003
4.	आनन्द प्रकाश	हिन्दी कहानी की विकास प्रक्रिया	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	1984
5.	इन्द्रनाथ मदान	हिन्दी कहानी पहचान व परका	लिपि प्रकाशन	1973
6.	इब्राहिम शरीफ	कई सूरजों के बीच	नेशनल प्र.दिल्ली	1972
7.	उषा कीर्ति राणावत	स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों का विमर्श	साहित्य चन्द्रिका, जयपुर	2006
8.	उषा झा	हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	साक्षी प्रकाशन, जयपुर	2005
9.	उषा प्रियंवदा	एक कोई दूसरा	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली	1966
10.	उषा प्रियंवदा	मेरी प्रिय कहानियाँ	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	1974
11.	कमलेश्वर	राजा निरबंसिया	भारतीय ज्ञानपीठ प्र. काशी	1966
12.	कमलेश्वर	नई कहानी की भूमिका	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली	1966
13.	कमलेश्वर	खाई हुई दिशाएँ	भारतीय ज्ञानपीठ प्र. काशी	1963
14.	कमलेश्वर	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियाँ	नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,दिल्ली	2005
15.	कृष्णा सोबती	बादलों को घेर	राजकमल प्रकाशन	1981

16. कृष्णा अग्निहोत्री	टीन के घेरे	अक्षर प्रकाशन	1966
17. कान्ता मेंहदीरता	हिन्दी कहानी का मूल्यांकन	राधाकृष्ण, दिल्ली	1984
18. गंगाप्रसाद विमल	समकालीन कहानी का रचना विधान	सुषमा पुस्तकालय दिल्ली	1967
19. गिरिराज शरण	नारी उत्पीडन की कहानियाँ	प्रभात प्रकाशन	
20. घनश्यामदास भुतडा	समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप	अतुल प्रकाशन कानपुर	1993
21. जानकी प्रसाद शर्मा	कहानी का वर्तमान	राज प्र., दिल्ली	2002
22. जगदीश चतुर्वेदी	निहंग	निलाभ प्रकाशन इलाहाबाद	1973
23. दीप्ति खण्डेलवाल	औरत और नाते	प्रगति प्र. आगरा	1980
24. दीप्ति खण्डेलवाल	वह तीसरा	राजपाल एण्ड संस दिल्ली	1976
25. दूधनाथ सिंह	सपाट चेहरेवाला आदमी	अक्षरप्रकाशन	1967
26. देवी शंकर अवस्थी	हिन्दी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति	राजकमल प्रकाशन	1973
27. देवेन्द्र चौबे	समकालीन कहानी का समाजशास्त्र	प्रकाशन संस्थान	
28. धनंजय वर्मा	हिन्दी कहानी का शफरनामा	प्रवीण प्र. दिल्ली	2001
29. धनंजय वर्मा	समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि	अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद	1970
30. धनंजय वर्मा	समसामयिक हिन्दी कहानियाँ	नेशनल बुक ट्रस्ट इं	2005
31. नरेन्द्र मोहन	आधुनिकता के संदर्भ में हिन्दी कहानी	जयश्री प्रकाशन, दिल्ली	1982
32. नरनारायण तिवारी	हिन्दी कहानी में प्रकृति चित्रण	विद्या प्रकाशन, कानपुर	

33. नामवर सिंह	कहानी :नयी कहानी	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	1966
34. निर्मल वर्मा	परिन्दे	राजकमल प्रकाशन	1970
35. निरूपमा सेवती	खामोशी को पीते हुए	नेशनल प्रकाशन	1972
36. प्रहलाद अग्रवाल	हिन्दी कहानी सातवां दशक	मैकमिलन, दिल्ली	1974
37. प्रेम सिंह	साठोत्तरी कहानी और परिवर्तित मूल्य	मीनू प्रकाशन	1982
38. प्रेमलता जैन	समाजवादी यथार्थवाद और हिन्दी कथा	नवचेतन प्रकाशन दिल्ली	2004
39. पाण्डेय शशि भूषण शीतांशु	नयी कहानी के विभिन्न प्रयोग	लोकभारती प्रकाशन	1972
40. पुष्पपाल सिंह	समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ	नेशनल पब्लिकेशन	1986
41. बलराम	समकालीन हिन्दी कहानी	दिनमान प्र.दिल्ली	1989
42. बटरोही	कहानीः संवाद का तीसरा आयाम	नेशनल प.हा. दिल्ली	2001
43. बिन्दु दुबे	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में अलगाव बोध	कला प्रकाशन वाराणसी	2000
44. मन्नू भण्डारी	यही सच है और अन्य कहानियाँ	लोकवणी संस्थान दिल्ली	1972
45. मन्नू भण्डारी	एक प्लेट सैलाब	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली	
46. भारत यायावर	फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ	नेशनल बुक ट्रस्ट	2005
47. ममता कालिया	छुटकारा	रचना प्र. इलाहाबाद	1969
48. महेशचन्द्र दिवाकर	बींसवीं शती की हिन्दी कहानी का समाज - मनोवैज्ञानिक अध्ययन	लोकवाणी संस्थान	1992
49. महेशचन्द्र दिवाकर	हिन्दी नई कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन	सुमन प्रकाशन दिल्ली	1992

50. मधु सन्धु	कहानी कोश	भारतीय ग्रंथ निकेतन दिल्ली	1992
51. मधुरेश	आज की हिन्दी कहानी विचार और प्रक्रिया	ग्रंथ निकेतन रानीधार, पटना	1971
52. महिप सिंह	इक्यावन कहानियाँ	अभिव्यंजना प्र. दिल्ली	1982
53. महिप सिंह	सचेतन कहानी : रचना और विचार	क्षितिज प्रकाशन बम्बई	
54. मंजुल उपाध्यय	समकालीन कहानियाँ	स्मृति प्र. इलाहाबाद	
55. मार्कण्डेय	मार्कण्डेय की कहानियाँ	लोक भारत	2002
56. मीरा सीकरी	नई कहानी	पराग प्र. दिल्ली	
57. मेरून्निसा परवेज	आदम और हव्वा	नेशनल प्र. दिल्ली	1972
58. मृदुला गर्ग	कितनी कैदे	इंद्रप्रस्थ प्र. दिल्ली	1974
59. मोहन राकेश	श्रेष्ठ कहानियाँ	राजपाल प्र. दिल्ली	1970
60. रमेश बक्षी	एक अमूर्त तकलीफ	नीलाभ प्र. इलाहाबाद	1972
61. रमेश बक्षी	पिता-दर-पिता	रूपाम्बर प्र.कलकत्ता	1971
62. रमेशचन्द्र लवानिया	हिन्दी कहानी और जीवन मूल्य	अमित प्रकाशन गाजियाबाद	1979
63. रघुवीर सिन्हा एवं शकुन्तला सिन्हा	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यों से प्रयाण	मैकमिलन, दिल्ली	
64. राजेन्द्र यादव	एक दुनिया समानांतर	अक्षर प्रकाशन	
65. राजेन्द्र यादव	कहानी अनुभव और अभिव्यक्ति	वाणी प्रकाशन	1996
66. राजेन्द्र यादव	जहाँ लक्ष्मी कैद है	अक्षर प्रकाशन	1971
67. राजेन्द्र यादव	टूटना तथा अन्य कहानियाँ	अक्षर प्रकाशन	1966
68. राजी सेठ	तीसरी हथेली	राजकमल प्रकाशन	1981
69. रामचन्द्र तिवारी	हिन्दी गद्य का विकास	विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी	2007

70. राधेश्याम गुप्त	हिन्दी कहानी का शिल्प विधान	हि.सा.प्र.अजमेर	1977
71. रामदरेश मिश्र	हिन्द कहानी अंतरंग पहचान	नेशनल प्र.दिल्ली	1977
72. रामदरेश मिश्र	हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा	न.मोहन,नेशनल प्र.	1971
73. रामधारी सिंह 'दिनकर'	संस्कृति के चार अध्याय	लोक भारती प्रकाशन	1998
74. रोहिताश्व	नयी कविताःसंप्रेषण की समस्या	प्रभा प्रकाशन	1986
75. रोहिताश्व	समकालीनता और शाश्वतता	विद्या प्रकाशन	2006
76. रोहिताश्व	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र	अकादमिक प्रतिभा	2007
77. लक्ष्मी नारायण लाल	हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास	नेशनल प्र. दिल्ली	1977
78. शशिकला राय	कथा समय सृजन और विमर्श	किताबघर प्र. दिल्ली	2008
79. सुधा अरोडा	बगैर तराशे हुए	लोकभारती प्रकाशन	1968
80. सुरेशचन्द्र शुक्ला	प्रतिनिधि प्रवासी कहानियाँ	प्रचारक बुक क्लब	2004
81. सुरेश सिन्हा	हिन्दी कहानी उद्भव और विकास	अशोक प्र. दिल्ली	1967
82. सुरेश सिन्हा	नई कहानी की मूल संवेदना	लोकभारती प्रकाशन	1966
83. सुरेन्द्र	नई कहानीः प्रकृति और पाठ	परिवेश प्र.जयपुर	1968
84. सीमोन द बोउवार	स्त्री उपेक्षिता	हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा.लि, दिल्ली	2002
85. हरिहर प्रसाद	समकालीन हिन्दी कहानी	प्रस्ताव प्र.पटना	1984

प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ

अब	सासाराम
अनभै	मुम्बई
अदारा	भोपाल
आलोचना	दिल्ली
धर्मयुग	बम्बई
भया	दिल्ली
रूपाम्बरा	कलकत्ता
वर्तमान साहित्य	अलीगढ
सारिका	दिल्ली
हंस	दिल्ली